MAHY-102

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

एम.ए.पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड– 1

इकाई संख्या		पृष्ठ संख्या
इकाई 10		
	यूरोप में औद्योगिक अर्थव्यवस्था : कृषि और उद्योग, व्यापारी और व्यापारिक संघों के मध्य संबंध	3-19
इकाई 11		
	उदारवाद और यूरोप में संवैधानिक विकास	20-37
इकाई 12		
	अठारहवी शताब्दी में यूरोप का धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन	38-52
इकाई 13		
	औद्योगिक क्रांति	53-66

पाठयक्रम विकास समिति

प्रो. बी. एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार,
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता,
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता,
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. कमलेश शर्मा,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर,
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा,
इतिहास विभाग, काशी हिन्दु
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. बृजकिशोर शर्मा,
विभागाध्यक्ष , इतिहास विभाग, कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. याकूब अली खान,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. एन.के शर्मा,
एसोसियेट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज.)

डा. सुरेश शर्मा,
सोवियत अध्ययन केन्द्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

श्रीअनूप सिंह पंवार,
पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
पाली (राज.)

प्रो. जे.पी. मिश्रा,
इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

डा. आर.वी. व्यास, कुलपति
डा. श्रीमती कमलेश शर्मा, विभागाध्यक्ष
डा. पी.के. शर्मा, निदेशक, पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण

पाठ्य सामग्री उत्पादन विभाग

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी

सर्वाधिकार सुरक्षित
इस सामग्री के किसी भी अंश की कोटा विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में "मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित-२०२४

मुद्रक: सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

इकाई-10

यूरोप में औधोगिक अर्थ-व्यवस्थाः कृषि और उधोग, व्यापारी और व्ययापारिक संघों के मध्य सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 औधोगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय

10.3 प्रेरक तत्व

10.4 कृषि और उधोग

10.5 व्यापारी और व्यापारिक संघ

10.6 सारांश

10.7 बोधप्रश्न

10.8 सन्दभ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगेः

* यूरोपीय औधोगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय
* औधोगिक अर्थ-व्यवस्था के प्रेरक तत्व जिनमें जनसंख्या में वृद्धि; राष्ट्रवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ तथा वित्त और व्यापा संगठन का विकास उल्लेखनीय है ;
* यूरोपीय कृषि की स्थिति एवं इस क्षेत्र में हुए परिवर्तन, इन परिवर्तनों व व्यापार एवं उद्योग को लाभ ;
* अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका;
* व्यापारिक संघो का स्वरूप, आदि।

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में यूरोपीय औधोगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय एवं उसके प्रेरक तत्वं से परिचय कराया जायेगा। औधोगिक अर्थ-व्यवस्था के प्रेरक तत्वों में जनसंख्या में वृद्धि

राष्ट्रवाद, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि, राष्ट्रीय और व्यापार नीतियाँ, वित्त और व्यापार संगठन का विकास आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में यूरोप में कृषि एवं उद्योग की स्थिति तथा व्यापारी और व्यापाकि संघों के मध्य सम्बन्धों का विवेचन किया गया है।

10.2 औधोगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय

18 वीं सदी में यूरोपीय महाद्वीप औधोगिक रूपान्तरण की प्रक्रिया से होकर गुजरा क्योंकि इस सदी में औधोगिक उत्पादन के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन करके तत्कालीन एवं परवर्ती अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित किया। इस समय ऊर्जा तथा शक्ति के उत्पादन की नवीन तकनीकों का आविष्कार हुआ और उनका उद्योगो में भी उपयोग किया गया उदाहरण के लिए, सर्वप्रथम 1705 में टॉमस न्यूकोमैन और फिर 1769 में जेम्स वॉट ने भाप के इंजन की खोज की जिसके परिणामस्वरूप जलशक्ति और पवन चक्कियों के स्थान पर भाप की शक्ति का उपयोग क्रमशः बढ़ता ही गया। लोहा तैयार करने की नवीन तकनीकों से श्रम तथा पूंजी के प्रति-इकाई उत्पादन में वृद्धि हुई। पुरानी पद्धति में जहां कच्चे लोहे को काठ-कोयले की सहायता से पिघलाया जाता था वहाँ नवीन पद्धति में उसे वात्या-भट्टी (**Blast furnace**) से कोयला जलाकर लोहा पिधलाया जाकर उसे ढालने की विधि का अविष्कार हुआ। ऊन और सूत की कताई और बुनाई की नई-नई मशीनों का अविष्कार हुआ, जैसे - जॉन के की फलाईग शटल (1733), जेम्स हारग्रीव की कताई की स्पिनिंग जैनी (1770), रिचर्ड ऑकराइट का वाटर फ्रेम (1769) ,कार्टराइट का पावरलूम (1787)। 1785 में पहली बार वॉट के भाप के इंजिन का प्रयोग सूत कातने में किया गया। इसके पूर्व पनचक्की से चलने वाली मशीनों से सूत काता जाता था, इसलिए अधिकांश कुटीर उधोग नदियों के किनारे फैले हुए थे। अब सूती-वस्त्र उधोग कुटीरसे हटकर बड़े-बड़े नगरों के विशाल कारखानों में केन्द्रित हो गया। 1770-1800 के मध्य हुए आविष्कारों के कारण सूती वस्त्र उद्योग में दस गुना वृद्धि हुई।

औधोगिक क्रांति के समय कृषि के विकास से नवीन उद्योगों के विकास में बड़ी सहायता मिली। इस समय बेकार भूमि को कृषि योग्य बनाया गया तथा फसलों के क्रमवार उत्पादन से भूमि को खाली छोड़ना बन्द कर दिया गया जिससे प्रति एकड़ उपज में वृद्धि हुई। कृषि के विकास के कारण बढ़ती हुई जनसंख्या में उत्पन्न सामाजिक सन्तोष ने औधोगिक अर्थ-व्यवस्था के विकास में अपूर्व योगदान दिया। मशीनों के आविष्कार से जहाँ एक ओर उत्पादन में वृद्धि हुई वहाँ दूसरी और उत्पादन लागत में भी कमी आयी

19वी शताब्दी में अनेक परिवर्तनों ने यूरोपीय औधोगिक अर्थ-व्यवस्था को नवीन रूप में ढाल लिया जिससे औधोगिकरण की गति तीव्र हुई बाजार अर्थ-व्यवस्थ का विस्तार हुआ इन परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी प्रकट हुए। ये प्रवृत्तियाँ सम्पूर्ण यूरोप में दिखायी दीं, परन्तु यह इस महाद्वीप के पश्चिमी भाग में अधिक प्रबल थी,

दक्षिणी और पूर्वी भागों में अपेक्षाकृत कम। पश्चिमी यूरोप का औद्योगिकरण 1830-1870 तक के चार दशकों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी। इस अवधि में कई यूरोपीय देशों ने व्यापक बाजार के लिए औद्योगिक उत्पादन प्रारम्भ किया। ऐसा करने के लिए उन्होनें घरेलू औद्योगिक उत्पादन के तरीके छोड़ दिए और विशाल कारखाने लगाये, औद्योगिक प्रणाली के निर्माण के लिए नवीन आविष्कार किए, कच्चे माल का आयात किया अथवा अपने संसाधनों का विकास किया और तैयार माल को अपने देश अथवा विदेश में बेचने लगे। इन परिवर्तनों के कारण खेतिहर समाज का आंशिक ह्रास हुआ और ग्रामीण मजदूरों का नगरों की ओर प्रस्थान हुआ।

औद्योगिक परिवर्तन 1830-1870 तक

सर्वप्रथम ब्रिटेन और फिर सम्पूर्ण यूरोप में वस्त्र-उद्योग के क्षेत्र में घरेलू उत्पादन के स्थान पर कारखानों के माध्यम से उत्पादन प्रारम्भ हुआ। खनन और धातु कार्य में भी नवीन तरीके अपनाए गए। परिवहन तथा संचार के क्षेत्र में क्रांति हुई। औद्योगिक परिवर्तन का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ था वह 1830 के पश्चात् पश्चिम से पूर्व तथा दक्षिण की ओर आगे बढ़ा और 1880 तक आते-आते यूरोप में एक औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था की नींव रखी जा चुकी थी।

औद्योगिक क्रांति (परिवर्तनों) ने सर्वप्रथम वस्त्र-उद्योग को प्रभावित किया, सूती वस्त्रों के पश्चात् ऊनी वस्त्र-उद्योग में एक प्रकार से क्रांति आई। इसके साथ ही साथ खनन और लोह-निर्माण की उन्नत विधियाँ भी द्रुत गति से प्रचलित हुई। परन्तु इन औद्योगिक परिवर्तनों के उपरान्त भी अनेक उद्योग इन नवीन विधियों से प्रभावित नहीं हो पाए, जिनमें खाद्य-सामग्री, कपड़ो की सिलाई और फर्नीचर-निर्माण के उद्योग शमिल थे। औद्योगिक विकास एवं परिवर्तन की विषमता का एक पक्ष यह था कि नए-नए उद्योग उत्तरी फ्रांस, दक्षिण बेल्जियम और जर्मनी की सार घाटी में केन्द्रित हो गए, जबकि इन देशों के अन्य भागों में पुरानी अर्थ-व्यवस्था भी बनी रही। परिणमतः यूरोप के औद्योगिक देशों में आधुनिक और परम्परागत अर्थ-व्यवस्थाएं साथ-साथ विद्यमान रहीं।

यूरोपीय देशों में यह औद्योगिक विकास सर्वप्रथम पश्चिम एवं फिर पूर्व तथा दक्षिण की तरफ फैला। 1850 तक बेल्जियम एक औद्योगिक देश बन चुका था। उसने ब्रिटिश औद्योगिक अर्थव्यवस्था की निपुणता एवं प्रबन्ध-कौशल का बड़े पैमाने पर उपयोग किया। प्रारम्भ में बेल्जियम ही यूरोप के वाष्प-चालित कारखानों के लिए कोयले की आवश्यकता पूरी करता था।

बेल्जियम के पश्चात् फ्रांस का औद्योगिक विकास प्रारम्भ हुआ और 1870 तक फ्रांसीसी उद्योग ने भी नवीन स्वरूप प्राप्त कर लिया। फ्रांस में वाष्प-इंजन का प्रयोग 1830 में प्रारम्भ हुआ और दस वर्ष पश्चात् फ्रांस में ही उसका निर्माण होने लगा था। 1848 तक सूती और रेशमी वस्त्र उद्योगों के मशीनीकरण के साथ-साथ औद्योगिक नगरों

की स्थापना हुई। ऊनी वस्त्र-उद्योग का मशीनीकरण 1850 के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। लेकिन फ्रांस में कच्चे माल की कमी और उद्योगपतियों की हिचकिचाहट के कारण औधोगिकरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कुछ धीमी रही। परिणामस्वरूप सरकार को इस दिशा में विशेष सक्रिय कार्य करने पड़े। सरकार ने संचार साधनों का विकास किया, बैंक स्थापित किए और गैर-सरकारी कम्पनियों को अधिक सहायता प्रदान की। 1870 तक आते- आते फ्रांसीसी उद्योग 1851 की तुलना में पांच गुना बढ गए और उसकी कोयले की खसपत तिगुनी हो गयी। लोहे का उत्पादन भी 1867 तक तीन गुना बढ़ गया। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप फ्रांसीसी औधोगिक अर्थ-व्यवस्था का तेजी से विकास हुआ और 1830 और 1870 के बीच फ्रांसीसी विदेश व्यापार में तीन गुना विस्तार हुआ।

जर्मनी का औधोगिक विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से हुआ। इसके कारण थे- 1870 तक उसमें राजनीतिक एकता का अभाव, अविकसित संचार व्यवस्था, खनिज भण्डार देश की सीमाओं पर स्थित होना एवं बड़े पूँजीपति वर्ग का अभाव। लेकिन इनमें से अधिकांश समस्याओं का हल 1870 तक कर लिया गया था। राजनीतिक एकता प्राप्त कर ली गई, उद्योगों में निवेश के लिए पूँजी संचित कर ली गई तथा परिवहन व्यवस्था को विकसित किया गया ; 1862 तक 18 हजार मील लम्बी सड़के बन गयी और 1850-1870 के बीच विशाल रेलमार्ग निर्माण का काग्रर्क्रम बनाया गया। इसके साथ ही वस्त्र -उद्योग और भारी उद्योगों का मशीनीकरण भी चलता रहा। 1850-70 के बीच जर्मनी ने अपना कोयला-उत्पादन दस गुना बढ़ा लिया।

रूस में औधोगिक क्रांति (परिवर्तन) का प्रारम्भ अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में देर से हुआ। 1860 तक रूसी उद्योग में कृषि -अर्थ व्यवस्था में विस्तार के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की प्रगति नही हुई थी, परन्तु संचार व्यवस्था का विकास हो रहा था और रेल-मार्ग बन रहे थे। रेल-तन्त्र के निर्माण कार्यक्रम से जो माँग पैदा हुई, उसे पूरा करने के उद्देश्य से वहाँ पर 1860 के बाद उद्योगों का विकास होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप 1860-70 के बीच कोयला का उत्पादन सोलह गुना और इस्पात का उत्पादन दस गुना बढ़ गया। 1860 में स्टेट बैंक की स्थापना हुई और इसी वर्ष इसने उद्योगों के लिये पूँजी उपलब्ध करायी तथा औधोगिक प्रतिष्ठान भी चलाने प्रारम्भ किए। पोलैण्ड में 1870 के प्रारम्भ में औधोगिक विकास प्रारम्भ हुआ।

इस प्रकार पश्चिमी यूरोप में वस्त्र उद्योग का व्यापक मशीनीकरण हुआ और उससे छोटे पैमाने पर दक्षिणी और पूर्वी यूरोप में यह मशीनीकरण हुआ। वाष्पशक्ति इन कारखानों में शक्ति का मुख्य साधन बन गयी। खनन और विभिन्न धातुओं की आधुनिक पद्धतियों का द्रुत गति से विस्तार हुआ, परिणामस्वरूप कारखानों की आवश्यकाताओं को पूरा करने के लिये कच्चे माल के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई और कारखानों से अत्यधिक तैयार माल बनकर बाजार में आने लगा। कारखानों को कच्चा माल भेजने और तैयार माल के लिए स्वदेशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध कराने के उद्देश्य

से शुरू में नहरों के रूप में, फिर सड़कों और अन्ततः रेलमार्गों का रूप में विस्तृत संचार व्यवस्था का विकास हुआ। 1870 तक बड़े यूरोपीय देशों में मुख्य रेलमार्गो का जाल बिछ गया था, डाक-तार व्यवस्था विकसित हो गई थी और वाष्प- जहाज समुद्रपार की मंण्डियों तक आने-जाने लगे थे। परन्तु इन औधोगिक परिवर्तनों के बावजूद 1870 तक कोई भी यूरोपीय देश उन्नत औधोगिक अर्थ-व्यवस्था के स्तर तक नहीं पहुँच पाया, क्योंकि अभी भी अधिकांश देश औधोगिक परिवर्तनों से दूर थे।

1870 तक औधोगिक परिवर्तनों के कारण व्यापारिक परिवर्तन द्रुतगति से होने लगे और विभिन्न देशों के भीतर और बाहर व्यापार का विस्तार हुआ। राजनीतिक एकीकरण के फलस्वरूप राष्ट्रीय बाजारों में वृद्धि हुई, नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई, संचार व्यवस्था का विकास हुआ जिससे इस प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जहाजरानी के विकास तथा संरक्षण एवं मुक्त व्यापारिक नीतियों के प्रयोग से तैयार माल के निर्यात के बदले खाद्य-सामग्री और कच्चे माल के परिवहन को बढ़ावा मिला। इन उपलब्धियों के साथ ही साथ विपणन, व्यापार-संगठन तथा वित्त-व्यवस्था की पद्धतियों में जो परिवर्तन एवं विकास हुआ, उसे ओधोगिक अर्थ-व्यवस्था कहते है।

औधोगिक अर्थ-व्यवस्था के तीन प्रमुख तत्व हैं, प्रथम तत्व है- आर्थिक संगठन। आर्थिक संगठन से अभिप्राय है पूँजी की उपलब्धि, कच्चे माल की प्राप्ति तथा उत्पादन की खपत के लिए आन्तरिक और विदेशी बाजारों का विकास। इस आर्थिक संगठन में दो प्रकार के परिवर्तन निहित थे- कुटीर उत्पादन से धीरे-धीरे पूँजीवादी उद्योगों की ओर अग्रसर होना, बिक्री के अनुसार उत्पादन तथा श्रमविभाजन के आधार पर कार्य करने वाले मजदूरों की नियुक्ति। मशीनों के अधिक उपयोग के लिये अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता थी। अतः बड़े पूँजीवादी उद्योगों की स्थापना आर्थिक संगठन का ही भाग है। दूसरा, परिवर्तन में ऐसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों का विकास था जहां से कच्चा माल, उत्पादन के अन्य सामान तथा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री हो सके। इस परिवर्तन का मूल था बाजारों का विकास जो अनेक संस्थाओं के सहयोग से सम्भव था, जिनमें सरकार के अतिरिक्त बड़े पूँजीवादी घराने, बैंक तथा आवागमन को संचालित करने वाले संघटन सम्मिलित थे। दूसरा तत्व है- तकनीकी अर्थात् निरन्तर ऐसे प्रयोग और आविष्कार किए जायें जिससे मानव श्रम का प्रयोग कम से कम हो। मशीनों को वाष्प, जल या वायु से चलाया जाय। उत्पादन में निरन्तर वृद्धि को खोजना भी तकनीकी क्षेत्र का कार्य था। दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक ज्ञान और अन्वेषण द्धारा उत्पादन और वितरण मे विकास होना चाहिये। उत्पादन में कच्चे माल की खोज भी सम्मिलित है जिसके प्रयोग से वस्तुएँ सस्ती एवं प्रचुर मात्रा में बने सके। ऐसे कच्चे माल के प्रयोग का सुझाव भी तकनीकी विषय है।

औधोगिक अर्थ-व्यवस्था का तीसरा तत्व है - व्यापारिक ढाँचा अर्थात् भूमि, श्रम और पूँजी का कुशलता से उपयोग। इसके अतिरिक्त उत्पादन, अन्वेषण तथा सभी क्षेत्रों

में गति बनाये रखना और अधिकाधिक पूँजी उपलब्ध कराने के प्रयास संगठित व्यापारिक तन्त्र पर निर्भर करता है। उपर्युक्त तीनों के समन्वय से औधोगिक अर्थ-व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

10.3 प्रेरक तत्व

(1) जनसंख्या वृद्धि

सभी इतिहासकार इस पर एकमत हैं कि 1700 से 1800 के बीच यूरोपीय जनसंख्या में 48 प्रतिशत वृद्धि के कारण बाजार का आकार एवं स्वरूप बदल गया। अधिकांश बाजार नगरों तथा उपनगरों में स्थित थे जो खाद्य-सामग्री तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के लिए स्थान-विशेष पर केन्द्रित थे। 1830 और 1870 के बीच यूरोप के नगरों एवं उपनगरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई। 1861 में 29 प्रतिशत तथा 1867 में जर्मनी में जनसंख्या में 36 प्रतिशत तक वृद्धि हुई। इन परिवर्तनों के साथ ही पश्चिमी यूरोप में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात घट गया। जर्मनी तथा फ्रांस में शहरीय जनसंख्या ग्रामीण जनसंख्या से आगे निकल गई। पूर्वी यूरोप की अपेक्षा पश्चिमी यूरोप का शहरीकरण पहले तथा बड़े पैमाने पर हुआ।

जनसंख्या और औधोगिक परिवर्तनों में सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है फिर भी इस तर्क में सत्यता है कि कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को खेती की सुविधा न रहनें के कारण बड़े औधोगिक शहरों के जीवन के योग्य अपनी आय को बढाने के लिये अधिक बच्चों को जन्म देते थे जिससे अधिक काम करने वालों के द्धारा अधिक आय हो सकेगी। इसके अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान में प्रगति होने के कारण मृत्यु दर में भी कमी हुई। जहाँ पहले बच्चों के जीवित रहने की सम्भावना 40 प्रतिशत होती थी अब बढ़कर 60 प्रतिशत हो गई। जनसंख्या-वृद्धि में यह भी एक कारण था। इसके अतिरिक्त यूरोपीय युद्धो से आंतकित होकर भी बहुत से लोगों ने इंग्लैण्ड में शरण ली। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि का इन औधोगिक परिवर्तनो से भले ही सीधा सम्बन्ध न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों की कमी नहीं थी। इसके अतिरिक्त जनसंख्या का घनत्व दक्षिण-पूर्वी कृषि प्रधान क्षेत्रों के स्थान पर उत्तर पश्चिमी औधोगिक क्षेत्रों की ओर बढ़ने लगा।

इंग्लैण्ड के निवासियों का जीवन-स्तर अन्य देशों की तुलना में उच्च था। यहाँ घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति की लिये पर्याप्त वस्तुओं की आवश्यकता थी। इंग्लैण्ड में प्रति व्यक्ति आय अन्य देशों की तुलना में अधिक थी। जीवन स्तर के विकास का लाभ भी उद्योगों को ही मिलता है। इसलिए इंग्लैण्ड में ही वस्तुओं की पर्याप्त माँग होने के कारण अधिक उत्पादन की तरफ ध्यान दिया गया। इंग्लैण्ड में वस्तुओं की अधिक मांग का कारण नगरीय जीवन का विकास भी था इंग्लैण्ड में नगरों का विकास उसके लीवरपूल, मेनचेस्टर, बर्मिधम तथा लीड्स जैसे औधोगिक नगरों के कारण हुआ।

इन औधोगिक नगरों में जीवन -स्तर के विकास से वस्तुओं की माँग बढ़ी। अतः उद्योगों का विकास हुआ।

इंग्लैण्ड के उपनिवेशों में धीरे-धीरे वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी। अतः अधिक उत्पादन की ओर ध्यान दिया गया। इस बढ़ती हुई माँग की पूर्ति नवीन आविष्कारों तथा मशीनों द्धारा ही की जा सकती थी। अतः यूरोप के लगभग सभी देशों में अधिक उत्पादन का प्रयत्न किया गया जो कि औधोगिक विकास से ही सम्भव था।

(2) राष्ट्रवाद

बाजारों के विस्तार में राष्ट्रवाद का प्रभाव इटली तथा जर्मनी में स्पष्ट दिखयी देता है क्योंकि इन राष्ट्रों के निर्माण में आर्थिक शक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा था। मुक्त आन्तरिक व्यापारिक संघ शोलवेरिन (1834 में प्रशा के नेतृत्व में स्थापित जर्मन-राज्यों का सीमा-शुल्क संघ) के गठन से ऐसी जर्मन-अर्थव्यवस्था का प्रारम्भ हुआ जिससे भविष्य में देश का एकीकरण सम्भव हो सका। नवीन राष्ट्रीय बाजारों एवं औधोगिक अर्थ-व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिये राष्ट्रीय परिवहन प्रणाली का विकास हुआ। इसके अन्तर्गत प्रारंभ में पक्की सड़कों में सुधार और नहरों के निर्माण को प्रमुखता दी गई, फिर वाष्पचालित रेल इंजिन एवं रेलमार्गो का निर्माण हुआ। 1830 के प्रारम्भिक दशक में फ्रांस, इटली, बेल्जियम और आस्ट्रिया में स्थानीय रेलमार्गों का निर्माण हुआ। 1840 के प्रारम्भ में जर्मन-राज्यों में रेलमार्गो का निर्माण प्रारम्भ हुआ। 1870 के आते-आते सभी यूरोपीय देशों में मुख्य रेलमार्गो का जाल बिछ गया। इस रेलतन्त्र में राष्ट्रीय बाजार एवं औधोगिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा किया। साथ ही लोह तथा इस्पात उद्योगों और कोयला-खनन के कार्य को प्रोत्साहन दिया। रेल-व्यवस्था के कारण अधिक वस्तुओं का परिवहन होने लगा और परिवहन द्रुतगति से होता था जिससे प्रतिस्पर्धा को बढावा मिला।

जैसे-जैसे मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाजार पर निर्भर होता गया, वैसे-वैसे संचार-व्यवस्था में भी सुधार हुआ। डाक-सेवाओं की स्थापना, तार-प्रणाली का प्रयोग एवं समाचार-पत्रों का चलन भी हुआ। इस संचार-व्यवस्था के कारण दूर-दूर स्थित बाजार आपस में जुड़ गए। अतः यूरोप में राष्ट्रीय बाजारों और औधोगिक अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिला।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि

अन्तराष्ट्रीय व्यापार तथा औधोगिक अर्थव्यवस्था के विकास का मुख्य कारण समुद्र पार जहाजरानी का विकास था। प्रारम्भ में जहाजों की संख्या बढ़ायी गई, फिर नौचालन-पोत सुधारने का प्रयत्न किया गया और 1850 के पश्चात् वाष्प-पोत के विकास को प्रमुखता दी गई। इन परिवर्तनों के परिणमस्वरूप जहाजरानी सेवाओं में तीव्रता से विस्तार हुआ और यूरोपीय राष्ट्रों ने नवीन बाजारों की खोज तथा कच्चे माल को सामुद्रिक

स्त्रोत से लाने के उद्देश्य से व्यापारी बेड़ों को महत्व देना प्रारम्भ कर दिया ताकि स्वदेशी औधोगिक अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सके। इस प्रकार 1870 तक विभिन्न यूरोपीय राष्ट्रों के बीच व्यापार में वृद्धि तथा संचार-व्यवस्था में विकास का काल रहा।

जब अन्तराष्ट्रीय व्यापार और संचार-व्यवस्था का विकास हुआ तब रूई, ऊन, लोहा और रबड़ जैसा कच्चा माल समुद्र पार से यूरोप में आयात करना सरल हो गया। अन्तराष्ट्रीय व्यापार के विकास के कारण यूरोप के तैयार माल के लिये समुद्रपार का महत्वपूर्ण बाजार अस्तित्व में आ गया जिससे आर्थिक गति बहुत तीव्र हो गई। अन्तराष्ट्रीय व्यापार से यूरोप में प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने मे सहायता मिली, अतः यूरोप में आय और उपभोग भी बढ़ गया। पश्चिमी यूरोप के देशों में यह बात विशेष रूप से देखने को मिलती है क्योंकि 1870 तक ये देश आयात-निर्यात के विश्वव्यापी बाजार के साथ सम्बद्ध हो गए थे। इस समय ब्रिटेन ही एक ऐसा देश था जिससे विदेशी पूँजी मिल सकती थी, परन्तु कुछ अन्य यूरोपीय देशों-फ्रांस, जर्मनी में भी इस क्षेत्र में कुछ क्रियाशीलता दिखलाई पड़ी।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि की एक अन्य बिशेषता थी - यूरोपीय लोगों का विदेशों में प्रवास, विशेषतया उपनिवेशों में। 19वीं शताब्दी में फ्रांस ने औपनिवेशिक साम्राज्य खडा कर दिया जबकि हालैण्ड के पास पहले से ही ऐसा साम्राज्य था। परन्तु 1870 के पश्चात् समुद्रपार औपनिवेशिक क्षेत्रों पर स्वामित्व के कारण पूँजीनिवेश को बढावा मिला और नवीन बाजार खुले जिससे यूरोप में औधोगिक अर्थव्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

(4) राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ

यूरोपीय औधोगिक अर्थव्यवस्था की एक अन्य विशेषता यह थी कि भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों ने अपनी राष्ट्रीय व्यापार एवं औधोगिक नीतियाँ बना लीं। 1820 से 1850 तक यूरोपीय देशों ने संरक्षण नीति को इसलिए अपनाया कि उनके अपने देश के उद्योगपति एवं व्यापारी ब्रिटिश प्रतिस्पधाओं का सामना कर सकें। इसके पश्चात् ऐसा समय आया जब अधिकांश यूरोपीय देशों ने मुक्त व्यापार की नीतियाँ अपना कर अपनी औधोगिक अर्थव्यवस्था को बढ़ाने का अवसर दिया। इस नीति के अन्तर्गत 1852 में बेल्जियम ने मुक्त व्यापार नीति को अपनाया। प्रशा के शोलवेरिन ने 1853 में अनाज-शुल्क समाप्त कर दिया और आस्ट्रिया के साथ मुक्त व्यापार सम्बन्ध स्थापित किया। 1860 में नीदरलैण्ड ने मुक्त व्यापार अपना लिया और ब्रिटेन तथा फ्रांस ने मुक्त व्यापार संधि पर हस्ताक्षर किए। काबूर के आधीन पीडमाण्ट ने अनेक यूरोपीय देशों के साथ मुक्त व्यापार सम्बन्ध स्थापित किए।

परन्तु 1870 के पश्चात् अन्तराष्ट्रीय आर्थिक प्रतिस्पंर्धा के अन्तर्गत यूरोपीय राष्ट्र मुक्त-व्यापारिक नीति छोडने को बाध्य हुए क्योंकि इस प्रतिस्पर्धा के कारण स्वदेशी

बाजार पर राष्ट्रीय नियन्त्रण तथा समुद्रपार के देशों में अपना प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करना आवश्यक हो गया था। खराब फसलों, कम कीमतों और समुद्रपार के कृषि उत्पादनों में भारी आयात के कारण यूरोपीय कृषि में मन्दी आयी, तब कृषक वर्ग ने राज्य से संरक्षण नीति की माँग की। उद्योगपतियों ने भी अपने-अपने उद्योगों को बाहरी प्रतिस्पधाओं से बचाने के लिए कृषक-वर्ग की इन माँगों का समर्थन किया। परिणामस्वरूप 1870 के पश्चात् अधिकाशं यूरोपीय राष्ट्रों ने अपनी अपनी औधोगिक अर्थव्यवस्था को सुदृढ करने तथा विश्वव्यापी मन्दी का सामना करने के लिये आयात शुल्क को पुनः लागू किया। जब यूरोपीय राष्ट्रों के व्यापक बाजार बन गये, तब वस्तुओं की माँग बढ़ने लगी, इससे विपणन-विधियों में सुधार करना आवश्यक हो गया।

(5) वित्त और व्यापार संगठन का विकास

यूरोपीय देशों में बढती हुई औधोगिक अर्थव्यवस्था, औधोगिक उत्पादन और तकनीकी उपलब्धियों के परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न आर्थिक संस्थाओं का निर्माण हुआ। औधोगिक और व्यापारिक गतिविधियों के बढने से पूँजी की माँग को प्रोत्साहन मिला। अतः सर्वप्रथम वित्त संगठन अस्तित्व में आया। 1820 में फ्रांस में "सोसाइटी कोमांदी लैयर द लिदस्त्री" नामक संगठन स्थासिपत किया गया। 1836 में "बैक दि बैल्जीक" की स्थापना कम्पनियों के लिए प्रारम्भिक पूँजी जुटाने के उद्देश्य से की गई। 1830 से प्रारम्भ होने वाले दशक में निवेश के लिये उद्योगों से सम्बन्धित बचत बैंक स्थापित किए गए। 1845 में उद्योगपतियों को ऋण देने के उद्देश्य से प्रशा में एक "संयुक्त पूँजी बैक" स्थापित किया गया। फ्रांस में साख पोषित निवेश को जुटाने के लिए "क्रेडिट मोबिलियर" और "फ्रान्सियर" नामक वित्तीय संगठन स्थापित किए गए, परन्तु ये प्रारम्भिक संस्थाएँ इतनी सुदृढ़ एवं बडी नही थी कि वे उद्योगों के लिए पूँजी की बढ़ती हुई माँग को पूरा कर सकें। अतः इस संकट ने फ्रांस में उधार-पद्धति (क्रेडिट सिस्टम) को जन्म दिया। जर्मनी में 1850 के प्रारम्भिक दशक तक या तो सरकार स्वंय पूँजी की व्यवस्था करती थी अथवा भिन्न-भिन्न पूँजीपतियों ने अपनी ही प्रेरणा से कम्पनियां स्थापित कर लीं। 1864 से फ्रांस में जमा-बैंक स्थापित किए गए और 1872 में फ्रांस में सर्वप्रथम निवेश-बैक का गठन किया गया जिसने औधोगिक एवं व्यापारिक उद्यमों के लिए दीर्घकालीन दायित्व को स्वीकार किया। इसके पश्चात् अन्य यूरोपीय देशों में भी फ्रांसीसी वित्तीय संगठनों कें अनुरूप संस्थाएँ स्थापित की गईं। जर्मनी तथा आस्ट्रिया में ऐसे संगठनों ने औधोगिक अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार के वित्तीय संगठनों ने यूरोप मे उधोगों को जन्म तो नही दिया, परन्तु उनके विकास में महत्वपूर्ण सहायता अवश्य दी।

यूरोपीय देशों मे केन्द्रीय बैंक संस्थाओं का विकास 19 वीं शताब्दी में हुआ। ये संस्थाएँ मुद्रा जारी करने तथा औधोगिक अर्थव्यवस्था के उतारचढ़ावों के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए उत्तरदायी थीं। फ्रांस में "बैंक द फ्रांस" ने व्यापारी समुदाय

की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन जुटाया। जर्मन एकीकरण के बाद जो "राइख बैंक"स्थापित किया गया था उसने जर्मन मुद्रा के मूल्य को स्वर्ण के साथ जोड़कर वित्तीय स्थिरता को स्थापित किया। 1870 के बाद के दशक में पश्यिमी यूरोप के अधिकांश देशों ने स्वर्णमान को अपना लिया, उदाहरणार्थ- 1871 में हालैण्ड ने, 1873 में जर्मनी, डेन्मार्क तथा स्वीडन, 1875 में नार्वे, फ्रांस, इटली, यूनान, स्विटजरलैण्ड, स्पेन, रूमानिया तथा फिनलैण्ड ने स्वर्णमान को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण-यूरोप में वित्त और व्यापारिक संगठनों का विकास होने से औधोगिक अर्थव्यवस्था का भी विकास हुआ।

कृषि और उधोग, व्यापारी और श्रेणी में सम्बन्ध

10.4 कृषि और उद्योग

18वीं सदी में यूरोप की 85 प्रतिशत जनसंख्या अपनी जीविका के लिए कृषि-कार्य करती थी और शेष 15प्रतिशत में से अधिकांश लोग कृषि-कार्य में लगे हुए लोगों से लगान अथवा भूमिकर वसूल करके अपनी जीविका चलाते थे। कृषि अब भी परम्परागत तरीकों से की जाती थी और मध्यकाल से अब तक इन परम्परागत तरीकों के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। लेकिन इस सदी के उतरार्द्ध में कृषि के क्षेत्रों में सुधार करके उत्पादन बढाने के कुछ प्रयास अवश्य किए गए थे, परन्तु उसका कुछ ठोस प्रभाव देखने में नही आया। इसका कारण यह था कि यूरोपीय कृषकों में कोई एकरूपता नहीं थी, पूर्वी यूरोप में जहाँ अधिकांश खेतिहर मजदूर बंधुआ थे तो पश्चिमी यूरोप में वे स्वतन्त्र थे। पश्चिमी यूरोप मे चरागाह अधिकाधिक संख्या मे फसल उत्पादन के काम में लाए जाने लगे और ब्रिटेन में कृषि उत्पादन बढाने के तरीकों पर भी खोज हुई, परन्तु फिर भी खाद्यान्न का उत्पादन उतना नहीं बढ़ा जितना कि आवश्यक था। पश्चिमी यूरोप अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पर्याप्त खाद्यानउत्पन्न नहीं कर पाता था, इसलिए उसे कुछ मात्रा में खाद्यान्नों का आयात पूर्वी देशों से करना पड़ता था। पूर्वी यूरोप में भूमि तो बहुत थी लेकिन वहां लोग इतनी संख्या में नही थें कि वे सम्पूर्ण भूमि पर कृषि कार्य कर सकें। फिर भी पूर्वी यूरोप अपनी आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्न अवश्य पैदा कर लेता था और कृषि -उपज का कुछ भाग वह पश्चिमी यूरोप को भी निर्यात करता था।

18वीं शताब्दी में यूरोपीय जनसंख्या में लगभग 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 85 प्रतिशत यूरोपीय जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी। उनकी समृद्धि कृषि-उत्पादन में वृद्धि अथवा रोजगाार के वैकल्पिक अवसरों पर निर्भर थी। जिससे कि उनके रहन-सहन के स्तर में सुधार हो सके। यूरोप में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ कृषि-उत्पादन मे भी कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई जिससे जनसाधारण के जीवन-स्तर में सुधार हो सके। यूरोप मे जनसंख्या का दबाव पश्चिमी यूरोप में जितना स्पष्ट था उतना पूर्वी यूरोप में नहीं। पूर्वी यूरोप में संचार एवं यातायात साधनों में अव्यवस्था थी। समय-समय पर अकाल

भी पड़ते थे लेकिन फिर भी सामान्य वर्षो में इतना उत्पादन हो जाता था कि वह उनके उपयोग के बाद भी बचा रहता था। यह अतिरिक्त उत्पादन पश्चिमी यूरोप को निर्यात किया जाता था और इस प्रकार पश्चिमी यूरोप में अकाल की स्थिति उत्पन्न नहीं होती थी। पूर्वी यूरोप में कृषि दास व्यवस्था (Serf-dom) प्रचलित थी और जहाँ कृषकों के पास भरण-पोषण के लिए पर्याप्त खाध सामग्री थी वहाँ बाजार में उपलब्ध अन्य वस्तुओं को खरीदने के लिए उनके पास क्रयशक्ति नहीं थी। पश्चिमी यूरोप में यद्यपि कृषि-उत्पादन में वृद्धि के तरीकों के बारे में काफी प्रयास हो रहे थे लेकिन इंग्लैण्ड को छोड़करअन्य भागों में उसकी उपलब्धि नगण्य थी। फ्रांस में कृषि-उत्पादन बढाने की तकनीक काउपयोग किया गया था लेकिन वह केवल अंगूरों के उत्पादन में, क्योंकि उनसे शराब बनायी जाती थी। परिणाम यह हुआ कि आवश्यक अनाजों के कृषि-क्षेत्र में कमी हुई जिससे निर्धन लोगों की जीविका चलती थी। इसका प्रभाव यह पड़ा कि कृषि-उत्पादन एवं भूमि की कीमतें बढ़ गयीं।

औधोगिक प्रगति के लिए यूरोप को परम्परागत कृषि-पद्धतियों से मुक्त करना आवश्यक था क्योंकि ये परम्परागत पद्धतियाँ जनसंख्या की उदरपूर्ति करने में असमर्थ थीं। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोपीय कृषि व्यवस्था में बार-बार उत्पन्न होने,वाले संकट और दुर्भिक्षों की प्रमुखता रही। इसके परिणामस्वरूप वाणिज्यकृत कृषि का विकास तथा जनसंख्या वृद्धि से कृषि के स्तर की उन्नति, नवीन फसलों की खोज, वैज्ञानिक ढंग से नवीन कृषि तकनीकों के अन्वेषण को प्रोत्साहन मिला। बाजार-कृषि व्यवस्था के विकास के फलस्वरूप भी कृषि-पद्धतियों में परिवर्तन हुआ ताकि कृषि-उत्पादन को बढाया जा सके। 1830-70 के बीच में ये प्रवृत्तियाँ और भी अधिक बढ़ गयीं, जब प्रशा और आस्ट्रिया में जागीरदारी प्रथा समाप्त हुई, रूस में कृषि-दास स्वतन्त्र हुए। कृषि-क्रांति को सर्वप्रथम पश्चिमी यूरोप में अनुभव किया गया और उसके बाद दक्षिण तथा पूर्वी यूरोप में। कृषि-व्यवस्था में यह परिवर्तन फ्रांस में 1750 से, जर्मनी और डेन्मार्क में 1790से, आस्ट्रिया, इटली और स्विटजरलैण्ड में 1820 से और रूस तथा स्पेन में 1860 से देखने को मिलता है।

कृषि में इन परिवर्तनों से व्यापार और उद्योग को अत्यधिक लाभ हुआ। व्यापार को इसलिए कि कृषि के अधिक से अधिक उत्पादन बिक्री के लिए बाजार में आने लगे और उद्योग को इसलिए कि नवीन कृषि -व्यवस्था बढ़ती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति में समर्थ थी। इसलिए उसने कृषि में निरन्तर वृद्धि को प्रोत्साहन दिया तो दूसरी तरफ कृषक-वर्ग का महत्व भी बढा। कृषि के क्षेत्र में इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दुर्भिक्ष समाप्त हो गए और बार-बार कृषि के क्षेत्र में आने वाले संकटों का हानिकारक प्रभाव भी समाप्त हो गया। कृषक भी समाज के अन्य वर्गो के साथ-साथ औधोगिक उद्यमों में निवेशकर्त्ताओं के रूप में आगे आए।

18वीं शताब्दी में यूरोप में जो उद्योग विद्यमान थें कृषि के समान भी कार्य पद्धति और उद्योगपतियों का दृष्टिकोण परम्परागत था। उद्योगों का संगठन "गिल्डों" (Guilds) अर्थात् श्रेणियों में विभाजित था। उच्चवर्ग की बढ़ती हुई सम्पदा के कारण उपभोक्ता खर्च में पहले की अपेक्षा वृद्धि तथा ऐसा जनसमूह जो कृषि-कार्य न मिल पाने के कारण उद्योगों में रोजगार प्राप्त करने को उत्सुक, कुछ ऐसे कारण थे जो उद्योगों को बढ़ाने में सहायक थे। इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस तथा स्विटजरलैण्ड में भिन्न प्रकार के उद्योग स्थापित हुए, क्योंकि इन देशों में उद्योग "गिल्ड" के नियन्त्रण से मुक्त था। यही कारण है कि इन देशों में यान्त्रिकी ढांचेपर उद्योगों का विकास हुआ। इन देशों में अपने देश के बाजारों के लिए और पूर्वी यूरोप के लिए ऊनी -वस्त्रों का उत्पादन होता था, लेकिन 1760 के पश्चात् इंग्लैण्ड और फ्रांस में ऊनी-वस्त्र उत्पादन में गिरावट आयी क्योंकि इनको बनाने की तकनीक अन्य यूरोपीय देशों ने भी सीख ली। सभी यूरोपीय देशों में उद्योगों पर शासकों अथवा कुलीन वर्ग का नियन्त्रण था। इस शताब्दी में जिन उद्योगों का विकास हुआ उनमें लोहा,युद्ध सामग्री, जहाज बनाना तथा चर्म-उद्योग प्रमुख थे जो युद्धों के कारण ही अस्तित्व में आए थे। लेकिन यूरोप में फिर भी बेरोजगारी की समस्या काफी विक्ट रही और इन उद्योगों में मजदूरी काफी कम थी। इस काल में ग्रामीण उद्योगों को छोड़कर सभी यूरोपीय शहर औधोगिक नगर बन गए थे। सन् 1770 के पश्चात् ओधोगिक विकास के कारण ब्रिटेन के नगर बढ़ने लगे या नवीन नगरों की स्थापना होने लगी। इसके प्रमुख उदाहरण बर्मिंघम, मैनचेस्टर, लीस्टर और नॉर्टिंघम आदि नगर हैं।

ब्रिटेन में औधोगिक क्रांति की प्रक्रिया में राज्य ने अप्रत्यक्ष रूप से मदद की, किन्तु उद्योगों की स्थापना में उसकी कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं थी। लेकिन यूरोपीय महाद्वीप के "प्रबुद्ध स्वेच्छाचारी शासकों "(Enlightened despot) जैसे, प्रशा का फ्रेडरिक महान् (1740-86), आस्ट्रिया की मेरिया थेरेसा (1740-80) और रूस की कैथरीन महान् (1762-96) ने राज्य के अन्तर्गत कारखानों एवं उद्योगों की स्थापना की थी। 18वीं शताब्दी में फ्रांस में भी अस्त्र-शस्त्र, धातुकर्म तथा विलासिता की वस्तुओं के निमार्ण से सम्बन्धित कुछ राज्य द्वारा संचालित उद्योग असफल रहे जबकि ब्रिटिश शासन ने अपने पूँजीपति वर्ग को जो अप्रत्यक्ष रूप से सहायता दी थी उससे उद्योगों की स्थापना में बड़ी सहायता मिली। फ्रांस में अधिकांश सहायता कर में छूट, कम ब्याज पर या बिना ब्याज के ऋण, बिक्री के एकाधिकार अथवा प्रौधोगिकीय सलाह आदि के रूप में थी। 1789 तक फ्रांसीसी सरकार ने बिना ब्याज के लगभग 13 लाख लिव्रे (Livres) का ऋण दिया और फिर 50 लाख लिव्रे आर्थिक सहायता के रूप में दिए। उसने ब्रिटिश निर्माताओं, जैसे वस्त्र-निर्माण में जॉन होलकर एवं लौह एवं तोप-निर्माण में विलकिंसन को अपने यहां पर नियोजित किया ताकि वे फ्रांसीसी उद्योगों को अपनी तकनीकी शिक्षा दे सकें। प्रशा में राज्य द्वारा संचालित लोहे के उद्योग स्थापित किए गए तथा कोयले की भट्टी का विकास करने के लिए ब्रिटेन से जॉन बेलडन (John Baildon) को

आमन्त्रित किया गया। चार्ल्स गेस कायने (Charles Gascoyne)" रॉयल आयरन फाउण्ड्री एण्ड इन्जीनियरिंग वर्क्स" में कार्य करने के लिए रूस गए।

दूसरी तरफ इंग्लैण्ड ने अपने औपनिवेशिक युद्धों तथा जहाज़रानी अधिनियमों द्धारा व्यापारिक वर्ग की सहायता की। इससे एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक तन्त्र तैयार हुआ जिसका केन्द्र इंग्लैण्ड था। जहाजरानी अधिनियमों से ब्रिटिश व्यापारियों का उपनिवेशों के व्यापार पर नियन्त्रण स्थापित हो गया। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में इंग्लैण्ड तथा हालैण्ड ये दो देश ऐसे थे जो वाणिज्यिक एवं उद्योग-सम्बन्धी हितों के प्रति पूर्ण संवेदनशील थें जबकि अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की सरकारें अभिजातवर्गीय तथा जमींदारों के हितों के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखती थी।

फ्रांस में 1790 तक कुल 900 कताई मशीनें थीं। ला क्रूसो (Le Creusot) नामक स्थान पर एक फ्रांसीसी लोहा-निर्माता इगनेस द वेडल (Ignace de Wendel) ने 1785 में ब्रिटेन के विलियम विलकिंसन की तकनीकी सलाह से कोयले से पिधलाए जाने वाले लोहे का उत्पादन प्रारम्भ किया जबकि किसी अन्य फ्रेंच पूँजीपति ने उसका अनुकरण नहीं किया। प्रशा मे उद्योग 1796 तक कोयले द्धारा पिघजाए हुए लोहे का सफलतापूर्वक उत्पादन करने लगे थें। इस प्रकार यूरोप मे उद्योग परम्परागत ही थें किन्तु इनमें आधुनिक औधोगिक क्षेत्रों की छोटी-छोटी श्रेणिया दृष्टिगोचर होती

परन्तु यूरोपीय महाद्वीप पर फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन युद्धों का प्रभाव बहुत कुछ अंशों तक लाभ प्रद रहा। फ्रांस में नेशनल एसेम्बली का सुझाव पूँजीवाद को प्रोत्साहन देने तथा सामन्तीय व्यवस्था को समाप्त करने की तरफ था। 1790 में इसने फ्रांस में मुक्त व्यापार के क्षेत्र में आने वाली सभी बाधाओं -आन्तरिक सीमा शुल्क, चुँगी आदि को समाप्त कर दिया जिससे स्वदेशी बाजार (Home Market) विस्तृत हुए। 1791 में श्रेणियों को समाप्त कर दिया गया, ट्रेड यूनियनों को अवैध घोषित कर दिया गया और व्यापार तथा व्यवसाय की स्वतन्त्रता दी गयी। उद्योग के वातावरण को और अधिक उन्नत बनाने के लिए मानक प्रणाली के रूप में मीट्रिक प्रणाली को प्रारम्भ किया गया, दशमलव मुद्रा का प्रचलन किया गया तथा आविष्कारों के लिए संरक्षात्मक प्रणाली को प्रारम्भ किया गया। इन सुधारों को बेल्जियम, हॉलैण्ड, स्विटजरलैण्ड, इटली तथा जर्मनी मे भी लागू किया गया। नेपोलियन ने सड़क-तन्त्र के विकास द्धारा, अपनी विधिसंहिताओं (Legal Codes) तथा अगिनत जर्मन राज्यों की संख्या में कमी करके उद्योगों को प्रोत्साहन दिया।

19वीं शताब्दी में अनेक परिवर्तनों ने यूरोपीय उद्योगों को नवीन स्वरूप में परिवर्तित किया जिससे औधोगिकरण की गति भी तेज हुई। यह प्रवृत्ति वैसे तो सम्पूर्ण यूरोप में दृष्टिगोचर होती है परन्तु पश्चिमी यूरोप में जितनी प्रबल थी उतनी दक्षिणी और पूर्वी भागों में नहीं। इस समय यूरोपीय देशों ने अपने बाजार के लिए व्यापक उत्पादन प्रारम्भ किया। उन्होनें घरेलू तरीके छोड़ दिए तथा उद्योग स्थापित किए,

औधोगिक प्रणाली के लिए नवीन आविष्कार किए,कच्चे माल का आयात किया और अपने संसाधनों का विकास किया जिससे कि उनके द्धारा स्थापित उद्योगों का विस्तार हो सके। इस परिवर्तन के कारण खेतिहर समाज का पतन हुआ और ग्रामीण मजदूरों ने नगरों की तरफ प्रस्थान किया। इस समय जिन उद्योगों का विकास एवं विस्तार हुआ उनमें सूती एवं ऊनी वस्त्रों उद्योग, कोयला एवं लोहे के उद्योग प्रमुख हैं।

10.5 व्यापारी और व्यापारिक संघ

18 वीं शताब्दी की यूरोपीय अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थी - विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था का उदय होना तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में उन्नति। उनके परिणामस्वरूप विभिन्न यूरोपीय देशों की आर्थिक गतिविधियां अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ गयीं। इस व्यापार में यूरोपीय व्यापारियों ने प्रमुख भूमिका निभयी। उसका सर्वाधिक लाभ भी यूरोपीय देशों को हुआ। अभी तक इंग्लैण्ड के व्यापारी भारत का माल चीन मे तथा चीन का माल यूरोप में बेचते थे परन्तु अब यह विचारधारा बलवती होने लगी कि पर्याप्त श्रम उपलब्ध है, उसके उपयोग से कुटीर उधोगों का उत्पादन बढ़ सकता है। इस समय इंग्लैण्ड ने 1763 में फ्रांस को पराजित कर उसके बहुत से उपनिवेश छीन लिए। 18 वीं शती में जहाजरानी के विकास, बैकिंग व्यवस्था तथा व्यापारी एजेण्टों के कारण यूरोप की आर्थिक राजधानी लन्दन हो गयी। फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात् हॉलैण्ड के युद्धों में उलझ जाने के पश्चात् इंग्लैण्ड ने उसके सारे आर्थिक प्रबन्ध हड़प लिए।

फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व यूरोप में कठोर सामाजिक स्तरीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान थी। पूर्वी यूरोप के विशाल कृषकवर्ग की स्थिति दासों के समान थी और वहाँ पर छोटे से जमींदार वर्ग का प्रभुत्व था। पूर्वी यूरोप में किसी भी प्रकार के व्यापारिक अथवा औधोगिक मध्यमवर्ग का अस्तित्व नहीं था और न ही आम उपभोग की वस्तुओं की कोई निश्चित माँग बन रही थी। ऐसी परिस्थिति में यूरोपीय महाद्धीप के औधोगिक उत्पादन पर व्यापारिक संघों (Guilds) द्धारा नियन्त्रित कुशल कारीगरों एवं व्यापारियों का प्रभुत्व था। वे एक सीमित उच्चवर्गीय बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करते थें। दूसरी तरफ इंग्लैण्ड ने औपनिवेशिक युद्धों तथा जहाजराजी अधिनियमों द्धारा व्यापारिक एवं निर्माण-कार्य में लगे हुए वर्गों की सहायता की। औपनिवेशिक युद्धों में विजय से एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक तन्त्र स्थापित हो गया जिसका केन्द्र इंग्लैण्ड था। जहाजरानी अधिनियमों के कारण नौ परिवहन तथा उपनिवेशों के व्यापार पर ब्रिटिश व्यापारियों का नियन्त्रण स्थापित हो गया था।

फ्रांस में नेशनल एसेम्बली की स्पष्ट नीति पूँजीवाद को प्रोत्साहित करने की थी। 1790 में उसने फ्रांस में मुक्त व्यापार के क्षेत्र में आने वाली सभी बाधाओं को समाप्त कर दिया था और अपने गृह बाजार (Home Market) को विस्तृत किया। 1791 में उसने व्यापारिक संघों (Guilds) को समाप्त कर दिया था और यह घोषणा की कि "प्रत्येक व्यक्ति व्यापार, व्यवसाय अथवा पेशा अपनाने के लिए स्वतन्त्र है।" इस घोषणा

से व्यापारी वर्ग को प्रोत्साहन मिला। लेकिन इस समय यूरोपीय पूँजीपति तथा व्यापारी नवीन प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने के स्थान पर पुरानी ब्रिटिश मशीनों का प्रयोग करना ही अधिक पसन्द करते थे। यूरोप के अन्य देशों के व्यापारियों ने अपनी-अपनी सरकारों के माध्यम से ब्रिटिश स्पर्धा का मुकाबला प्रायः संरक्षणात्मक सीमा-शुल्क आदि लगाकर किया। 1820 से यूरोपीय देशों ने संरक्षण की नीति को अपनाया ताकि उनके अपने व्यापारी एवं उद्योगपति ब्रिटिश प्रतिस्पर्धाओं से पराजित न हो जाएँ।

व्यापारिक संघो का स्वरूप

आधुनिक काल के प्रारम्भ में यूरोपीय व्यापारी व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने ही परिवार की साझेदारी में व्यापार करते थे। अनेक समुद्रपारीय व्यापारों में अलग-अलग व्यापारी हैनसिएरिक लीग अथवा मर्चेण्ट एडवेन्चर्स जैसे बड़े संगठनों के निर्देशन में कार्य करते थे। इनमें भी ये व्यापारी मूलतः स्वंय ही काम करते थे, अपना सामान बेचते थे तथा पूँजी भी अपनी ही लगाते थे। जो व्यापारी स्वयं विदेश नहीं जा पाते थे, वे अपने दलालों के माध्यम से विदेशों के व्यापारियों से सम्पर्क करते थे। स्वाभाविक रूप से ऐसे व्यापार में जोखिम बहुत अधिक रहता था क्योंकि ये दलाल अपने व्यापारी का कभी-कभी अहित कर देते थे। इस समय व्यापारियों में साझेदारी की प्रथा का प्रचलन हुआ और समुद्रपारीय व्यापार में छोटे-छोटे व्यापारी अधिक संख्या में सम्मिलित होने लगे। इस प्रणाली में सामान्यतया एक साझेदार जहाज ले जाता और सामान बेच आता था। अन्य साझेदार अपना माल तथा पूँजी देते थे और उसके लाभ अथवा हानि में सम्मिलित होते थे। यह व्यापार में साझेदारी सामान्य रूप से एक बार की यात्रा के लिए होती थी, लेकिन अधिक आर्थिक गतिविधियों में व्यापारियों की लम्बी साझेदारी का भी प्रचलन हुआ। इन साझेदारों में खुदरा व्यापारी, उद्योगपति तथा बैंकर भी सम्मिलित थे। कुछ व्यापारियों के संगाठन परिवार की विस्तृत साझेदारी के रूप में थे तो कुछ केन्द्रीकृत थे, जैसे संयुक्त पूँजी कम्पनी (Joint stock Company)। इन व्यापारिक कम्पनियों की आधारभूत शेयर पूँजी होती थी जिसे अन्य व्यापारी साझीदार के रूप में देते थे। बाद में उसमें अन्य लोगों को भी सम्मिलित किया जाने लगा।

यह ऐसे व्यापारिक संगठन की आरम्भिक अवस्था थी। व्यापारिक कम्पनियाँ केवल एक यात्रा के लिए माल देती थीं और यात्रा पूरी होने पर लाभांश का भुगतान पूँजी और लाभ के रूप में होता था। " संयुक्त पूँजी कम्पनी " का सूत्रपात एक महत्वपूर्ण व्यापारिक घटना थी जिसके अन्तर्गत व्यापारियों को कुछ विशेष क्षेत्रों में व्यापार करने का एकाधिकार मिला। अकेले व्यापारी को जोखिम उठाने में कुछ हिचकिचाहट होती थी लेकिन संयुक्त पूँजी कम्पनी की स्थापना से इस समस्या का निराकरण भी हो गया।

18वीं शताब्दी में व्यापार के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इससे पहले अधिकाधिक व्यापार यूरोपीय देशों के बीच ही होता था, परन्तु अब यूरोपीय देशों के अन्य देशों के साथ व्यापार में वृद्धि हुई। एक अन्तर्राष्ट्रीय औधोगिक अर्थव्यवस्था

का उदय हुआ। दूसरा, हॉलैण्ड की प्रमुखता का अन्त हो गया तथा ब्रिटेन और फ्रांस परस्पर प्रतिद्वन्दी राष्ट्र के रूप में सामने आए। इन दोनों के मध्य चलने वाले संघर्ष में अन्ततः ब्रिटेन विजयी रहा। इससमय अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में व्यापारिक प्रश्नों को अत्यधिक महत्व देने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। हॉलैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस तथा ब्रिटेन के लिए व्यापार का अत्यधिक महत्व था। व्यापार की वृद्धि के लिए नवीन उद्योगों तथा व्यापार केंन्द्रों को प्रोत्साहन मिला जिससे उपयोग की नई-नई वस्तुओं का उपभोग बढ़ गया। यूरोप के विभिन्न देशों के बीच व्यापार मुख्यतः यूरोप में उत्पादित वस्तुओं का किय जाता था, जैसे बाल्टिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले अनाज तथा टिम्बर, ब्रिटिश कपड़ा तथा धातु का सामान, फ्रांसीसी कपड़ा तथा शराब, स्पेन की ऊन तथा पुर्तगाली शराब। लेकिन धीरे-धीरे इस व्यापार में अन्य महाद्वीपों की वस्तुएं भी सम्मिलित हो गयी तथा लाभप्रद निर्यात व्यापार प्रारम्भ हुआ। इस काल में अन्तर्राज्यीय और अन्तर्महाद्वीपीय व्यापार में भी काफी वृद्धि हुई। अन्य बहुत से देशों जैसे स्कॉटलैण्ड, स्वीडन, हॉलैण्ड, हैमबर्ग, वेनिस, प्रशा तथा आस्ट्रिया में भी व्यापारिक कम्पनियों का गठन किया गया, परन्तु ये अधिक सफल नहीं हो सकीं। इससे यह स्पष्ट हो गया था कि सरकार के समर्थन के बिना व्यापारियों के लिए सुदूर देशों के साथ व्यापार करना सम्भव नहीं था।

10.6 सारांश

इस इकाई में आपने यूरोप में औधोगिक अर्थव्यवस्था से अभिप्राय, औधोगिक परिवर्तन तथा औधोगिक अर्थव्यवस्था के प्रमुख तत्वों का अध्ययन किया और देखा कि विभिन्न यूरोपीय देशों में किस प्रकार औधोगिक परिवर्तन हुए। यूरोप में औधोगिक अर्थव्यवस्था को प्रेरित करने वाले तत्वों में जनसंख्या में वृद्धि, राष्ट्रवाद, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि, राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ, वित्त और व्यापार संगठन आदि प्रवृत्तियों का विशिषट योगदान रहा है जिन्होंने यूरोपीय औधोगिक अर्थव्यवस्था को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। कृषि और उद्योगों के क्षेंत्र में हुए परिवर्तनों से औधोगिक अर्थव्यवस्था को अत्यधिक लाभ हुआ। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका एवं व्यापारिक संघों के स्वरूप में भी व्यापक परिवर्तन हुए, जो कि इस समय की औधोगिक अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता है।

10.7 बोध प्रश्न

(1) औधोगिक अर्थव्यवस्था से आप का क्या अभिप्राय है ?

(2) औधोगिक अर्थव्यवस्था के प्रेरकतत्वों का विवेचन कीजिए।

(3) कृषि क्षेत्र में हुए विकास ने औधोगिक प्रगति को किस प्रकार प्रभावित किया।

(4) 18 वीं शती में व्यापारिक संघो के स्वरूपस का विवेचन कीजिए।

10.8 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1- कैम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री ऑव यूरोप, वॉल्यूम 1, पार्ट 1, II

2- क्लाग, एस.बी.; यूरोपीयन इकीनोमिक हिस्ट्री

3- ओग, एफ.ए.; इकोनोमिक डवलपमेण्ट ऑव मॉडर्न यूरोप

4- पार्थसारथी गुप्ता, यूरोप का इतिहास

5- मिलवर्ड, ए. एण्ड साल, एस.बी. इकीनोमिक डवलपमेण्ट ऑव कॉण्टिनेण्टल यूरोप 1780-1870.

इकाई. 11

उदारवाद और यूरोप में संवैधानिक विकास

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 उदारवाद का अभिप्राय

11.3 उदारवाद की आधारभूत मान्यतायें

11.4 यूरोप में उदारवादी चेतना का विकास-बदलते सैद्धांतिक प्रतिमान

11.5 ब्रिटिश उदारवाद और संविधानवाद

11.6 यूरोप के अन्य देशों में उदारवाद और संवेधानिक विकास पर उसका प्रभाव

11.7 सांराश

11.8 बोध प्रश्न

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगें :

* उदारवाद का जन्म यूरोप में मूलतः सामान्तवाद के विध्टन की पृष्ठभूमि में हुआ।
* उन कारकों के विषय में जिनसे उदारवाद के जन्म और विकास में सहायता मिली
* यूरोप के प्रमुख देशों के संवैधानिक विकास क्रम में किस प्रकार उदारवाद का क्रमिक विकास हुआ और इसकी प्रतिध्वनि उनके संवैधानिक इतिहास पर अमिट प्रभाव छोड़ती गई।
* उदारवादी दर्शन ने आगे चलकर समूचे विश्व इतिहास पर क्या-क्या प्रभाव छोड़े तथा किस प्रकार विश्व इतिहास को प्रभावित किया।
* एक विचारधारा व दर्शन के रूप में उदारवाद का विश्वइतिहास में महत्वपूर्ण योगदान रहा जिसके कारण प्रजातांत्रिक व कल्याणकारी राज्यों का उदय और विकास हुआ।

11.1 प्रस्तावना

यूरोपीय पूँजीवाद के विकास ने समूचे विश्व इतिहास पर गहरी छाप छोड़ी। इसने यूरोप की पारम्परिक सामन्तवादी व्यवस्था को ध्वस्त कर नये सामाजिक सम्बन्धों की

शूरूआत की। भुस्वामियों का शक्तिशाली वर्ग धीरे-धीरे अपना सत्ता व प्रभाव का खाता चला गया तथा नवोदित पूँजीपति व मजदूर वर्ग समाज-व्यवस्था की नई वास्तिविकता बन गये। यूरोपीय औधोगिक क्रांति के फलस्वरूप इस समय पारम्परिक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्थाओं का तेजी से औधोगिकरण हुआ तथा विशाल पैमाने पर किये गये औधोगिक उत्पादन को खपाने के लक्ष्य से उपनिवेशवाद का जाल धीरे-धीरे एशिया अफ्रीका महाद्वीपों में फैलता चला गया। इंग्लैण्ड व अन्य औधोगिकृत देशों की कच्चे माल को खपाने की कोशिशों के कारण एक के बाद एक नये उपनिवेश बनते चले गये।

11.2 उदारवाद का अभिप्राय

उदारवाद में सामान्य तौर पर निम्नलिखित बातों को शमिल करते हैं- संविधानवाद, जनता का प्रभुत्व, विधि के समक्ष समानता, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजातंत्रवाद और वैयक्तिक स्वंतन्त्रता। अठारहवी शताब्दी के यूरोप मे उदारवाद का वर्चस्व था जिसकी वैचारिक जड़ें फ्रांस की क्रांति में ढूँढी जा सकती हैं। मौटे तौर पर हम उदारवाद में दो विचार-सरिताओ को शमिल कर सकते है व्यक्तिवाद तथा प्रजातन्त्र। मैकगर्वन ने ठीक ही लिखा है कि एक राजनीतिक सिद्धान्त के रूप में उदारवाद दो पृथक तत्वों का मिश्रण है इसमें एक लोकतंत्र है और दूसरा है व्यक्तिवाद। इस प्रकार उदारवाद व्यक्ति और उसकी स्वतन्त्रता को केन्द्रबिन्दु मानकर चलता है। उदारवाद यह मानता है कि मनुष्य को विवेक के अनुसार आचरण करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये तथा व्यक्ति को अत्याचारी शासन के विरूद्ध विद्रोह करने का अधिकार दिया जाना चाहिए। उदारवाद का अग्रह है कि समस्त राजनीतिक आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण व्यक्ति को केन्द्र मानकर किया जाना चाहिए।

11.3 उदारवाद की आधारभूत मान्यतायें

उदारवाद की आधारभूत मान्यताओं को निम्न प्रकार से सुत्रबद्ध किया जा सकता है :-

* मानवीय विवेक व बुद्धि में आस्था, विवेकवाद
* समाज व राज्य कृत्रिम संगठन हैं जिनका निर्माण मानव ने अपनी कुछ निश्चित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया है तथा आवश्यक होने पर उसमें संशोधन / परिवर्तन किया जा सकता है।
* व्यक्ति साध्य है और राज्य साधन है।
* मानवीय स्वतन्ता के आदर्श में दृढ विश्वास तथा निरकुंशसत्ता का विरोध वर्गीय विशेषाधिकारों को विरोध।

* व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन जिसमें प्रमुख रूप से जानॅलाक की धारणा के अनुसार जीवन स्वतंत्रता व सम्पति के प्रकृतिक अधिकार शमिल हैं।

* धर्म-निरपेक्ष राज्य का सिद्धान्त '(चर्च व राज्य का पृथक होना)

* जन सम्प्रभुता व लोकतन्त्र में विश्वास।

* कानून के शासन का समर्थन व संविधानवाद में दृढ आस्था।

प्रो. हाबहाअस ने अपने ग्रथं उदारवाद में उदारवाद के अर्थ को 9 प्रकार की स्वतन्त्रताओं के सन्दर्भ में समझाया है जिनमें से प्रमुख हैं - नागरिक स्वतंत्रता, वित्तीय स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक स्वतंत्रता प्रशसनिक भौगोलिक व जातीय स्वतंत्रता आदि। इस विविध स्वतंत्रताओ पर बारी बारी से विचार किया जाना यहां पर आवश्यक है। नागरिक स्वतंत्रता से अभिप्राय है कि व्यक्ति या व्यक्ति समूह कानून सम्मत व्यवहार करे तथा उन्हें मनमानें ढंग से व्यवहार करने की छूट समाज में नही दी जानी चाहिये क्योंकि उदारवाद कानून और स्वतंत्रता को परस्पर पूरक मानकर चलता है न कि एक दूसरे का विरोधी। वित्तीय स्वतंत्रता का अभिप्राय उदारवादियों के उस नारे में अभिव्यक्त होता है :- बिना प्रतिनिधित्व के कर नही (**No Taxation without Representation**) स्पष्टतः इसकी मान्यता है कि जनता पर जन प्रतिनिधियों को इच्छा के विपरीत कर नही लगाये जाने चाहिये। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी उदारवाद में विशेष महत्व है और इसके विविध पहलूओं पर जे.एस.मिल द्धारा विस्तार से चर्चा की गई किन्तु इसका सार यह है कि व्यक्ति को अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार है और वह अपने उपर, शरीर पर, मास्तेक पर, सर्वोपरि सत्ता रखता है। सामाजिक स्वतंत्रता से उदारवादियों का अभिप्राय सामजिक समता से है जिसमें वे वंश, जाति, धर्म, लिंग के आधार पर भेदभाव व विशेष वर्गीय अधिकारों का प्रतिरोध करते हैं। आर्थिक स्वतंत्रता उदारवादियों और विशेषकर पारम्परिक उदारवादियों का सर्वाधिक प्रिय क्षेत्र रहा है। और इस संबंध में उनका मानना यह रहा है कि राज्य या सरकार को आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप न कर स्वतंत्रता प्रतियोगिता के अवसर सुलभ कराने चाहिये। पारिवारिक स्वतंत्रता के सन्दर्भ में उदारवाद स्त्रीयों की स्वतंत्रता का विशेष समर्थन करता है और उसे पति के समान स्थान दिये जाने का पक्षधर है। इसी प्रकार बच्चों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक विकास के लिये उदारवाद समूचित शिक्षा की व्यवस्था किये जाने पर भी बल देता है। प्रशासनिक भौगोलिक व जातीय स्वतंत्रता से उदारवादियों का यह आग्रह है कि व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरूद्ध किसी प्रशासन, क्षेत्र व जाति के अधीन रहने के लिये बाध्य न किया जाये। अर्न्तराष्ट्रीय स्वतंत्रता स्वतः ही इस प्रकार की स्वतंत्रता से पुष्ट होती क्योकि इस प्रकार यह साम्राजयवाद व उपनिवेशवाद विरोधी स्वरूप, ग्रहण कर लेती है। उदारवाद राजनैतिक स्वतंत्रता के माध्यम से स्वेच्छाधारी शासन और निरंकुशता का विरोधी है, जनतंत्र का प्रबल पक्षधर है और

यह मानता है कि सम्पूर्ण शासन सत्ता जनता में या जनप्रतिनिधियों में निहित होनी चाहिये और प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक जीवन व क्रिया कलापों में सक्रिय होकर भाग लेना चाहिये।

स्वतंत्रताओं के उपरोक्त विविध पक्षों की संक्षिप्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदारवाद में स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और व्यक्तिवाद के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को सामाजिक सन्दर्भ में समन्वित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया हैं।

11.4 यूरोप में उदारवादी चेतना का विकास व बदलते सैद्धान्तिक प्रतिभान

उन्नीसवीं शताब्दी को उदारवाद का चरमोत्कर्ष काल माना जा सकता है किन्तु इसके पहले के 75 वर्षो में (1800 से 1875) तक उदारवाद औधोगिक मध्यमवर्ग से सीधा जुड़ा हुआ था। इस अवधि में उदारवाद वहाँ अधिक शक्तिशाली रहा जहा औधोगिक क्रांति का प्रसार हुआ- विशेष रूप से पश्चिमी यूरोप के देशों में। उदारवाद के जन्म तथा विकास के पीछे सामन्तवाद का पतन एक महत्वपूर्ण कारण था। 15 वीं सदी में इंग्लैड के गुलाबों के युद्ध से सामन्तवर्ग को बड़ी क्षति पहुचीं और राष्ट्रीय राज्य के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस समय किसानों में भीषण असन्तोष व्याप्त था जिसके कारण सांमती-शोषण के विरूद्ध यूरोप में अनेक किसान-विद्रोह हुये। 1381 ई. में फ्रांस में हुआ किसान विद्रोह जैकरी-विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था के विकास के कारण इस समय सामन्तवाद के विरूद्ध नई लहर उत्पन्न हुई। यूरोपीय पूर्नजागरण व धर्म सुधार आन्दोलन ने भी सामान्तवाद के पतन व उदारवाद के जन्म और विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। पुर्नजागरण की शुरूआत यद्यपि इटली से हुई किन्तु बाद में यह आन्दोलन समूचे यूरोप में फैल गया। कागज और मुद्रण कला के कारण पुर्नजाण्रण की विचारधारा साहित्य, संस्कृति, राजनीति, कला सभी क्षेत्रों में प्रभावशाली बनती चली गई। पुर्नजागरण काल में भी उदारवादी आन्दोलन की तरह मध यमवर्ग की अग्रणी भूमिका थी क्योंकि इसका स्वरूप तर्क प्रधान, ईसाई विरोधी व सामन्तवाद विरोधी था। दांते को पुर्नजागरण का अग्रदूत कहा जाता है और उसने अपनी प्रसिद्ध कृति "डिवाइन कामेडी" में तत्कालीन समाज व्यस्था की आलोचना कर विचार-स्वतन्त्रता का पक्ष लिया।

सोलहवीं शताब्दी में हुए यूरोप के धर्मसुधार आन्दोलन ने भी उदारवादी चेतना के प्रसार में योगदान दिया। लगातार हुऐ धर्मसुधारों से अन्ततः धर्मनिरपेक्षतावाद को बढ़ावा मिला तथा चर्च की निरकुंशता पर उत्तरोत्तर सीमायें लगाई गई। धर्म सुधारों ने लम्बें दृष्टिकोण से देखनें पर संवैधानिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका -निभाई। जब 1642 में राजा की निरंकुशता का भी उदारवादी प्रेरणाओं से युक्त होकर विरोध किया गया और 1649 में स्वेच्छाचारी राजा चार्ल्स प्रथम को फांसी पर लटका दिया। इस समय तक शक्ति प्रतिस्पर्द्धा राजा व संसद के बीच चल रही थी जिसमें संसद के द्धारा निर्णायक

विजय प्राप्त की गई। इग्लैण्ड में ट्यूडर काल (1485 से 1603 तक) के दौरान निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला रहा किन्तु राजा और संसद का संर्धष इस समय आरम्भ हो चुका था। 1688 की रक्तहीन क्रांति के बाद ही यह प्रतिस्पर्धा समाप्त हुई जान पड़ी जब जैम्स द्वितिय अपने परिवार के साथ भाग खडा हुआ और यह स्पष्ट हो गया कि राजा संसद की मर्जी बिना या विरूद्ध शासन नहीं कर सकता। राजत्वे के दैवीय स्वरूप की यह समाप्ति थी और 1689 के ऐतिहासिक बिल आफ राईटस् द्धारा संसद द्धारा इसे स्वीकृति प्रदान कर दी गई। इस बिल द्धारा संसद की सर्वोच्चता स्थापित हो गई तथा राजा की निरकुंशता सदा के लिए समाप्त हो गई। उदारवादी चेतना के अनुरूप ब्रिटेन में मंत्रीमण्डल प्रथा का विकास हुआ और येह मंत्रीमण्डल संसद के प्रति उत्तरदायी था। इंग्लैण्ड में धीरे-धीरे ही मताधिकार का विस्तार हुआ तथा 1832, 1867, 1884, व 1918 के अधिनियमों द्धारा क्रमशः मध्यम वर्ग, मजदूर वर्ग, खेतिहर मजदूर व महिलाओं को मत देने का अधिकार दिया गया।

उदारवाद के विकास में विज्ञान व विवेकवाद का कारक भी विशेष महत्व का था। सत्रहवी शताब्दी में गैलिलियों, न्यूटन, कोपरनिकस, कैपलर आदि की अनेक वैज्ञानिक खोजों के द्धारा यह माना जाने लगा कि भौतिक विश्व अपरिवर्तनीय नियमों द्धारा संचालित है और मनुष्य इन नियमों की व्याख्या करने में सक्षम है। अतः मनुष्य अपने विवेक से समस्त समस्याओं को सुलझा सकता है। इस समय के दार्शनिकों जिनमें बेकन, रेन, देकार्ते, लाकॅ, वाल्तेयर, रूसों प्रमुख हैं, ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण, संदेहवाद, अनुभववाद व व्यवहारवाद का प्रबल समर्थन किया। लॉक ने मनुष्य के प्रकृतिक अधिकारों, जीवन स्वतंत्रता और सम्पति के अधिकारों का जोरदार पक्ष लिया तथा सीमित व संवैधानिक सरकार के आदर्श को प्रतिष्ठित किया। उसके अनुसार कोई भी सरकार व्यक्ति के जीवन सम्पति और स्वतंत्रता के अधिकारों का उल्लधनं नहीं कर सकती और अगर वह ऐसा करती है तो लोग उसे उखाड़ फेंक सकतें हैं। फ्रांसीसी विचारक मट्स्क्यू ने भी सीमित सरकार के आदर्श का समर्थन किया तथा शाक्ति के पृथककरण तथा नियंत्रण व संतुलन के सिद्धान्तों की विस्तार पूर्वक व्याख्या की। रूसों ने स्पष्टतः यह उद्घोषित किया कि सम्प्रभुता जनता में निहित है तथा कानून राजा का आदेश न होकर सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार सामान्तवाद का विघटन, औधोगिक क्रांति, धर्मसुधार आन्दोलन, मध्यकालीन पुर्नजागरण व विवेकवाद तथा लाक, रूसो, माझटेस्क्यू, बाल्तेयर आदि दार्शनिकों की विचारधारा के समन्वित प्रभाव से मिलकर यूरोप में उदारवदी चेतना का फैलाव हुआ। उदारवादी चेतना की व्यापक अभिव्यक्ति तो बाद के वर्षो में जाकर देखी गई किन्तु 17वीं शताब्दी में ही वे आधारभूत लक्षण और विचार अस्तित्व में आ गये थे जिनसे आगें चलकर उदारवादी दर्शन को बल मिला, उदारवादी राजनीतिक संस्थायें निर्मित की गई और संवैधानिक विकास क्रम को उदारवाद ने निर्णायक रूप से प्रभावित किया।

उदारवाद के बदलते सैद्धान्तिक प्रतितभान

जैसा कि हमने पूर्व में देखा है एक सिद्धान्त व दर्शन के रूप में उदारवाद का उदय यूरोप के मध्यकालीन पुर्नजागरण, ज्ञानोदय, इग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति व फ्रांस की प्रसिद्ध क्रांति के फलस्वरूप हुआ और इसी क्रम में अमेरिंकी मानव अधिकारों की घोषणा को समझा जाना चाहिये। इस समूचे ऐतिहासिक घटनाक्रम से एक-एक कर उदरवाद का प्रभाव यूरोप व विश्व के अन्य भागों में 19वीं शताब्दी में महसूस किया जाने लगा।

ज्ञानोदय पुर्नजागरण और विवेकवाद ने यह मत प्रतिवादित किया कि कोई भी नैतिक उद्देश्य ऐसे नही हो सकते जिन्हें कि पूर्ण रूप से सही समझा जाये और राज्य के सभी नागरिकों पर एक जैसी जीवन शैली आरोपित कर दी जाये इसका अभिप्राय था कि सत्य के विविध पहलू-सापेक्ष स्वरूप में होते हैं और कोई भी इस सम्बन्ध में अन्तिमता का दावा नहीं कर सकता। कदाचित यह मान्यता आगे चलकर धार्मिक सहिष्णुता-सहनशीलता और धर्म निरपेक्षता के प्रति उदारवादी आग्रह में प्रतिफलित हुई। इस प्रकार धार्मिक स्वतंत्रता व सहिष्णुता सदैव के लिये उदारवादी दर्शन का अभिन्न अंग बन गई। जे.एस.मिल की पुस्तक `' आन लिबर्टी ' ने इस सैद्धान्तिक पक्ष को तार्किक परिणाम तक आगे बढाया। स्वतंत्रता को किसी भी प्रकार से प्रतिबन्धित करना राज्य के लिये वांछनीय नही है। व्यक्ति के विचार सत्य, अर्द्धसत्य और पुर्णतः असत्य हो सकते है। किन्तु तीनों ही स्थितियों में इन विचारों का प्रकटीकरण समाज के व्यापक हित में जाता है। क्योंकि विचार सत्य हो या अर्द्धसत्य हो तो उनकी वांछनीयता स्पष्ट है तथा पूर्णतः असत्य होने की स्थिति में भी वे सत्य को समझने में सहायता प्रदान करते है। जे.एस. मिल ने इसी प्रकार कार्य की स्वतंत्रता का समर्थन किया और स्वविषयक कार्यो में व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दिये जाने का समर्थन किया। उसकी मान्यता के अनुसार व्यक्ति के केवल उन्ही कार्यो पर न्यायोचित प्रतिबन्ध राज्सत्ता द्धारा लगाये जा सकते थे जो कि दूसरों से सम्बधिंत हो या दूसरों पर उन कार्यो का प्रभाव पड़ता है। जे. एस. मिल के इन क्रांतिकारी विचारों के कारण जहां उसे स्वतंत्रता का अग्रदूत कहकर पुकारा गया वहॉ इन्ही विचारों ने ब्रिटिश उदारवादी परम्परा की नींव मजबूत की।

इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति ने इस मान्यता को जन्मदिया कि किसी भी प्रकार के शासन में दैवीय अधिकारों का औचित्य नहीं हो सकता तथा आगे चलकर एक नये विचारक्रम की शुरूआत हुई जिसे सामाजिक समझौता सिद्धान्त की संज्ञा दी गई। इसके महान सिद्धान्तकार थे हाब्स, लॉक और रूसों और समवेत रूप से इनके चिन्तन के पीछे उदारवादी व व्यक्तिववादी प्रेरणायें कार्य कर रही थी। फ्रांस की क्रांति में भी इन प्रेरणाओं की गूँज सुनी जा सकती है जिससे यह सुस्थापित कर दिया गया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता बहुत पावन है और राजकीय सत्ता दैवीय समर्थन के बहाने या अन्य किसी बहाने से

इसकी अवहेलना नहीं कर सकती। वस्तुतः इंग्लैण्ड का उदारवाद राजसत्ता के दैवीय स्वरूप के विरूद्ध उत्पन्न हुआ और नवोदित पूँजीपति वर्ग में राजा की शक्ति के विरूद्ध चेतना उत्पन्न हुई जबकि इंग्लैणड का राजा अपने दैवीय अधिकारों की दुहाई देकर निरकुंशता का समर्थन हासिल करता था। 16 वीं शताब्दी में शुरू हुये पश्चिमी यूरोप के धार्मिक सुधार आन्दोलन ने राजा की दैवीय सत्ता को तो अस्वीकार कर ही दिया अपितु इसने धार्मिक व अध्यात्मिक स्वतंत्रता की वकालत करते हुऐ धार्मिक मामलों में चर्च व पोप की निरंकुशता को सशक्त चुनौती प्रदान की। मार्टिन लूथर ने पोप की निरकुशता के विरूद्ध आवाज उठाई और एक प्रबल आन्दोलन उठ खडा हुआ। लूथर ने माना कि धार्मिक मामलों में व्यक्ति के उपर शक्ति का प्रयोग व प्रत्यारोपण अन्याय है और व्यक्ति स्वयं अपनी भक्ति व आराधना से ईश्वर की श्रद्धा प्राप्त कर सकता है।

उदारवादी प्रेरणाओं के पीछें मध्ययुगीन सांमतवादी विरासत की भी सक्रिय भूमिका रही। निश्चित रूप से उदारवाद का उदय और विकास पूँजीपति वर्ग के उदय के साथ एक एतिहासिक अनिवार्यता के रूप में जुड गया। आर्थिक परिवर्तनों से नई विचारध ाराओं के उदय का मार्ग प्रशस्त होता है और उदारवाद के इतिहास पर दृष्टि डालते समय यह मान्यता और अधिक सत्य जान पड़ती है। मध्ययुग का सामाजिक व आर्थिक जीवन किसी भी दृष्टिकोण से स्वतंत्र नहीं माना जा सकता। श्रमिक और व्यवसायी श्रेणीयां (गिल्ड) के नियंत्रण में थे वहां कृषक वर्ग सामन्तो के अधीन था। चर्च का हस्तक्षेप तो था ही। इंग्लैण्ड में राजा और सामन्तों के विरूद्ध व्यापक जन चेतना विद्यमान थी और आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्ग में यह चेतना और अधिक व्यापक होती गई जबकि राजा ने संसद की सहमति के बिना नये कर अरोपित करने चाहे। इसी प्रकार फ्रांसीसी उदारवाद भी राजतंत्र की निरकुंशता के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ जबकि फ्रांसीसी मध्यम वर्ग ने जिसमें कि प्रभुत्व रूप से व्यापारी, दुकानदार, बैंकर बौद्धिकवर्ग व व्यवसायी शमिल थे ने स्वतंत्रता, समानता भ्रातृत्व की आंकाक्षाओं को अभिव्यक्त किया। वास्तव में ये मध्यमवर्गीय लोग अहस्तक्षेप के सिद्धान्त के आधार पर मुक्त व्यापार चाहते थे और व्यापार व पूँजीनिवेश के क्षेत्र में आर्थिक नियंत्रण के क्षेत्र में आर्थिक नियंत्रण का अन्त चाहते थे।

नकारात्मक उदारवाद

माण्टेस्क्यू (पुस्तक-स्पिरिट आफ लाज,) बेंथम (फ्रेगमेणटस् आन गर्वनमण्ट) एडम स्मिथ (वेल्थ आफ नेशन्स) को प्रारंभिक नकारात्मक उदारवाद का सिद्धान्तकार माना जा सकता है जिनकी समवेत रूप से यह मान्यता रही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मामलो का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है और मानव की विवेकशीलता पर विश्वास किया जाना चाहिये नकारात्मक उदारवाद ने स्वतंत्रता प्रतियोगिता का समर्थन किया क्योकि मांग और पूर्ति का नियम व अन्य बाजार व्यवस्था की प्रक्रियायें अपने स्वयं के नियमों से स्वशासित

व संचालित होती है और उनमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप राज्य द्वारा वांछनीय नहीं है। प्रारंभिक दौर के इन नकारात्मक उदारवादियों की स्वाभाविक तौर पर यह मांग थी कि राज्य द्वारा कम से कम कार्य किये जाने चाहियें तथा सरकार मूलतः एक आवश्यक बुराई है जिसका कार्य है परस्पर विरोधी हितों को समन्वित करना। बेथम ने इसी लिये यह माना कि सर्वोत्तम सरकार वह है जो सबसे कम कार्य करें। स्पेन्सर ने जीवशास्त्रीय आधार पर इन्हीं तर्को को आगे बढ़ाते हुयें यह दलील दी कि राज्य को कल्याण व सुरक्षा के क्षेत्र में क्रियाशील नहीं होना चाहिये बल्कि राज्य का मुख्य कार्य कानून व व्यवस्था बनाये रखना है। इसी तरह का समान आग्रह हाब्स के चिंतन में प्रतीत होता है जब वह राज्य के अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करता है। जानलॉक के अनुसार यदि सरकार व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा न करे तो उसके अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं है। फ्रांस की क्रांति तथा अमेरिका क्रांति में इस नकारात्मक उदारवाद की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इन दो महान क्रांतियों में यद्यपि सतही तौर पर देखने से यह मालुम पड़ता है कि स्वतंत्रता व समानता के प्रेरणायें प्रमुख थी किन्तु वस्तुतः समानता और विशेषकर राजनीतिक समानता व स्वतंत्रता की आवाज ही मुख्य थी क्योंकि इस दौर के अनेक उदारवादी तो यह भी मानते थे कि आर्थिकअसमानता अपरिहार्य व एक सकारात्मक अच्छाई है जो वस्तुतः उन्मुक्त व्यापार व बाजार शक्तियों के स्वतंत्र विकास के लिये आवश्यक है।

सकारात्मक उदारवादः

सकारात्मक उदारवाद ने उदारवाद के पारम्परिक स्वरूप में अनेक संशोधन /परिवर्तन प्रस्तुत किये जो उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिकाधिक होते गये। जे. एस.मिल और थामस हिल ग्रीन को इस युग का प्रतिनिधि विचार माना जाता है। सकारात्मक उदारवाद के उदय में औधोगिक क्रांति की परवर्ती घटनाओं का काफी प्रभाव रहा। इस समय आर्थिक विषमतायें बढ़ रही थीं, समाज आर्थिक संकट व मंदी के दौर से गुजर रहा था तथा श्रमिकों के विद्रोह का संकट निरन्तर बढ़ता जा रहा था। इस दौर के उदारवादी यह महसूस करने लगे थे कि बदले हालातों में राज्य का समाज के आर्थिक जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप आवश्यक हो गया है और राज्य से यह अपेक्षा की जाने लगी कि वह सफाई, स्वास्थय, जनकल्याण आदि क्षेत्रों में प्रभावी भूमिका निभायें। ग्रीन ने राज्य से ऐसी परिस्थितियाँ स्थापित करने की अपेक्षा की जिसमें सभी का समान विकास संभव हो सकें। अवसर की समानता राज्य द्वारा सामाजिक संपति का पुर्नवितरण, पूर्ण रोजगार की उपलब्धता आदि अनेक आदर्श जनकल्याण-कारी उदारवाद की आधार शिला बने। 1930 में अमेरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा घोषित "न्युडील कार्यक्रम" उक्त परिवर्तन की सशक्त अभिव्यक्ति थी। इसी प्रकार 1942 में ब्रिटिश अर्थशास्त्री विलियम बेबरिज द्वारा लिखित रिर्पोट भी ब्रिटेन में लोककल्याण कारी राज्य का आधार बनी। संशोधित व सकारात्मक उदारवाद के बीच लोककल्याण कारी राज्य का विचार अधिकाधिक ग्राहय् बनता चला गया तथा राज्य ने शिक्षा, कार्य, मजदूरी व अन्य क्षेत्रों में एकाधिकारी

प्रवृतियों पर अंकुश लगाने का कार्य हाथ में लिया। कीन्स के आर्थिक चिंतन ने भी इन्ही विचारों को पुष्ट किया।

उदारवाद का सामयिक स्वरूप भी अनेक विरोधाभासों व असंगतियाँ से युक्त है। उदारवादी दर्शन में एक मूलभूत तनाव समतावादी अकाक्षाओं व विषमताकारी वैचारिक प्रवृतियों के बीच विद्यमान है। जहाँ एक और यह लोककल्याणकारी राज्य की वकालत करता है वहीं दूसरी ओर इसकी समाज की बाजार सम्बन्धी अवधारणा व संपत्ति का अधिकार असमानतायें उत्पन्न करते हैं। वर्तमान में आनुभाविक उदारवादियों की एक नई पीढी भी है जो अपने दर्शन में विद्यमान व क्रियाशील व्यवस्था को ही सही मानते हुये इसका पक्ष पोषित कर रही है।

11.5 ब्रिटिश उदारवाद और संविधानवाद

उदारवादी दर्शन ब्रिटेन में 16 वी शताब्दी से क्रमिक रूप से विकसित हुआ जबकि संवैधानिक सुधारो का सिलसिला उदारवादी प्रेरणाओं से युक्त होकर प्रारम्भ हो चुका था। ब्रिटिश उदारवाद के प्रारंभिक दौर में इसका नकरात्मक स्वरूप हावी रहा जबकि राज्य सत्ता, और अधिक निश्चीत शब्दों मे राजा की शक्तियों पर अकुंश लगाने के प्रयत्न नवोदित पूजीपति वर्ग व मध्यम वर्ग के नेतृत्व में प्रारम्भ हुये। उपरी तौर पर यह संघर्ष राजा और प्रजा के बीच प्रतीत होता है परन्तु इसी संघर्ष मे ही ब्रिटिश संविधानवाद का आधार विकसित हुआ। ब्रिटिश संवैधानिक संस्थाओं का अनुक्रम एक के बाद एक उदारवाद के अनुकूल होता चला गया और इसकी स्वाभाविक परिणति संसदात्मक प्रणाली की उस संवैधानिक व्यवस्था में हुई जिसे हम अब ब्रिटेन मे पाते है। कानून का शासन, संसदीय सहमति का सिद्धात, राजा की निरंकुशता पर बढते प्रतिबन्ध, व्यक्तिगत अधिकारों को मिलती जन स्वीकृति, धर्मनिरपेक्षता, प्रेस व भाषण की स्वतंत्रता आदि अनेक आयाम ब्रिटिश संविधानवाद में एक के बाद जुडते चले गये। इस महान एतिहासिक रूपांतरण में ब्रिटिश प्रवृति लगातार सुधार करने की और विवेकवादी बनी रही तथा इससे राजतंत्र को जनंतत्र के साथ राजसत्ता को लोकसत्ता के साथ समायोजित करने का सफल प्रयास किया गया।

ब्रिटिश संविधानवादः- ब्रिटिश संविधानवाद पर विचार करने से पूर्व संविधान व संविधानवाद का अर्थ जानना आवश्यक हो जाता है। सरकार या शासन की किसी भी व्यवस्था की आधारशीला उसका संविधान होता है जिसे आधारभूत कानून (**Fundamental law**) माना जाता है। वे आधारभूत सिद्धान्त जो राज्य का स्वरूप तय करते हैं, राज्य के अधिकारों व नागरिकों के अधिकारों में सौंमजस्य बिठाते हैं, शासन के अंगों के परस्पर सम्बन्धों का व शासक और शासितों के सम्बन्धों का नियमन करते है संविधान कहलाते हैं।

संविधानवाद उन विचारों और सिद्धांन्तों की और संकेत करता है जो संविधान का समर्थन करते हैं और राजनीतिक शक्ति पर प्रभावकारी नियंत्रण रखते हैं। प्रायः संविधान व संविधानवाद को समानार्थक समझा जाता है किन्तु संविधानवाद में संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों का समुच्चय मुख्यतः शमिल होता है। संविधानवाद संविधान में निहित मूल्यों, विश्वासों, आर्दशों का प्रतीक है जबकि संविधान इस संविधानवाद की व्यवहारिक परिणति या अभिव्यक्ति होता है। स्पष्टतः संविधानवाद संविधान की तुलना में व्यापक अवधारणा हैं। वस्तुतः संविधान के सैद्धातिक आधार को संविधानवाद माना जा सकता है जिसमें मुख्यतः शक्ति विभाजन, निरकुशता विरोध, लोकतंत्र विधि का शासन आदि मान्यतायें शामिल होती हैं।

ब्रिटिश संविधानवाद के विकास में उदारवादी चेतना का महत्वपूर्ण योगदान रहा,। ब्रिटिश संविधान व संविधानवाद विशेषकर क्रमिक एतिहासिक विकास का प्रतिफल है जो कि उत्तरोतर उदारवादी चेतना के व्यापक प्रसार के साथ स्पष्ट होता चला गया है। संसद की सर्वोच्चता, स्थानीय स्वायतशासन, द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका, प्रतिनिधि शासन प्रणाली, संसद की सर्वोच्चता ब्रिटिश संविधानवाद के उल्लेखनीय महत्वपूर्ण पहलू हैं और उनके वर्तमान विद्यमान स्वरूप के पीछे निश्चित तौर पर उदारवादी प्रेरणाओं और चेतनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रिटिश राज्य प्रणाली कुलीनतंत्र से प्रजातंत्र में किस प्रकार बदली इस महान ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिये हमें उदारवादी सैद्धातिक धरातलों का सहारा लेना पडेगा। ब्रिटेन का इतिहास केल्ट जाति से शुरू होता है जबकि उसने ईशा से 600ई. पूर्व इस पर अपना अधिपत्य जमा लिया था। तत्पश्चात ब्रिटेन 5 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक रोमन साम्राज्य के नियंत्रण में रहा। 5 वी. शताब्दी से सन् 1066 तक एंग्लो सैक्सन जाति का प्रभुत्व रहा। और इसी वर्ष नार्मन देश के विलियम आफ नोरमण्डी ने आक्रमण कर ब्रिटेन में नार्मन राज्य की स्थापना की। विलियम के शासक काल में सामन्तवादी शासन की स्थापना की गई। सामन्तवादी ईकाइयों को एक बैरन के नियंत्रण में रखा गया जो अपने यहा सेना रखता था और आवश्यकता पडने पर राजा की सहायता करता था। एंग्लो-सैक्सन काल में राजा की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए 'ब्रिटेनोजोमेट' नामक संस्था का अस्तित्व था जो कि बुद्धिजीवियों की एक परामर्शदात्री समिति थी। विलियम ने इस संस्था को समाप्त कर "मैग्नम कांसीलियम" ("महान परिषद") की रचना की जिसका कार्य राजकीय राजस्व एकत्रित करना था। इस महान परिषद की शक्तिया "ब्रिटेनो जोमेट" की तुलना में कम होती गई और इसके स्थान पर एक अंतरिम समिति "क्यूरिया रोजिस" अस्तिव में आई। 18वीं शताब्दी में आगे जाकर इस अन्तरिम समिति से ही मंत्री परिषद, प्रिवी कॉसिल व केबिनेट आदि महत्वपूर्ण संस्थाओं का विकास संभव हुआ। मेग्नम कॉसिलियम से 'हाउस आफ लार्डस' का विकास हुआ।

राजा जान के समय में 1199 से 1216 तक ब्रिटेन में निरकुश राजतंत्र अपने सर्वोच्च शिखर पर था। राजा के अत्याचार बढ़ गये थे तथा बैरन भी उसके विरूद्ध

विद्रोह का धमंकी दे रहे थे। अन्ततः राजा का उभरते जन असंतोष के सामने झुकना पड़ा और 1215 के एतिहासिक महत्व के माँगपत्र 'मैग्नाकार्टा' को स्वीकार करना पड़ा जो ब्रिटिश संविधानवाद के विकास में इसकी उदारवादी सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं के कारण अद्वितिय महत्व रखता है। इसकी मुख्य मांगे इस प्रकार थी।

1. 'मैग्नम कांसीलियम' की सम्मति पर ही राजा करारोपण करें।
2. किसी व्यक्ति को उस समय तक बन्दी न बनाया जावे व निर्वासित न किया जावे तब तक कि उसका अपराध सिद्ध न हो।
3. अपराध की मात्रा व अपराधी की स्थिति के अनुरूप ही दण्ड दिया जावे। दण्ड नितान्त स्वेच्छाचारी न हो।
4. 'कोर्ट आप कामन प्ली' निश्चीत स्थान पर काम करें।
5. राजा चर्च के संगठन, उसके अधिकारियों की नियुक्ति में, हस्तक्षेप न करें।
6. विदेशी व्यापारियों के स्वतंत्र विचरण पर केवल युद्ध काल में ही प्रतिबन्ध लगाये जावे साधारण काल में नहीं।

1215 के इस एतिहासिक मैग्नाकार्टा की स्वीकृत मांगों पर यदि हम गौर करें तो यह स्पष्ट होगा कि इन सब मांगों के पीछे उदारवादी चेतना महत्वपूर्ण रही थी। संसद की सहमति के बिना कर नहीं लगाये जाये यह मांग मूलतः इस सिद्धान्त का समर्थन करती है कि जन सहमति संविधानवाद व संविधान का आधर है और इसके बिना किसी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। यह स्वेच्छाचारिता व निरंकुशता का विरोध भी है क्योंकि इसमे जब तक अपराध सिद्ध न हो तब तक दण्ड नहीं दिये जाते और अपराध के अनुरूप ही दण्ड दिये जाने की मांग भी की गई थी।

मैग्नाकार्टा ने पहली बार यह स्पष्टतः प्रतिपादित किया कि राजा को कुछ मूलभूत विधियों के अधीन रहना चाहिये और यदि वह उनका उल्लधन करें तो जनता राजा को उन विधियों को मानने के लिये बाध्य कर सकती है। इसके द्वारा देश में निरंकुशवाद की धारा पर रोक लगाई गई और उसे जनतंत्रात्मक दिशा प्रदान की गई। वस्तुतः मैग्नाकार्टा में ही ब्रिटिश संसद के बीजा रोपण का संकेत मिल गया था। 1295 में एडवर्ड प्रथम ने एक संसद बुलाई जिसका नाम आदर्श संसद (Model Parliament) रखा गया। वस्तुतः हैनरी तृतीय के समय की मैग्नम कांसीलियम से आगे बढ़कर ही यह विकास संभव हुआ था। आर्दश संसद में तीन समूह थे :- (1) उच्च वर्गीय लोगों का समूह नोबल्स (2) पादरी वर्ग (3) समान्य जन। प्रथम दोंनों समूह धीरे-धीरे लार्ड सभा के रूप में विकसित हुये और द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के निम्न सदन के रूप में कामन सभा का विकास हुआ। 1340-41 में राजा और संसद फिर आमने-सामने हुये और एडवर्ड तृतीय को यह स्वीकार करना पड़ा कि वह संसद की स्वीकृति के बिना कोई नये करनहीं लगायेगा, संसद एक आयोग बनाकर हिसाब किताब का निरीक्षण करेगी तथा राजा के

मंत्रीयों की नियुक्ति संसद द्वारा की जायेगी।

1399-1485 तक लकांस्ट्रीयन वंश का शासन ब्रिटेन में चला जिसमें संसदीय शक्तियों का उत्तरोतर विकास होता गया। इसी युग में प्रसिद्ध गुलाबों का युग (War of Roses) आरम्भ हुआ जिसमें संसदीय नियंत्रण से स्वतंत्र राजा व राज्य की मांग की गई। 1485 तक आते-आते टयूड्र राजाओं की निरंकुश सत्ता स्थापित हो गई। इस युग में निरंकुशता वादी शक्तियों की अस्थाई तौर पर बढ़ोत्तीरी हुई। यद्यपि संसद का नियंत्रण राजाओं पर स्थापित नहीं हो सका फिर भी इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि की गई तथा प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया। टयूड्र काल में (1485 से 1603) राजकीय शाक्ति पोप के नियंत्रण से मुक्त हो गई तथा राजा और संसद के बीच सहयोग पूर्ण सम्बन्धों की शुरूआत हुई।

संसदीय लोतंत्र की स्थापना व उदारवाद के विकास की दृष्टि से 1603 से 1714 तक का स्टूअर्ट राजाओं का शासन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1688 में एतिहासिक गौरवपूर्ण क्रांति हुई जिसके द्धारा संसद की प्रभुसत्ता स्थापित हुई। राजा को कानून के नियंत्रण में कर दिया गया और निरंकुशतावादी शक्तियों की पुर्नस्थापन की सभी संभावनायें लगभग समाप्त हो गई। 1628 में संसद ने चार्ल्स प्रथम से विख्यात "अधिकार याचना पत्र" पर हस्ताक्षर करवाये जिसकी कुछ महत्वपूर्ण मांगें निम्न प्रकार से थी :-

1. संसदीय स्वीकृति के बिना राजा कोई नये कर न लगाये।

2. संसदीय पूर्व स्वीकृति के बिना राजा कोई धन उधार न ले।

3. राजा बिना निश्चित कारण बताये किसी व्यक्ति को बन्दी न बनाये।

4. राजा शान्तिकाल में युद्ध सम्बन्धी कानून न लागू करे। इसी श्रृंखला में 1679 में 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम' स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार राजा के लिये बन्दी बनाये गये व्यक्यिों पर न्यायालय में अभियोग चलाना आवश्यक कर दिया गया। 1689 में भी संसद द्धारा अधिकार पत्र (Bill of Rights) पर विलियम व मेरी के हस्ताक्षर कराये गये जिनमें भी समान प्रकृति की मांगे शामिल थी। उदाहरण के लिये,

1. राजा पूर्व संसदीय स्वीकृति के बिना कर नहीं लगायेगा।

2. राजा वर्ष में कम से एक बार संसद की बैठक आवश्यक रूप से बुलायेगा।

3. राजा ससंद की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई सेना नहीं रख सकेगा।

4. संसद सदस्यों को भाषण की स्वतंत्रता का अधिकार होगा। 1701 के समझौते अधिनियम (Act of Settlement) को पारित कर संसद ने अंग्रजी जनता के धर्म, न्याय और स्वतंत्रता की रक्षा के प्रावधान किये। 1680-90 के मध्य में ही ब्रिटेन में ही द्विदलीय प्रणाली, कैबिनेट आदि संस्थाओं प्रक्रियाओं का निर्णायक रूप से विकास हो चुका था।

इस समय-चूँकि हेनोवर राजा अंग्रेजी नहीं जानते थे अतः राजा ने मंत्रीमंडल की बैठकों में भाग लेना छोड़ दिया और फलस्वरूप मंत्रिमंडलीय प्रणाली की स्थापना हुई जिसमें वास्तविक शासन अधिकार धीरे-धीरे राजा के हाथ से निकलकर मंत्रीमंडल व संसद के हाथों में क्रमशः आते गये। जिसका पारिणाम अन्त मे यह हुआ कि राजा संवैधानिक प्रधान बन गया। 1714 के पश्चात संसदीय शक्तियों में निरन्तर बढ़ोतरी हुई। 1732 के अधिनियम द्वारा संसद में मध्यम श्रेणी के लोगों के प्रतिनिधियों का प्रवेश संभव हुआ। 1837 के सुधार नियम द्धारा मध्यम वर्ग व अन्य दस्तकारों व मजदूरों को मताधिकार दिया गया। 1884 में खेतीहर मजदूरों को मताधिकार दिया गया। 1911 के संसदीय अधिनियम से वित्तीय विधेयकों पर कॉमन सभा का एकाधिकार स्थापित हुआ। मताधिकार के विस्तार, कामॅन सभा की शक्तियों में वृद्धि, अधिकाधिक उत्तरदायी संस्थाओं का विकास ब्रिटिश संविधान के निरन्तर विद्यमान विकास प्रक्रिया की तार्किक परिणति के रूप में सामने आई। और यह प्रक्रिया अभी भी ब्रिटिश संविधानिक विकास के परिप्रेक्ष्य में जारी है। वस्तुतः इतिहास के इस विहंगावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उदारवादी सैद्धान्तिक प्रस्थापनायें अधिकाधिक मजबूत होती गई। और ब्रिटिश संविधानवाद का ताना बाना इन्हीं आधारों के चारों ओर बुना गया। संवैधानिक विकास में अधिकाधिक जोर निरन्तर सुधार करने व उत्तरोतर विकास कर पूर्णता प्राप्त करने का रहा।

आर्थिक परिप्रेक्ष्य में उदारवादी दर्शन का प्रभाव भिन्न प्रकार से महसूस किया गया। आरम्भिक उदारवाद ब्रिटेन में औधोगिक क्रांति का परिणाम माना गया। क्योंकि नवोंदित पूँजीपति इस समय तक व्यापारिक प्रतिबन्धों की आलोचना करने लग गये थे तथा यह माना जाने लगा था कि राज्य अर्थव्यवस्था को नियमित व नियंत्रित न करें ताकि स्वतंत्र विकास संभव हो सके। यदि सरकार मजदूरी और मजदूरी के घंटे तय करती है या अन्य किसी प्रकार से आर्थिक क्रियाकलापों में हस्तक्षेप करती है तो यह हस्तक्षेप अनावश्यक और आवांछनीय होगा। मौटेतौर पर यह माना जाने लगा कि राज्य का काम केवल शान्ति व्यवस्था बनाये रखना है और राज्य को उधोग धन्धों, वाणिज्य, व्यापार पर कोई प्रतिबन्ध नही लगाने चाहिऐ। एडमस्मिथ ने अपनी पुस्तक "वेल्थ आफ नेशन्स" में स्वतंत्र व्यापार नीति की जोरदार वकालत की वहीं माल्थस, रिकार्डो जैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि शासन तंत्र द्वारा आर्थिक नियमों में हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक होता है। इन विचारको ने प्रतिपादित किया कि ब्रहमाण्ड में क्रियाशील प्राकृतिक नियमों की तरह अर्थव्यवस्था में भी कुछ सुनिश्चीत आर्थिक नियम कार्य करते हैं और इनमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिये। उदाहरण के तौर पर मॉग व पूर्ति का नियम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। इस प्रकार ब्रिटिश सन्दर्भ में उदारवाद के आर्थिक आयाम थे-प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक नीतियों का विरोध, चुंगी की दरें कम करने की मांग तथा उन्मुक्त व्यापार का जोरदार सर्मथन। ब्रिटेन में उन्मुक्त व्यापार के पक्ष में मजदूरों व पूजीपतियों द्धारा 1825 के आसपास दबाव डाला गया। भूमिपतियों के दबाव से पारित कार्न लॉ में संशोधन कर 1828 में अनाज के आयात में कुछ रियायतें

बी गई। 1832 में संसदीय सुधार अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा औधोगिक क्रांति के फलस्वरूप हुऐ सामाजिक परिवर्तनों को राजनीतिक स्वीकृति मिली। इन सुधारों द्वारा मताधिकार को आर्थिक आधार से जोडा गया, निर्वाचकों की संख्या में वृद्धि की गई तथा निर्वाचकों का क्षेत्र व वर्गो में पुर्नवितरण किया गया। निश्चीत ही 1832 के सुधारों से ब्रिटिश राजनितिक जीवन में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु इन सुधारों के पीछे ब्रिटेन में सम्भवित क्रांति का भय विद्यमान रहा। इन सुधारों से मताधिकार व्यवस्था उदार व विस्तृत हुई तथा समाज व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में सुधार के रास्ते खुले जो मूलतः उदारवादी दर्शन का ही परिणाम थे। 1833 में कानून बना कर ब्रिटिश सम्राज्य में दास प्रथा को गैर-कानूनी घोषित किया गया। 1835 में म्यूनिसिपल कारपोरेशन एक्ट पारित हुआ। 1846 में कार्नला को समाप्त कर दिया गया जिसकी आर्थिक उदारवादी एक लम्बें समय से मांग कर रहे थे। 1832 के सुधार कानून से औधोगिक वर्ग का संसद में प्रतिनिधीत्व बढ़ा और 1833 व 1843 में श्रमिकों के हित में फैक्ट्री एक्ट पारित किये गये जिसमें काम के घटै कम करने तथा उन्हें निर्धारित करने के प्रावधान किये गये। यहां तक आते आते शायद "अहस्तक्षेप वादी राज्य" के पारम्परिक उदारवादी दर्शन को ब्रिटिश समाज ने नकारने का सिलसिला आरम्भ कर दिया। वर्गीय सन्दर्भो में यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि नवोदित पूंजीपति वर्ग जहां अहस्तक्षेप वाद की वकालत कर रहा था वहा भूस्वामियाँ का कुलीन वर्ग उधोग धन्धों व अर्थ व्यवस्था के सरकारी नियन्त्रन का समर्थन करते थे। उदाहरण क लिए भूमिपतियों ने कार्नला हटाने का विरोध किया। इसी दौरान 1838 में चार्टर आप डिमान्डस तैयार कर श्रम जीवी वर्ग ने प्रसिद्ध "चार्टिस्ट आन्दोलन" चलाया जो मूलतः निम्न मांगें लिये हुये था (1) कामन सभा का वार्षिक चुनाव (2) गुप्त मतदान प्रणाली (3)व्यस्क पुरूषों को मताधिकार (4) समान निर्वाचन मण्डल (5) कामन सभा की सदस्यता के लिए सम्पति को योग्यता समाप्त करना। यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन अपने घोषित लक्षयों को प्राप्त नहीं कर सका किन्तु इसके कारण श्रमजीवी वर्ग की हालत सुधारने के लिए अनेक संसदीय कानून पारित किये गये जैसे-1842 का माइन्स एक्ट, 1847 का टेन आवर्स वर्क एक्ट आदि।

1870 तक उदारवाद को औधोगिक व व्यापारिक वर्ग का दर्शन माना गया। मार्क्स ने पूजीवाद व उदारवाद में कोई अन्तर स्थापित नही किया। इंग्लैण्ड में उदारवाद ने मूर्त रूप लेना प्रारम्भ किया और इसने एक स्पष्ट व्यवस्था, विचारधारा व दृष्टिकोण का रूप ग्रहण किया जो अपने स्वरूप में संसदात्मक सरकार के कहीं अधिक नजदीक था जिसमे उत्तरदायी शासन, स्वशासन, स्वतंत्रता धर्म निरपेक्षता के विविध आयाम थे। धीरे-धीरे औपचारिक संस्थाओ और प्रक्रियाओं का जन्म हुआ। यूरोप और अमेरिका उदारवादी दलो का संगठन हुआ जिन्होने व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रक्ष लिया, निरंकुशता का विरोध किया तथा सभा और स्वतंत्रता के बीच का समांजस्य स्थापित किया। अठारहवी शताब्दी तक का ब्रिटिश उदारवाद मूलतः संरक्षण और सुधार पर जोर देता

था जबकि 19 वीं शताब्दी में प्रगति की विशेष वकालत की गई। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश उदारवाद ने परम्परावाद को भी कई अर्थो में जीवित रखा और उसे परिष्कृत किया तथा एक एतिहासिक निरन्तरता को जीवित बनाये रखा। अग्रेजी इतिहास की दो महत्वपूर्ण कृतियो ने राजा की सस्था को फ्रांस की तरह उखाडा नही बल्कि राजा की महत्वाकाक्षा ने निरकुशता पर प्रभावशाली जन नियंत्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। फ्रांसीसी उदारवाद जैसा कि स्पष्ट है ब्रिटेन से बिल्कुल भिन्न किस्म का था और इसमें परिवर्तन व संर्घष की निरन्तरता पर बल दिया गया। चूंकि फ्रांस, स्पेन और रोम शक्तिशाली साम्राज्यों से दोनों तरफ से घिरा हुआ था अतः अस्तित्व की सतत् लडाई ने शक्तियों के केन्द्रीयकरण तथा सामान्तवाद के पूर्ण उन्मूलन को आवश्यक बना दिया। केन्द्रीयकरण और समता-स्थापना इस लिये फ्रांसीसी क्रांति के दो महतवपूर्ण आधार बने। किन्तु जैसे जैसे राजतंत्र पुनः शक्तिशाली व निरंकुश हाता गया असंतोष बढता गया। वस्तुतः फ्रांस में माण्टेसक्यू व रूसो को आधार बना कर उदारवाद का एक नया ढांचा गढा गया। अमेरिकी उदारवाद और फ्रांसीसी उदारवाद में काफी हद तक समता दिखाई पड़ती है क्योंकि दोनों देशों में उदारवादी चिंतन को आधार बनाकर राजनीतिक क्रांतिया किया जाना संभव हुआ है। अग्रेजी उदारवाद काफी सीमा तक परम्परावादी व विवेकवादी रहा तथा उसका आग्रह संशोधन व सुधार करने का रहा जबकि फ्रांस और अमेरिका में उग्रवाद व परिवर्तनवाद की प्रधानता देखने को मिली। ब्रिटिश उदारवाद ने संवैधानिक क्रांतियां, अधिकार पत्रों आदि की स्वीकृति के बावजूद ब्रिटिश शासन प्रणाली ने कोई मौलिक या उग्रपरिवर्तन प्रस्तावित नहीं किया। ब्रिटिश उदारवादी विचारक लाक उदारवादियों में सर्वाधिक रूढिवादी विचारक माना जाता है किन्तु उसने भी परम्परागत शासन व्यवस्था के ढॉचे को उखाडने की प्रेरण नही दी जैसी कि अमेरिका याा फ्रांसीसी उदारवाद के सन्दर्भ में हमें देखने को मिलती है।

फ्रांसीसी उदारवाद के मध्यमवर्गीय स्वरूप के प्रतिनिधी रूसों थे जिन्होने जन सम्प्रभुता का जयधोष करते हुये फ्रांसीसी उदारवाद को क्रांतिकारी स्वरूप प्रदान किया। इंग्लैण्ड से उदारवादी विचारधारा का प्रारम्भ होता है किन्तु इसका स्वरूप सुधारवादी था। इसके विपरीत फ्रांस और अमेरिका में उदारवाद अधिकाधिक उग्रवादी रूप धारण करता चला गया जिसका कारण यह था कि इंग्लैण्ड ने अपनी सुधार प्रियता व उदारवादी परम्परा की निरन्तरता में एक संवैधानिक व्यवस्था उदारवादी आधारों पर स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की जबकि फ्रांस व अमेरिका में संवैधानिक शासन की स्थापना के लिये क्रांतिकारी संघर्ष का जन्म हुआ। इंग्लैण्ड के उदारवादी बेथम, जेम्स मिल, प्रो. जे. एस.मिल तथा लॉक तक, संसदीय सुधारों पर बल देते रहे ताकि मध्यमवर्ग का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व व राजनीतिक भागीदारी मिल सकें जबकि फ्रांस और अमेरिका के उदारवाद ने गणतंत्रीय स्वरूप धारण किया। इंग्लैण्ड के उदारवादियों ने राजतंत्र पर सीधा प्रहार न करते हुये उसकी शक्तियों में व्यापक कमी संवैधानिक सुधारों व क्रमिक परिवर्तनों के जरिये की जबकि फ्रांसीसी व अमेरिकी उदारवाद ने राजतंत्र को प्रजातंत्र

के मार्ग में बाधा समझते हुये इसका कडा विरोध किया। ब्रिटिश राजतंत्र समयानुकूल व जनता के दबावके अनुरूप अपने आपको परिवर्तित कर पाने मे सफल हुआ वहां दूसरी ओर फ्रांस व अमेरिका में राजतंत्र ने मध्यम वर्ग को शासन अधिकार नहीं दियें फलस्वरूप जनता विद्रोह के लिये उतारू हुई और गणतंत्रात्मक सरकारें राजतंत्र को उखाड कर स्थापित की गई। अमेरिका में भी इसी प्रकार ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार को सशस्त्र संघर्ष के बाद उखाड फेंका गया और गणतंत्र की स्थापना हुई।

ब्रिटिश उदारवाद सुधारवादी व राजतंत्र समर्थक था तथा उसने उग्रसाधनो का सहारा नही लिया किन्तु फ्रांसीसी व अमेरिकी उदारवाद का स्वरूप गणतंत्रवादी व उग्र रहा। यूरोप के अन्य देशों में भी उदारवाद इन दो छोरो के मध्य रहकर संविधानवाद को प्रभावित करता रहा। केवल अन्तर काल क्रम का रहा। जो परिवर्तन ब्रिटेन व फ्रांस की संवैधानिक व्यवस्थाओं में समाते चले गये वे बाद में जाकर यूरोप के अन्य देशों की संवैधानिक प्रणालियों के अंग बने।

15 वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई उदारवादी चेतना ने उन्नीसवीं सदी तक आते आते विश्वव्यापी प्रभाव छोडा। विचार भाषण और कार्य की स्वतंत्रतायें आधारभूत उदारवादी मूल्यों के रूप में सभी देशों में स्वीकृति की गई। इंग्लैण्ड ने उदारवाद को आधर बनाकर औधोगिक अर्थ व्यवस्था का संचालन किया गया और ससंदात्मक प्रजातंत्र की संस्थाओं व प्रक्रियाओं का विकास किया गया। अमेरिका ने भी स्वतंत्र राष्ट्र के रूप मे उदारवादी विचारधारा को अपनाया और यूरोप के अन्य देशों में भी कमोवेश राजनीति व अर्थनीति पर उदारवाद ने अमिट छाप छोडी।

11.6 यूरोप के अन्यदेशों में उदारवाद और संवैधानिक विकास पर उसका प्रभाव :-

1815 से 1850 तक ब्रिटेन में उदारवादी दर्शन काफी लोकप्रिय रहा तथा उसने संवैधानिक विकास क्रम को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। उक्त अवधि में अनेक उदारवादी कानून बने तथा सुधार प्रजातंत्र, विवेकवाद और व्यक्तिवाद के प्रति ब्रिटिश आग्रह अभी भी प्रभावी ढंग से विद्यमान है। ब्रिटिश उदारवादियों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता, और व्यक्ति के महत्व पर विशेष बल दिया जबकि अन्य यूरोपिय देशों के उदारवादियों ने सम्पति के अधिकार पर बहुत जोर दिया।

1789 में हुई फ्रांस की ऐतिहासिक क्रांति कई मायनों में उदारवादी विचारधारा पर अवलंबित थी। इसने दास प्रथा को समाप्त कर विधि के साथ सबकी समानता की घोषणा को अभिव्यक्ति दी। सामन्ती विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये और सामन्ती शासन व्यवस्था का अंत हो गया। 26 अगस्त 1789 को मानव और नागरिक अधिकारों की घोषणा भी क्रांति के बाद की गई। फ्रांस की क्रांति ने उदारवादी सिद्धान्त के रूप में संविधानवाद को प्रतिष्ठित किया तथा निरंकुश राजाशाही की जड़ों पर आक्रमण किया।

फ्रांस का उदारवाद वास्तव में 1789 की विश्वप्रसिद्ध क्रांति से आरम्भ होता है।

फ्रांसीसी क्रांति का विश्व व्यापी प्रभाव हुआ और इसने यूरोप में उदारवाद के प्रचार प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। क्रांति ने राजनीतिक क्षेत्र में लोकतंत्र का प्रतिपादन किया तथा मानव अधिकारों की घोषणा कर और स्वतंत्रता समानता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर व्यक्ति के महत्व को स्वीकार किया जो उदारवाद का मूल आधार था। वस्तुतः फ्रांसीसी उदारवाद का स्वरूप भिन्न प्रकृति लिये हुआ था। 1789 को फ्रांसीसी क्रांति उदारवाद का मूल स्त्रोत व अभिव्यक्ति थी। फ्रांस में 1830 में हुई जुलाई क्रांति ने निरकुशतंत्र और पादरियों के प्रभुत्व स्थापित करने की एक प्रबल कोशिश को विफल कर दिया किन्तु जन असंन्तोष अभी भी व्यापक था। औधोगिक सर्वहारा वर्ग की स्थिति दयनीय थी फलस्वरूप फरवरी 1848 में बुर्जआ उदारवादीयें ने पेरिस में एक कामचलाऊ सरकार की स्थापना की जो कि अल्पजीवी रही। वस्तुतः फ्रांस में काफी समय बाद एक गण्तंत्रवादी संविधान का निर्माण हो सका। जिसमें वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी। फ्रांस की जनतांत्रिक सरकार ब्रिटेन की तुलना में कम सुरक्षित रही और राजनीतिक अस्थिरता लगातार बनी रही। 20 वीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांस का उदारवाद और अधिक सशक्त होता जान पड़ा जब सामाजिक कल्याण के अनेक कानून पारित किये गये। इसी प्रकार हालेण्ड, बेल्जीयम, नार्वे, स्वीडन आदि देशों में भी उदारवादी चेतना के अनुरूप समाज कल्याण के लिए कानूनों का निर्माण किया गया। मताधिकार का विस्तार किया गया तथा जनतांत्रिक संस्थायें और प्रक्रियायें कमोवेश रूप में 20 वी. शताब्दी के आरम्भ में सुनिश्चीत स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी।

19 वी. शताब्दी में यूरोप व अमेरिका में उदारवादी दर्शन सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ और इसका प्रभाव तत्कालीन सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक-जीवन के विविध पहलूओं पर व्यापक तौर पर देखा गया। उदारवादी दर्शन ने यूरोप व अमेरिका के संविधानवाद, इतिहास; अर्थरचना, औधोगिक विकास आदि को सीधे प्रभावित किया। उदारवाद ने स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिपेक्षता, लोकतंत्र आदि के आदर्शो को प्रचारित और प्रसारित कर इन्हें सामान्य जन मान्यता प्रदान की जिससे पुरातन पारम्पारिक विशेषाधिकारों व असमता की विरासत वाली व्यवस्थाओं का अन्त हुआ और एक नवीन युग का सुत्रपात हुआ। सार्वभौमिक मताधिकार पर आधारित संसदीय संस्थाओं की स्थापना हुई, राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को मान्यता मिली और लोकतंत्र राष्ट्रीय स्वतंत्रता व आर्थिक विकास का कल्याणकारी राज्य का आर्दश स्थापित हुआ। यद्यपि इस उदारवादी दर्शन की मान्यताओं, विशवासों और आग्रहों में युगानुकुल परिवर्तन आते गये किन्तु इसका एक सारभूत भाग सदैव विद्यमान रहा जो परिवर्तित परिस्थितियो और आकस्मिकताओं के बावजूद नहीं बदला।

11.7 सारांश

इस इकाई में उन परिस्थितियों व कारणों की व्याख्या की गई जिनसे यूरोप में उदारवादी विचारधारा लोकप्रिय होती गई। उदारवादी चेतना का आरम्भ सामन्तवाद के विघटन की पृष्ठभूमि में हो गया था किन्तु मध्यकालीन पुर्नजागरण, विवेकवाद, धर्मसुधार आन्दोलन, औधोगिक क्रांति ने उदारवादी मान्यताओं को व्यापक स्वीकृति प्रदान की वहा दूसरी ओर ब्रिटिश संवैधानिक विकास क्रम पर उदारवाद ने गहरी छाप छोडी। ब्रिटेन में मंत्रीमंडल प्रणाली व संसदीय व्यवस्था का विकास इसी विचारधारा का प्रतिफल था। अमेरिका फ्रांस व यूरोप के अन्य देशों में भी संविधानवाद विवेकवाद व प्रजातंत्रवाद के आदर्शो प्रतिष्ठित हुये और उन आर्दशों के महत्व को वर्तमान सन्दर्भो में नकारा नहीं जा सकता।

11.8 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न-1 उदारवाद का क्या अभिप्राय है।

2. उदारवाद की आधारभूत मान्यताओं को लिखियें।

3. उन कारणों को बताइये जिनके कारण उदारवाद का यूरोप में विकास हुआ।

4. ब्रिटेन में उदारवाद का विकास किस प्रकार हुआ।

11.9 सन्दर्भ ग्रथं (Further Readings)

(1) Sir Ivor jennings - The English Constitution.

(2) H.J. Laski - Parliamentary government in England 1938

(3) H.J. Laski - The Rise of European Liberalism 1936.

(4) F.A. Ogg. - English government and Politics, Newyork, 1929

(5) G.H. Sabine - A History of Political Theory

(6) A.V. Dicey - Introduction to the study of Law of Constitution, London Mecmillian.

(7) ए.डी. आर्शीवादम - राजनीति विज्ञान. 1989, दिल्ली, एस चंद एण्ड क.

(8) L.T. Hobhouse - Liberalism, London, 1911

(9) Liberalism' in "Encyclopedia of Social Sciences".

इकाई - 12

अठारहवीं शताब्दी में यूरोप का धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 यूरोप में आधुनिक संस्कृति का अभ्युदय व प्रबुद्ध-काल (Age of Enlightment)

12.3 धर्मसुधार आन्दोलन से सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप का धार्मिक जीवन

12.4 अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक जीवन का विश्लेषण

12.5 बौद्धिक जीवन के आयाम - दार्शनिक और विचारक

12.6 बौद्धिक जीवन के आयाम - विज्ञान, सामाजिक ज्ञान व शिक्षा

12.7 बौद्धिक जीवन के आयाम - कला और साहित्य

12.8 सारांश

12.9 बोध प्रश्न

12.10 सन्दर्भ पुस्तकें -

12.0 उद्देश्यः इस इकाई में आप अध्ययन करेंगें :-

* सत्तरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में हुआ बौद्धिक आन्दोलन (प्रबुद्ध काल) क्या था ? उससे विचारों के जगत और चिन्तन के क्षितिज में कौन-कौन से महान् परिवर्तन हुए ?
* धर्म सुधार आन्दोलन के पश्चात् ईसाई धर्म में पनपे सम्प्रदायवाद ने यूरोपीय धर्मतंत्र को किस प्रकार प्रभावित किया ?
* अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक उदारता की ओर रूचि बढ़ी। पोप की सत्ता सीमित हो गई। राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप कैसे कम हुआ ?
* अठारहवीं शताब्दी में प्रबद्ध-काल के प्रमुख दार्शनिकों एवं विचारकों का यूरोप के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा

* विज्ञान, सामाजिक ज्ञान व शिक्षा के क्षेत्रों में जो उन्नयन हुआ, उसका यूरोपवासियों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

* कलाओं के क्षेत्र में वास्तुकला, चित्रकला व संगीत में शास्त्रीयतावाद (Classicism) का पदार्पण हुआ जिसके फलस्वरूप नई शैलियों का प्रदुर्भाव हुआ।

* साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न विधाओं में महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। प्रमुख साहित्यकारों का क्या योगदान रहा ?

12.1 प्रस्तावना

14 वीं से 16 वीं शती के मध्य यूरोप में यूनानी-लातीनी संस्कृति का उत्थान हुआ। उसके फलस्वरूप बुद्धिवाद और मानववाद का जन्म हुआ। यूरोप के इतिहास में इसे पुनर्जागरण (रिनेसांस) की संज्ञा दी गई है। पुनर्जागरण, मध्यकाल और आधुनिक युग की संस्कृति का समय था। इस युग में मध्यकालीन ईश्वरवादी दृष्टिकोण के स्थान पर मानववादी विचार का उत्थान हुआ। जीवन में सर्वत्र परिवर्तन का साम्राज्य था। विश्व की विशालता और विविधता मानसपटल पर अंकित हो रही थी। मानव बुद्धि की सर्वतोमुंखी ज्योति उसके जटिल मर्मों को अलोकित करने में समझी जाने लगी थी। नियति में निश्चित रूप से विश्वास था, किन्तु यह धारणा प्रमुख थी कि मनुष्य अपने नियमन और संतुलन से उसे अनुरूप कर सकता है।

12.2 यूरोप में आधुनिक संस्कृति का अभ्युदय व प्रबुद्ध-काल (Age of Enlightenment)

यूरोप में इससे आधुनिक संस्कृति का अभ्युदय हुआ। मानव के ज्ञान की परिधि बहुत विस्तीर्ण हो गई। मनुष्य जीवन लीला के प्रति एक नूतन अभिरूचि उमड़ पड़ी। यूरोप में 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में एक बौद्धिक आन्दोलन हुआ जिसमें ईश्वर, धर्म, प्रकृति और मनुष्य को विश्वव्यापी संदर्भ में देखा गया जिससे विज्ञान, दर्शन, कला और राजनीति के क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इसे प्रबुद्ध काल (Age of Enlightenment) के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रबुद्ध काल का केन्द्रीय तत्व था-तर्क। तर्कणापरक व्यक्ति ने ज्ञान, स्वतंत्रता और खुशहाली को अपना लक्ष्य बनाया।

प्रबुद्ध काल (Age of Enlightenment) के उभरते हुए स्वरूप ने ज्योहीं सत्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी में प्रवेश किया, उसे विचारों के जगत और चिन्तन के क्षितिज में एक महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। विद्वता का स्थान व्याख्या और चिन्तन का स्थान आलोचना ने ग्रहण कर लिया। बुद्धिवाद का जोर बढ़ने लगा। परम्परा के प्रति विरक्ति और प्रज्ञा के प्रति आस्था उमडने लगी। 1715 ई. में लुई चौदहवें के निधन से 1789 ई. में फ्रांसीसी क्रांति के प्रादुर्भाव तक इस बौद्धिक आन्दोलन का बोलबाला रहा। इसे प्रबुद्धकाल का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में हम अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन के विभिनन पहलुओं का उल्लेख करेंगें। साथ ही तत्कालीन बौद्धिक विकास का मनुष्य के इस लोक के भौतिक जीवन तथा परलोक के मोक्ष से धनिष्ठ संबंध है। ध ार्मिक चिन्तन और बौद्धिक उपलब्धियाँ मनुष्य के सुख-समृद्धि के प्रमुख आधार स्तम्भ है।

धार्मिक जीवन :

12.3 धर्मसुधार आन्दोलन से सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप का धार्मिक जीवन

मध्यकाल में विभिन्न चिंतको ने तर्क के स्थान पर आध्यात्मिक ईश्वर भीमांसा, श्रुति और धर्म को अधिक महत्व दिया। वे तर्क या विज्ञान की उपेक्षा करते हुए नजर आने लगे। पोप की सत्ता के अनतर्गत रोमन गिरजाघर अन्धविश्वासों एवं भ्रष्टाचार के केंन्द्र बन गये थे। ईसाइ धर्म का पांखडपूर्ण प्रभाव मनुष्य के शरीर एवं आत्मा पर हावी हो गया था। पुनर्जागरण और प्रौटेस्टेंटवादी सुधारों ने ऐसी विकृत पोपलीला को निरस्त करने के प्रयास किये। इसके प्रतिरोध में कैथोलिकों ने अपने धर्म तंत्र में आई कमजोरियों को हटाने का प्रयास प्रतिवादात्मक धार्मिक आन्दोलन के द्वारा किया। इस प्रयास से कई यूरोपीय देशों में कैथोलिक धर्म की खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हुई।

धर्म-सुधार के पश्चात् ईसाई धर्म प्रमुख दो शखाओं में विभक्त हो गया रोमन केथोलिक एवं प्रोटस्टैंट। प्रोटस्टैट धर्म में धार्मिक सुधार की अलग-अलग पद्धतियों के कारण कुछ अन्य सम्प्रदाय बन गये। स्विटजरलैंड में ज्विंगली और कालविन ने लूथर से भी अधिक उग्रता के साथ पोप की सत्ता का खंडन किया। कालविन का सम्प्रदाय और प्रोटेस्टैंट मत का अत्यन्त उग्रपंथी शाखा हो गया औरवह "प्रेसबिटेरियन" **(Presbyterian)** शाखा मत का खूब प्रचार हुआ। इंग्लैण्ड में धर्म सुधार कार्य राजनीतिक आधार को लेकर आरम्भ हुआ। शासकों के आपसी धार्मिक मतभेदों के लम्बे संघर्ष के पश्चात् एक नया चर्च एंगलिकन। **(Anglican Church)** नाम से स्थापित हुआ जो न पूर्णरूपेण कैथोलिक ही था न प्रोटैस्टैंट। नीदरलैंड में उत्तरी भाग ने प्रोटेस्टैंट धर्म अपना लिया किन्तु दक्षिणी भाग कैथोलिक बना रहा। बेल्जियन कैथोलिक थे। नार्वे तथा स्वीडन में भी प्रोटेस्टैंट धर्म प्रभावी रहा। उस समय हालैंड और फ्रांस से भागे हुए व्यपारी शरणार्थी इंग्लैंड में बस गये। वे प्रोटेस्टेंट मत के थे और वे "ह्यूगेनॉट" **Huguenots"** कहलाते थे। स्पेन, फ्रांस और आस्ट्रिया के राजा कैथोलिक मत को मानते थे। इस प्रकार यूरोप के अधिकांश देश प्रोटेस्टैंट धर्म के झंडे के नीचे आ गये।

कहीं जनता ने तो कहीं राजा ने इस धर्म सुधार आन्दोलन की बागडोर संभाली और प्रोटेस्टेंट धर्म को भी कैथोलिक धर्म के समकक्ष मान्यता दिलवाई। इस प्रकार यूरोप के निरंकुश और प्रबुद्ध निरंकुश राजवंश ईसाई धर्म की इन दोनों शाखाओं में से किसी एक के कट्टर अनुयायी हो गये। सौ साल से अधिक समय तक इस धार्मिक वैभनस्य

के कारण यूरोपीय राज्यों में गृह-युद्ध तथा राजविप्लव हुए। धार्मिक कट्टरता की आग में कई लोग स्वाहा हो गये। धर्म, राजा और प्रजा के वैमनस्य का बहुत बड़ा कारण बना।

सतरहवीं सदी से यूरोप में एक नयी प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इसके पूर्व ध र्म के नाम घोर अत्याचार होता था। लेकिन धर्म सुधार आन्दोलन के कारण लोगों के धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होना आवश्यक हो गया। अब लोग मांग करने लगे कि धर्म पालन करने की पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। यूरोप में धीरे-धीरे धार्मिक उदारता का प्रवेश होने लगा।

राजनीति पर से धर्म के प्रभाव को घटाने में शक्तिशाली राजाओं से भी खूब सहायता मिली। पहले हर देश की राजनीति, अर्थनीति एवं समाज पर चर्च का बोलबाला था। चर्च की अपनी एक अलग सरकार होती थी। वे राज्य के भीतर एक राज्य की तरह होते थे और अपने को राजा के ऊपर समझते थे। राजा रोम के पोप से आज्ञा लेता था और उसी के अनुसार काम करता था। इस कारण मध्युग में राजा और पोप के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा। लेकिन अन्त में पुनर्जागरण और धर्म सुधार के कारण राजाओं के लिए पोप की सत्ता में बने रहना कठिन हो गया। राजाओं और पोप के बीच सम्बन्ध बिगड़ते गये। अन्ततोगत्वा कई शासकों ने पोप से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। पोप का प्रभाव क्षीण हो गया। इसके बाद भी धर्म और राज्य का सम्बन्ध कायम रहा, लेकिन राजा लोग राजधर्म के अतिरिक्त और धर्मों के प्रति उदारता की नीति अपनाने लगे। राज्याश्रिम चर्चों की स्थापना हुई। इससे राज्य की संप्रभुता पूरी हुई। इसी संदर्भ में इग्लैंड के राजा हैनरी अष्टम का पोप से सम्बन्ध विच्छेद और नेपोलियन महान् के पोप के साथ धार्मिक समझौते के उदाहरण पेश किये जा सकते हैं।

12.4 अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक जीवन का विश्लेषण

अठारहवीं शताब्दी में पोप की सत्ता कुछ ही यूरोपीय राज्यों तक सीमित हो गई। अधिकतर यूरोपीय राज्यों ने चर्च को राज्य का अंग बना लिया। चर्च, राज्य के नियंत्रण में आ गये। राज्य की संप्रभुता पूरी हो गई और राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप क्षीण हो गया। राजा की शक्ति और निरंकुशता में वृद्धि हुई। पर राजाओं की निरंकुशता में ज्ञानोदय के साथ प्रबुद्धता आ रही थी। वे धर्म निरपेक्ष होकर धार्मिक स्वंतत्रता की विचार धारा की ओर अग्रसर होने लगे। धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धार्मिक सहिष्णुता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। धर्म के नाम पर अत्याचार बन्द हो गये। अब धर्म सुधारकों को फांसी के तख्ते पर नहीं झूलना पड़ता था। धर्म के क्षेत्र में जनसाधारण स्वतंत्र हो गया। प्रोटेस्टैंट धर्म से प्रभावित राज्यों में शिक्षा गिरजाघरों के ही अधिकार क्षेत्र में रही।

फ्रांस, स्पेन, आस्ट्रिया, इटली आदि यूरोपीय देशों में कैथोलिक धर्म का प्राबल्य रहा। यहाँ पोप के प्रति श्रद्धा बनी रही। इस प्रबुद्ध काल के दौरान यूरोप का समाज तीन भागों में विभाजित था- 1. कुलीन वर्ग 2. पादरी वर्ग 3. जन-साधारण। कुलीन तथा बड़े-बड़े पादरी विलासिताका का जीवन व्यतीत करते थे जबकि तीसरे वर्ग के मनुष्यों को भर पेट भोजन नहीं मिलता था। पादरी वर्ग को समाज में विशेष सम्मान प्राप्त था। बड़े पादरी व छोटे पादरी के रूप में विभाजित था।

(1) बड़े पादरी- इसके अन्तर्गत विशप, आर्क विशप, एबट तथा कार्डीनल प्रमुख थे। ये लोग बड़े सम्पन्न थे और विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। इनके हाथ में चर्च के समस्त पद थे। मठों से इनको लाखों रूपयों की आय होती थी। वे राजा की भांति न्याय करते थे। किसानों से दशांश (Tithe) वसूल करते थे। रोमन कैथोलिकों, प्रोटेस्टेंटो तथा यहूदियों से भी कर वसूल करते थे। लेकिन उनका नैतिक स्तर गिरा हुआ था। उनमें से अधिकांश तो ईश्वर के अस्तित्व तक में विश्वास नहीं करते थे।

(2) छोटे पादरी- इन लोगों की नियुक्ति साधारण वर्ग से होती थी। वे अधिकतर किसान होते थे। वे सदाचारी और ईमानदार थे। चर्च के समस्त धार्मिक कार्य वे ही करते थें वे अपनी निर्धनता के कारण महत्वहीन थे। अपने सदाचार और त्याग के कारण समाज में उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। बड़े पादरियों की विलासिता और समृद्धता उनको कांटे की भांति चुभती थी। वे सुशिक्षित थे और क्रान्तिकारी साहित्य का अध्ययन करते थे। उनका जनतंत्रवादी प्रवृत्ति की ओर झुकाव था। फ्रांस की राज्य क्रांति के समय उन्होंने जन साधारण का साथ दिया।

इस प्रकार प्रबुद्धकाल में प्रचलित अंधविश्वासों और परम्पराओं को समाप्त करने के लिये अनेक प्रयास किये गये। यूरोप में धर्म संबंधी "सोसायटी ऑफ फ्रेंडस्" के कचेकर्स (Quakers) नाम से सम्बोधित सदस्यों का विश्वास था कि सच्चे धर्म को व्यक्ति के बाहरी क्रियाकलापों से कोई सरोकार नहीं है बल्कि वह व्यक्ति के निजी और विशुद्ध व्यक्तिगत मामलों से सम्बद्ध है। व्यवहारवादियों (Methodists) ने धार्मिक जीवन को नियमित करने की इच्छा व्यक्त की ओर उन्होंने अनेक धर्मार्थ कार्य किए। चरबरी (Cherbury) के लार्ड हरबर्ट ने "इंगलिशडिज्म" (English deism) की स्थापना की। धार्मिक चिंतक (Edward Stilling Fleet) एडवर्ड स्टिलिंग फ्लीट ने कहा, चर्च के रूप में सरकार ईश्वरीय वाक्य द्वारा नियंत्रित बुद्धि है। जर्मन आलोचक लोसिंग (Lessing) ने इस बात पर जोर दिया कि सभी धर्म ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने की मानवीय कोशिश है।

यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के धार्मिक जीवन के उपर्युक्त विश्लेषण के बाद हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि मानसिक क्षितिज के विस्तार के कारण यूरोप का तत्कालीन धार्मिक वातावरण अंधविश्वासों, पांखडों एवं भ्रष्टाचारों के प्रदूषण से मुक्त हुआ। धार्मिक भावना जनकल्याण से जुड़ गई। राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप कम होने लगा। अब

धर्म का संचालन प्रशासकों के सानिध्य में होने लगा। धार्मिक स्वतंत्रता के युग का उदय हुआ एव धर्मनिरपैक्षता की विचारधारा उभरने लगी।

12.5 बौद्धिक जीवन- के आयाम-दार्शनिक एवं विचारकः

सत्रहवी। शताब्दी वैज्ञानिकों की शती थी। इस शताब्दी में वैज्ञानिकों अनुसंधानों ने परिवर्तन की दिशाएं निर्धारित की। न्यूटन और गेलिलियों ने विचारों की क्रांति को गति प्रदान की। इस प्रकार यूरोप में वैज्ञानिक बुद्धिवाद के साम्राज्य का श्री गणेश हुआ। प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक लार्ड बालफोर (Lord Balfour) नेएक बार कहा था कि क्रमशः विज्ञान, दर्शन और ईश्वर मीमांसा के उद्देश्यों से 18 वीं शताब्दी की शुरूआत न्यूटन की पुस्तक "प्रिनसिपिआ" (Principia) लॉक की पुस्तक "एसे कन्सर्निंग ह्यूमैन अंडरस्टेंडिंग (Essay Concerning Human Understanding) और टोलैंड (Toland) की देववादी पुस्तक "क्रिश्चिअनिटी नॉट मिस्टिरियस (Christianity Not Mysterious) के साथ होती है।

दार्शनिक एवं विचारक-

अठारहवीं शताब्दी के प्रबुद्धकालीन (Age of Enlightenment) दर्शन ने मानवीय और सामाजिक आदर्श उपस्थित किए जो आज भी मानवता के आशा स्तम्भ हैं। इनमें विद्वता और सक्रियता का संगम है। पहली पांक्त के दार्शनिक चिंतकों का जो सिलसिला बेकन से शुरू हुआ, वह स्पीनोजा और डेसकोटेंज, जॉन लॉक और न्यूटन आदि से होता हुआ इमैंनुअल कैंट पर आकर समाप्त होता है। इनके बराबर महत्वपूर्ण चिन्तकों की एक दूसरी पंक्ति भी थी, जिसकी शुरूआत डेसकाटेंज से मोन्तेस्वयू, वाल्तेयर, दिदरो और रूसों आदि से होती है और जिसका अंत होता है फ्रांस के असंख्य क्रांतिकारी पैम्पलेटों में, जो भौतिक चिन्तन से ओत प्रोत थे।

दार्शनिक-

18 वीं शताब्दी में यूरोप के प्रमुख दार्शनिक का उल्लेख नीचे किया जा रहा है-

(1) मोन्तेस्क्यू (Montesquieu) & मोन्तेस्क्यू फ्रांस के दार्शनिकों में अग्रणी है। वह कुलीन वर्ग का एक विद्वान् और अध्ययनशील न्यायाधीश था। वह क्रान्तिकारी नहीं था परन्तु कालान्तर में उसके विचारों ने क्रान्ति में बहुत योग दिया। वह राजा का विरोधी नहीं था परन्तु वह दैवी अधिकारों का विरोधी था। यूरोप के विभिन्न देशों का भ्रमण कर उसने अपने ज्ञान को अनुभूत बनाया। उसने फ्रांस की प्राचीन संस्थाओं, विशेषकर चर्च की कटु आलोचना की। उसके नवीन विचारों और व्यंग्यात्मक शैली ने लोगों पर गहरा प्रभाव डाला। उसकी दृष्टि में इंगलैंड की शासन व्यवस्था संसार में सर्वश्रेष्ठ थी क्योंकि वहां जनता की स्वतंत्रता सुरक्षित थी। 1791 ई. में फ्रांस का संविधान बनाते समय उसके विधि विचारों का ध्यान रखा गया।

मोन्तेस्क्यू ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "द स्प्रिट ऑफ लॉज" **(The spirit of Laws)** की रचना 1748 ई. में की। उसने **शक्ति पार्थक्य के प्रसिद्ध सिद्धान्त" का प्रतिपादन** किया जिसका सार यह था कि शासन की तीन शक्तियां- कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका एक ही व्यक्ति के हाथ में नहीं होनी चाहिए। शक्ति पृथक करण से ही निरंकुशता का अन्त हो सकता है। उसने तर्क दिया कि राज्य के कानून, पर्यावरण, जलवायु, भूमि की स्थिति, लोगों के स्वभाव, उनके व्यवसाय और परम्पराओं से सम्बद्ध होने चाहिए। उसने सरकारों को तानाशाह, राजवंशी और गणराज्य के वर्गों में रखा। इसका आधार क्रमशः डर, सम्मान और सद्‌गुण थे।

(2) **बाल्टेयर** (Voltaire) - बौद्धिक जगत में बाल्टेयर युग प्रवर्तक सिद्ध हुआ। वह अपने युग का महान् कवि, दार्शनिक, निबन्धकार, साहित्यकार और इतिहासकार था। लगभग 60 वर्ष तक यूरोप के बौद्धिक वातावरण पर उसका अखंड शासन रहा। उसके व्यंग्य, उपहास और प्रहारों ने अंधविश्वास और कट्‌टरता की धज्जियों उड़ा दी। वह धार्मिक पाखंडों तथा पादरीवाद का घोर विरोधी था। चर्च को वह एक "कुख्यात वस्तु" कहता था। इसका अर्थ यह नहीं कि वह नास्तिक था। वह केवल, चर्च के धार्मिक आडम्बरों का विरोधी था। उसका सिद्धान्त था कि "ईश्वर में विश्वास करो तथा अच्छा आदमी बनो।" वह कहा करता था कि "गिरजाघरों में तो मूर्खों को शान्ति मिलती है।" इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में उसके विचार क्रान्तिकारी थे। उसका मत था कि मनुष्य जीवन कुछ स्थिर, सार्वभौम तथा शाश्वत सिद्धान्तों के अनुसार चलता है। वह नए युग की स्थापना करने के लिये प्राचीन समय के नाम को ही पृथ्वी से मिटाना चाहता था।

तत्कालीन फ्रांस के सभी संस्थानों की उसने आलोचना की। वह स्वतंत्रता का उग्र समर्थक था। उसका नारा था कि "अप्रिय वस्तु को कुचल दो।" फ्रांस के जनसाधारण में बौधिक जागृति उत्पन्न करने में उसका सर्वाधिक योगदान रहा। अपनी उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा के कारण उसको मृत्यु से पूर्व यूरोप का "साहित्य सम्राट" मान लिया गया था। उसने इतिहास को नया दृष्टिकोण प्रदान किया। उसकी प्रस्तुत "एज ऑफ लुई फोरटीन" **(Age of Louis XIV)** में उसके नवीन ऐतिहासिक दृष्टिकोण की झांकी मिलती है।

वह अंग्रेजी न्यायविधान का बड़ा प्रशंसक था क्योंकि इंग्लैण्ड की न्याय व्यवस्था में किसी के साथ पक्षपात नहीं किया जाता था। वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कट्‌टर समर्थक था। एक बार उसने एक व्यक्ति से कहा था- "यद्यपि आपकी बात से मैं सहमत नहीं हूं परन्तु आपके ऐसा कहने के अधिकार की रक्षा के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं। उसके विचारों पर लॉक के दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(3) जिर्यौन जैक्यूस रूसो (Jean-Jacques Rousseau) रूसों फ्रांस का एक मेधावी दार्शनिक था। फ्रांसीसी क्रांति पर उसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। नेपोलियन महान् ने उसकी समाधि पर यह कहा था "यदि रूसों का जन्म न हुआ होता तो फ्रांसीसी क्रांति भी

नहीं हुई होता।'' मान्तेस्क्यू तथा वाल्तेयर ने तो जनता के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला, परन्तु रूसों ने उसके हृदय पर। रूसो भावना-प्रधान था। वह समाज का पुनर्निर्माण करना चाहता था। अतीत का रूसो पर कोई प्रभाव नहीं था। उसके विचार में अतीत के कारण ही मानवता संतप्त थी। उसने व्यक्तिगत जीवन में भी बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे। जीवन भर उसने रीतियों और अधिनियमों को मानने से इन्कार कर दिया। उसके विचार में "ईश्वर सब वस्तुएं अच्छी बनाता है, मानव उनमें हस्तक्षेप करता है, तो वे बुरी हो जाती है।" यही रूसों के दर्शन का सार था।

रूसो के विचार में "प्रकृति के राज्य में मानव में अधिक समता और समृद्धि थी। वह सुखी और खुश था।" उसने मनुष्य को सरल जीवन व्यतीत करने के लिये प्रकृति के राज्य की ओर वापस जाने को कहा है। अपनी कृति "डिसकोर्स आन द ओरीजिन आफ इन्इक्वेलिटी" (Discourse on the origin of in equality) मैं उसने आधुनिक सभ्यता की असमानता, बेईमानी, धोखा तथा शोषण का विश्लेषण किया है और बताया है कि सभ्यता से ही घृणा, जलन, निर्धनता और निरंकुशता पैदा हुई है।

रूसों ने प्रसिद्ध कृति "द सोशियल कॉन्ट्रेक्ट" (The Social Contract) में घोषणा की, कि मनुष्य मुक्त पैदा होता है। ये बेड़ियां नागरिक समाज द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों की है। इस प्रकार उसने सामान्य इच्छा की अवधारणा पेश की और बताया कि किसी राज्य की प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है। उसने राजा के दैवी अधिकारों का खंडन कर सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की स्थापना की। उसकी इस कृति में निरंकुश राजतंत्र पर भीषण प्रहारों के कारण इसे क्रांति की बाइबिल (Bible of Revolution) की संज्ञा दी गई है।

रूसो आर्थिक विषमता का विरोधी था। वह कहता था कि "कोई मनुष्य इतना धनी नहीं होना चाहिए कि वह दूसरे को खरीद ले और कोई मनुष्य इतना निर्धन भी नहीं होना चाहिए कि वह अपने आप को बेच दे।"

विचारक-

अठारहवीं शताब्दी के प्रमुख विचारक निम्नलिखित है-

(1) दिदरो (Diderot)

वह अपने समय का सुप्रसिद्ध विद्वान था। वह अपनी लेखन कला तथा वाक्शक्ति के लिये बहुत प्रसिद्ध था। उसने राजा की निरंकुशता, सामन्तों के विशेषाअधिकार तथा चर्च की भ्रष्टता की कटु आलोचना की। उसने समस्त पुरातन संस्थाओं का विरोध किया वह कहा करता था कि निरंकुश राजाओं और पादरियों ने संसार में सबसे अधिक कटुता उत्पन्न की है। दिदरो और कई अन्य लेखकों ने फ्रांस के विश्वकोष (Encyclopaedia) को 17 अंकों में प्रकाशित किया। उसने अपने इस विश्वकोष में एकतंत्र-राजसत्ता

धार्मिक असहिष्णुता, दास-प्रथा, सामन्त पद्धति आदि विषयों पर सविस्तार प्रकाश डाला। इसमें शासन की बुराइयों, चर्च की भ्रष्टता तथा हर क्षेत्र में व्याप्त असमानता पर बड़ी कुशलता से प्रकाश डाला गया। इसके अतिरिक्त उसने वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विषयों पर भी बड़ी चतुराई से लेख लिखे। इस विश्वकोष में दिदरो के अलावा प्रमुख योगदान करने वालों में- डी.एलीमबर्ट (D' Alembert) तुर्जो (Turgot), निकेर (Necker) मिराबें (Mirabeau), बाल्टेयर और मोन्टेस्क्यू शामिल थे। इस विश्कोष द्वारा लोगों को सरल और सुगम रीति से सत्यज्ञान से अवगत कराया गया। दिदरो के इन कोषों ने समाज में तर्कवाद का खूब प्रचार किया। इस प्रकार दिदरो ने क्रान्तिकारी विचारों को प्रोत्साहित करने में यथेष्ठ योग दिया।

(2) एडम स्मिथ व अन्य अर्थशास्त्री-

राष्ट्रीय राज्यों के उदय के साथ अर्थशास्त्र का अध्ययन महत्वपूर्ण हो गया और इस क्षेत्र में कई विख्यात विचारक हुए जिन्होंने अपनी विशिष्ट रचनाओं द्वारा आर्थिक क्षेत्र में एक क्रान्ति ला दी। मुक्त व्यापार (Laissez Faire) सम्बन्धी विचारधारा का उद्गम सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस व इंग्लैण्ड में प्रकाशित इस संदर्भ के ग्रंथों से अनुरेखित किया जा सकता है। इस विचारधारा के समर्थक भौतिकतंत्रवादी (Physiocrats) कहलाये। ब्रिटेन में "फिजियोक्रेटस" ने नेता एडमस्मिथ थे तथा फ्रांस में क्वेसने (Quesney) था।

एडमस्मिथ ने वाणिज्य के क्षेत्र में मुक्त व्यापार (Laissey Faire) नीति को अपनाने पर जोर दिया ताकि जनसाधारण को उचित मूल्यों पर आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हों और उनका शोषण न हो। ज्ञानोदय के कारण इस नवीन आर्थिक विचार धारा का अभ्युदय हुआ जिसने व्यापार के क्षेत्र में जनहित में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। एडमस्मिथ ने अपनी पुस्तक "दी वेल्थ ऑफ नेशन्स (The Wealth of Nations) 1776 ई. में प्रकाशित की। उसमें उन्होंने बताया कि मुद्रा सम्पत्ति नहीं है और यह सिर्फ व्यापार का साधन है श्रम, सम्पत्ति का सही स्रोत है जिसकी स्थिति में सुधार के लिये कल्याणकारी योजनाएं बननी चाहिए।

क्वेसने (Quesney) फ्रांस में भौतिकतंत्रवादियों (Physiocrats) का नेता तथा फ्रांस के राजदरबार का राजवैद्य था। फ्रांस की क्रांति के दौरान कुछ बुद्धिजीवी लोगों का प्रादुर्भाव हुआ जो इस मत के प्रवर्त्तक थे कि राजा को व्यापार और उद्योग धंधों को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। वे (Laissez Faire-Let nature takeits course) अर्थात् मुक्त व्यापार व उद्योगों के समर्थक थे। इस प्रकार के विचार वाले लोग भौतिकतंत्रवादी (Physiocrats) कहलाये। फ्रांस में इनका नेता क्वेसने (Quesney) था। उसने कृषि तथा व्यापार को संगठित करने पर जोर दिया। उसके मतानुसार कृषि तथा खानों पर तो कर लगना चाहिए परन्तुं व्यापार पर कर नहीं होना चाहिए।

लुई सोलहवें का अर्थसचिव तुर्जो भी इसी सिद्धान्त का बड़ा समर्थक था। आर्थिक क्षेत्र में राजकीय नियंत्रण से मुक्त सिद्धान्त का मध्यम वर्ग द्वारा खूब स्वागत किया गया।

दर्शन के क्षेत्र में प्रबुद्ध काल (Age of Enlightenment) में अनेक चिंतक हुए जैसे रेने डेसकार्टेज (Rene Descartes)] बरूचस्पिनोजा (Baruch Spinoza)] जॉर्ज बकले (George Berkeley) डेविड ह्यूम (David Hume) कोंदोसे (Condorcet) आदि थे जिन्होंने वैचारिक क्रांति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

12.6 बौद्धिक जीवन के आयाम- विज्ञान, सामाजिक ज्ञान व शिक्षा विज्ञान

"प्रकृति" और "प्राकृतिक नियम" उस युग के प्रमुख शब्द बन गये जिसमें "तर्क और तर्काधार" पहले ही जुड़ चुके थे। प्रकृति के नियमों का पता लगाने के लिए तर्क पर आधारित अध्ययन की अपेक्षा की गई थी। इस प्रकार तर्क ही सभी प्रश्नों का उत्तर और सभी समस्याओं का समाधान था। रसायन शास्त्र, वनस्पति विज्ञान और जीव विज्ञान के विषयों में तेजी से विकास हुआ। स्वीडन के वनस्पति शास्त्री लिन्नेकस (Linnacus) ने पौधों और पशुओं के वर्गीकरण की एक आधारभूत पद्धति को सूत्रित किया। वनस्पति शास्त्री जान रे (John Ray) ने फलों और पत्तों के आधार पौधों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया। फ्रांस के प्रसिद्ध जीव-विज्ञानी जॉर्ज बूफन (John Buffon) ने (Natural History) नेच्युरल हिस्ट्री" नामक अपनी वृहद कृति को 44 खण्डों में प्रकाशित किया। जिसमें नरवानरगण और मानव के घनिष्ठ सम्बन्धों का उल्लेख किया गया। इसे चार्ल्स डारविन की विकासवादी सिद्धान्त का अग्रदूत माना जा सकता है। रसायनशास्त्र के क्षेत्र में आधारभूत रसायन प्रतिक्रियाओं का पता लगाया गया। विभिन्न गैसों के मिश्रण से उत्पन्न प्रभाव सम्बन्धी "कलोजिस्टन" (Phlogiston) अर्थात प्रदाहात्मक सिद्धान्त का आविष्कार हुआ। विभिन्न वैज्ञानिक विषयों में कई महत्वपूर्ण कृतियां प्रकाशित हुईं, जैसे- "जनरल हिस्ट्री ऑफ द अर्थ (General History of Insects), हिस्ट्री ऑफ द अर्थ (History of the Earth) ईपॉक्स ऑफ नेचर" (Epochs of Nature) वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रबुद्ध युग का प्रमुख सिद्धान्त बन गया था। तदनुरूप यूरोप में अनेक अनुसंधान अकादमियां स्थापित हुई। ऐकेडमी ऑफ ऐक्सपेरिमेंट (Academy of Expriment) फलोरेंस (Florence), द रॉयल सोसायटी फॉर इम्प्रूविंग नेच्युरल नॉलिज (The Royal society for Improving Natural Knowledge) लन्दन (London) द एकैडमी ऑफ साइंस (The Academy of Science), पैरिस (Paris) और अमेरिकन फिलोसोफिक्ल सोसायटी (The American Philosophical Society) फिलाडेलफिआ (Philadelphia)।

चिकित्सा के क्षेत्र में द्रुतगति से विकास हुआ। एडवर्ड जेनर ने चेचक (Small Pox) के टीके का आविष्कार किया। रोगों के निदान में "रक्त-प्रवाह, ऊतक विज्ञान (Histology) व सूक्ष्म परीक्षण इत्यादि का प्रचलन हुआ। शव-परीक्षण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

बेंजामिन फेंकलिन ने विद्युत की छड़ का आविष्कार किया जिससे तूफान व बिजली गिरने से कई भवनों को नष्ट होने से बचाया जा सका।

सामाजिक विज्ञान

इतिहास, विधि और राजनीति की सदियों पुरानी अध्ययन पद्धति का स्थान भौतिक विज्ञान ने ले लिया। अर्थशास्त्र, सांख्यिकी और मनोविज्ञान जैसें नये विषयों का विकास हुआ। जैसा कि सुप्रसिद्ध कवि पोप ने घोषणा की थी, "मनुष्य मात्र का समुचित अध्ययन मनुष्य है," पर्यवेक्षण और तथ्य पर आधारित इतिहास लिखे गए। इनमें महत्वपूर्ण पुस्तकें थी- जोन डी मैरिआना। (Juan de Mariana) की हिस्ट्री ऑफ स्पेन" (History of Spain) जिआन बौदिन (Jean Bodin) की "मैथड इन अरली अंडरस्टेंडिंग ऑफ हिस्ट्री (Method in Early Understanding of History) जिआन मोबिलिओन। (Jean Mabillon) की "डी री डिप्लोमोटिका" (De Re Diplomatica) बोस्यूट (Bossuet) की "डिस्कोर्स ऑन यूनिवर्सल हिस्ट्री" (Discourse on Universal History) विजरे बैकारिया (Ceasare Beccaria) की "ऑन क्राइम्स् एण्ड पनिशमेन्ट्स (On Crimes and Punishments) और एडवर्ड गिब्बन (Edward Gibbon) की डिक्लाइन एंड फाल ऑफ द रोमन एम्पायर" (Decline and Fall of the Roman Empire) आदि। इस प्रकार बौद्धिक युग महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना का युग था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अभिजात वर्ग के घरों में पुस्तकालय उतने ही अनिवार्य समझे जाते थे जितना कि डाइनिंग रूम या ड्राईग रूम।

शिक्षा-

प्रबुद्ध काल में जनता का शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ा। यूरोप में स्कूलों के साथ-साथ अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। उस काल के प्रमुख विश्वविद्यालय गोटिंजन (Gottingen) और एफुत (Erfurt) (जर्मनी), डोरपेट (Dorpat) (स्वीड़न), और अबू (Abo) (फिनलैंड) आदि थे। शिक्षा के उन्नयन में जॉन लॉक की "थाटस् ऑफ एजूकेशन" (Thoughts of Education) और रूसाके की "एमाईल (Emile) जैसी कृतियों ने महान् योगदान दिया। जर्मन साहित्य समालोचक जी. लेचिंग (Gotthold Lessing) की प्रसिद्ध कृति "ऑन द एज्युकेशन ऑफ द ह्यूमन रेस" (On the Education of the Human Race) में धर्म निरपेक्ष और तर्कनापरक (Secular and Rational) शिक्षा पर जोर दिया गया ताकि शिक्षा में मानवीयता का समावेश हो।

12.7 बौद्धिक जीवन के आयाम-कला और साहित्य

कला और साहित्य-

अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के जीवन में कलाओं में निखार आया और साहित्य की विभिन्न शाखाओं का पल्लवन व पुष्पन हुआ। कलाकारों व साहित्यकारों ने यूरोप के सांस्कृतिक जीवन को प्रकाशमय एवं उल्लासमय बना दिया। यह उस काल की मानवमेद्य की सफल अभिव्यक्ति थी।

(अ) वास्तुकला-

अठारहवीं शताब्दी से पूर्व यूरोप में स्थापत्य के क्षेत्र में बारोक (बारोक) शैली (Baroque Style) का प्रचलन थां यह शैली विशेष रूप से चर्च व राजकीय महलों के निर्माण में अपनाई गई। यह भाव विशिष्ट, अप्राकृतिक, ऊपरिकृत, भंवरदार। (चक्करदार) थी। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही नवीन भवन निर्माण शैली "राकोको" (Rococo) का महाद्वीप में प्राबल्य रहा। "राकोको" शैली के भवन व इमारतें "बारोक" शैली के मुकाबले अधिक रोशनीयुक्त व हवादार थी। इस शैली के भवनों की दीवारों तथा छतों पर सफेद, सुनहरी व गुलाबी रंग किया जाता था। "राकोको" शैली में सजीवता, कोमलता और सुधड़पन था। इसलिए यह शैली "बारोक" से अधिक लालित्यपूर्ण थी। "रोकोकों शैली में सुव्यवस्थित शास्त्रीयवाद (Classicism) था। संक्षेप में यह शैली सांमजस्य संतुलन की प्रतीक थी।

अल्प समानुपातिक, निरन्तर गति तथा सीधी कतारों व कोणों रहित आसान घुमावदार, खूब विसर्पण (Gliding) करते हल्के रंगों युक्त और कई मीनारों का प्रयोग करते, "राकोको" शैली के कई सुन्दर व भव्य भवनों का निर्माण हुआ जिनमें मेरी एन्टोनिटे का पेटिट ट्रियोन्न महल, फैड्रिक द्वितीय का पोस्टडम में बना सैंस सोसी महल, पैरिस की "Hotel de Soubise" बवेरिया की "The Jewel box-Viergehnheilingen Church", म्यूनिख का "Cuvillies theatre" मुख्य हैं।

इंग्लैण्ड में जॉजियंन (Georgian Style) शैली का विकास सम्राट जॉर्ज प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय के समय हुआ। इस शैली की आत्मा कुलीनवर्गी थी। यह सर क्रिस्टोफर रेन (Sir Christopher Wren) के "बारोक शैली पर आधारित निर्माण शैली थी। यह आराम के स्थान पर विशुद्धता (परिष्कृतता) को अधिक मान्यता देती थी। इसकी तीन विशेषताएं थीं- शास्त्रीयतावाद, सुव्यवस्थित और लालित्य। रेन. (Wren) ने "बारोक" शैली के "बारोक" तत्व लिए पर स्तम्भों व गुम्बदों में शास्त्रीयतावाद का अवलम्बन किया। सेंट पॉल केथेड्रल इसका उत्कृष्ट नमूना है।

प्राचीन रोमन शैली की अभिव्यक्ति ब्रिटिश नवक्लासिक वास्तुकार रोबर्टएडम (Robert Adam) के निर्माण कार्यों में हुई।

(ब) चित्रकला-

अठारहवीं सदी के पूर्व ''बारोक'' चित्र शैली का सारे महाद्वीप पर प्रभाव था। अठारहवीं शताब्दी में "राकोको" चित्रशैली का सारे यूरोप में उदय हुआ। इसमें शालीनता व लालित्य का अदभुत् सामंजस्य था। यह शैली 1715 ई. में लुई चौदहवें की मृत्यु के बाद फ्रांस के शान्त वातावरण में फली-फूली। फ्रांस में इस शैली के विशिष्ट चित्रकार थे- "एन्टोनी बालटयू" (Antoine Walteau), जियॉन फ्रेगोनार्ड (Jean Fragonard) और फ्रेकुइस बोचर (Frangois Boucher)। इग्लैण्ड की चित्रकारी का महत्व जलीय रंगों और भू-चित्रकारी के क्षेत्र में घरानों के विकास में झलकता है। इस क्षेत्र में जोसुबा रेनपॅल्ड्स (Joshua Reyndds), (थाम्स गैंसबोरफ)- (Thomas Gainsborough) और जार्ज रोमनी (George Romney) प्रमुखकलाकार हुए। स्पेन की चित्रकला की प्रतिभा फ्रॉसिस गोया (Francis Goya) में झलकती है।

(स) संगीत-

इस शताब्दी से पूर्व यूरोप में "बारोक" संगीत का प्रचलन था। इस क्षेत्र के महान् संगीतकारों ने संतुलित एवं मिश्रित संगीत रचनाओं को परिभाषित किया। इस समय विशुद्ध संगीत का प्रचलन हुआ जिसमें मर्मज्ञता एवं मिश्रितता थी। प्रबुद्धकाल के आदर्शों के अनुरूप स्वर लहरी में सुरीलापन, सुगमता, आनन्दविभोरता, स्पष्टता आई। संगीत कला में शास्त्रीयतावाद का विकास हुआ। बाच (Bach) और हैडंल (Handel) महान् जर्मन संगीतकार हुए जिनके गहरे भावों से ओत-प्रोत संगीत का लेखन एवं वाणी द्वारा मधुर गायन यूरोपीय क्षितिज पर छा गया। अठारहवीं शताब्दी में उनके उत्तराधिकारियों में आस्ट्रिया के हैडिन (Haydin) व मोजार्ट (Mozart) प्रमुख थे। उन्होंने शास्त्रीय संगीत शैली का प्रतिनिधित्व किया। उनके संगीत में सामंजस्य, स्पष्टता एवं संतुलन के सिद्धान्तों का समावेश था। इतना होने पर भी उनके संगीत में कुलीनवर्गी कुछ तत्व मौजूद थे। हैडिन का संगीत उपदेशात्मक था। मोजार्ट संगीत नाटक (OPera) का तात्कालीन उत्कृष्ट रचियता था। हैडिन को उठारहवीं शताब्दी का "सिम्फोनी (स्वर संगीत) का जनक (Father of Symphony) कहा जाता है। उसने कई सुरीली स्वर संगतियों का सृजन किया। इस प्रकार यूरोपीय वातावरण मधुर गीतों, तानों व वाद्यों की झंकार से संगीतमय हो गया।

साहित्य-

साहित्य के क्षेत्र में ज्ञानोदय के कारण उत्कृष्ट कृतियों का सृजन हुआ। उनमें मौलिकता थी। लेखन में नवीन शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। वाल्तेयर को उसकी उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा के कारण यूरोप का "साहित्य सम्राट" माना लिया गया था। मोन्टेक्यू, वाल्टेयर, रूसो और ब्यूमरचैस (Beaumarchais) ने "परशियन लैटर्स (Persian Letters) "कैंडिडे" (Candidate) एक उपन्यास "द न्यू हैलोपस (The New Heloise) और एक अन्य उपन्यास "द मैरिज ऑफ फिगारों (The Mariage of Figaro) जैसी

क्रमशः विशिष्टकृतियों की रचना की।

अठारहवीं शताब्दी में "इंग्लैंड में गद्य का बोलबाला रहा। प्रमुख गद्यकारों में जॉन बुयान (John Bunyan) जॉनथम स्विफ्ट (Jonathan Swift) महान् उपन्यासकारों में सेमुऊल रिचर्डसन (Samual Richard Son), हेनरी फिल्डिुग (Henny Fielding), जॉन ड्रायडम (John Dryden) और अलेग्जेडंर पोप (Alexander Pope)आदि शामिल थे। अलेग्जेडंर पोप की पुस्तक "एस्से ऑन मैन" (Essay on Man) में 18 वीं शताब्दी का तर्कवाद और आशावाद सार रूप में प्रस्तुत किया गया था। इस काल में साहित्य की विशेषता यह थी कि इसमें रोमांस को नये रूप में प्रस्तुत किया गया जर्मनी में जोहॉन गोटिफ्राइड (Johann Gotifried) रोमांस और राष्ट्रवाद के सुत्रधार थे। फ्रेड्रिक चिल्लर (Friedrich Schiller) की कृतियां "द रोबर्स (The Robbers) और मैड ऑफ आरलियस" (Maid of Orleans) में रोमांस को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

12.8 सारांश

अठारहवीं शताब्दी अर्थात् प्रबुद्धकाल (एज ऑफ एनलाइटन्मेन्ट) के उत्तरार्द्ध में मानवीय व्यवहार में तर्क की भूमिका को गति ओर निरन्तरा प्राप्त हुई। सर ईसाइया (बर्लिन) की पुस्तक "दी एटीन्थ सैन्चुरी" में कहा गया है कि यह संभवतः पश्चिमी यूरोप के इतिहास का अंतिम काल था जब कि मानवीय सर्वज्ञता को प्राप्त करना लक्ष्य समझा जाता था। अठारहवीं शताब्दी के प्रबुद्ध कालीन दर्शन ने वह मानवीय और सामाजिक आदर्श उपस्थित किया जो आज भी मानवता का आशा स्तम्भ है। मानव की स्वाधीनता और समानता के संगीत ने इस सदी में अभूतपूर्व मधुरता भर दी। धर्म का विशुद्ध रूप जनता के सामने आया। धार्मिक स्वतंत्रता और धर्म निरपेक्षता की भावनाएं बलवती हो गई। धर्म की प्रवृत्ति जनकल्याणकारी कार्यों की ओर हुई। कला, साहित्य, विज्ञान और दर्शन के पल्लवन व पुष्पन ने यूरोपीय संस्कृति में निखार ला दिया। अठारहवीं शताब्दी में यूरोप का धार्मिक और बौद्धिक जीवन संतुलित ओर प्रगतिमुख बन गया।

12.9 बोध प्रश्नः-

1. अठारहवीं शताब्दी के यूरोप के धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन में पुनर्जागरण का धर्म सुधार की क्या पृष्ठ भूमि थी ?
2. "प्रबध काल" (Age of Enlightenment) से आपका क्या अभिप्राय है?
3. अठारहवीं शताब्दी के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिये।
4. अठारहवीं शताब्दी के यूरोप के प्रमुख दार्शनिकों के योगदान का विवेचन कीजिए।
5. अठारहवीं सदी से यूरोप में कला की प्रगति का उल्लेख कीजिए।

6- अठारहवीं सदी के यूरोप में साहित्य/के उन्नयन का निरूपण कीजिए।

12.10 संदर्भ पुस्तकेः-

1. Edward Mc Nall Burns, Robert E. Lerner and Standish Meacham: `Western Civilizations'
2. Leo Gershoy: `The French Revolution and Napoleon
3. J.E. Swain : History of World Civilization'.
4. Edward Gibbon: `The Decline and Fall of the Roman Empire'
5. Norman Hampson: `The Enlightenment'
6. Carlton J.H. Hayes : `A Political and Cultural History of Modern Europe' Vol. I

इकाई-13
औद्योगिक क्रान्ति

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ होने के कारण

13.3 औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भिक दौर (1760-1830)

13.4 औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर

13.5 औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

13.6 महत्व

13.7 औद्योगिक क्रान्ति का यूरोप में मन्द गति से प्रसार

13.8 सारांश

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्यः

(i) औद्योगिक क्रांति की प्रेरक शक्तियों को समझना।

(ii) औद्योगिक क्रांति के विभिन्न चरणों की विशेषताओं एवं उपलब्धियों का विश्लेषण करना।

(iii) औद्योगिक क्रांति के परिणामों एवं महत्व की विवेचना करना तथा

(iv) यूरोप के देशों में औद्योगिक क्रांति के प्रसार को समझना।

13.1 प्रस्तावनाः

अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ब्रिटेन में औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का क्रम आरम्भ हुआ। इससे औद्योगिक क्षेत्र में अनेक नये द्वारा खुले, नयी-नयी तकनीकों का विकास होता गया, अनेक प्रकार की मशीनों के निर्माण का क्रम ब्रिटेन में चल निकला और समय के साथ-साथ उत्पादन की गति इतनी अधिक तेज हो गयी कि इन परिवर्तनों को औद्योगिक क्रान्ति कहा गया। 1760 से 1830 तक ब्रिटेन में

औद्योगिक परिवर्तनों का पहला दौर आया और 1830 से 1870 तक इसका दूसरा दौर चलता रहा। इस प्रकार प्रायः एक शताब्दी में ब्रिटेन में उद्योग के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन हुए। इनसे इस देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन का समूचा स्वरूप ही बदल गया। वैसे तो क्रान्ति शब्द का उपयोग अचानक आये परिवर्तनों के लिये ही किया जाता है। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति का सिलसिला ब्रिटेन में लम्बे समय तक चलता रहा, ब्रिटेन की औधोगिक क्रांति अचानक शुरू न होकर लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया थी। इसी कारण ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति को अन्य क्रान्तियों से भिन्न माना जा सकता है। सबसे पहले तो यह आकस्मिक न होकर लम्बे समय तक चलने वाला दौर था। यह खूनी न होकर शान्तिपूर्ण थी और इसने किसी उथल पुथल को जन्म देने के स्थान पर बदलाव के ऐसे क्रम को जन्म दिया जो समाज में स्वतः होते गये।

औद्योगिक उत्पादन लाने के क्रम में ब्रिटेन में किये गये उपाय इतने अधिक व्यापक थे, इतने नये प्रकार के थे और इतने विलक्षण थे कि इन्हें औद्योगिक क्रान्ति कह कर पुकारा गया। इससे इन परिवर्तनों के महत्व को स्वीकारा गया। यह भी स्मरण रखना होगा कि इन युगान्तकारी परिवर्तनों का महत्व केवल एक देश अथवा एक महाद्वीप तक सीमित न रहा। इस औद्योगिक क्रान्ति का सबसे उल्लेखनीय पक्ष यह था कि धीरे-धीरे समूचे यूरोप और फिर पुरे विश्व में औद्योगिक उत्पादन का नया दौर चल पड़ा। इस प्रकार ब्रिटेन में प्रारम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति विश्व इतिहास और मानव जीवन में महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। इसके परिणामों की दृष्टि से भी ब्रिटेन में सहसा आये औद्योगिक परिवर्तनों को औद्योगिक क्रान्ति कहना सर्वथा उचित है।

यहां विचार करना होगा कि औद्योगिक क्रान्ति ब्रिटेन में क्यों हुई ? उन सहायक परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जिनके फलस्वरूप ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति का दौर शुरू हुआ।

13.2 ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ होने के कारणः

ब्रिटेन की तत्कालीन आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ औद्योगिक क्रान्ति में सहायक सिद्ध हुई। इस देश में सबसे पहले और सफलतापूर्वक औद्योगिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के कुछ विशेष कारण अवश्य थे। ब्रिटेन में सहायक परिस्थितियां इस प्रकार थीं:-

कृषिक प्रगति का प्रभावः

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति लाने में कृषि ने विशेष भूमिका अदा की। इस क्रान्ति के पूर्व यहां कृषि में प्रगति हुई थी, बड़े-बड़े फार्म स्थापित किये गये थे और धनवान भूमिपतियों ने खेती में पर्याप्त पूंजी लगायी थी। परिणामतः खेती से इन जमींदारों को

लाभ मिला। उनके पास काफी पूंजी इकट्ठा हो गयी। भूमि से लाभ उठाने वालों की संख्या में हुई बढ़ोत्तरी तब विशेष रूप से उपयोगी साबित हुई जब औद्योगिक प्रगति लाने में पूंजी लगाने वालों को अवसर मिले। कृषि से अर्जित पूंजी का प्रयोग औद्योगिक क्रान्ति लाने में ब्रिटेन में किया गया।

सस्ते मजदूरों की उपलब्धताः

खेती में बड़े जमींदारों द्वारा विशाल फार्म स्थापित करने से छोटे किसान खेती से जीविका उपार्जन करने की स्थिति में नहीं रह गये। इनमें से अनेक किसानों के पास कोई काम न रह गया। अतः ये किसान शहरों की ओर बढ़े, उन नये-नये औद्योगिक केन्द्रों तक पहुंचे जहां मजदूरों की आवश्यकता थी और इनकी मजबूरी का लाभ उठाकर उन्हें कम से कम वेतन देने का सिलसिला चल पड़ा। इन मजदूरों की विशाल संख्या से औद्योगिक प्रगति गतिशील हुई।

विदेश व्यापार पर जोरः

अठारहवीं सदी तक ब्रिटेन की नौसेना विश्व की सबसे शक्तिशाली नौसेना बन चुकी थी। समुद्र में उसकी श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी। इस कारण ब्रिटेन ने जलयानों द्वारा दूर से दूर के देशों तक पहुंचने का और विश्व के अधिक से अधिक देशों के साथ व्यापार करने का प्रयास किया। इसमें उसे सफलता भी मिली। उसने अनेक देशों पर राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित कर लिया। विदेश व्यापार की व्यापक संभावनाओं को देखते हुए ब्रिटेन में उत्पादनों की मांग बढ़ी। अधिक से अधिक माल के तथा अच्छे से अच्छे माल के उत्पादन की चारों तरफ से मांग होने लगी। इसी स्थिति से प्रोत्साहित होकर औद्योगिक क्रान्ति हुई।

प्राकृतिक साधनः

औद्योगिक विकास में प्राकृतिक साधनों की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से ब्रिटेन भाग्यशाली था। यहां लोहा और कोयला के विशाल भंडार थे, और ये खदानें एक दूसरे के निकट भी थीं। इस खनिज सम्पदा की व्यापक उपलब्धता से ब्रिटेन में औद्योगिक विकास की संभावनाएं बढ़ीं। हर तरह के उद्योगों की स्थापना में इन प्राकृतिक साधनों ने रीढ़ की हड्डी का काम किया।

व्यापारिक बैंकों की भूमिकाः

सत्रहवीं सदी से ही ब्रिटेन में बैंक स्थापित हो गये थे। ये बैंक हर स्थिति का सामना करने के लिये कर्ज देते थे। युद्ध के समय ये बैंक सरकार को कर्ज देते थे और शान्ति के समय इन बैंकों ने उद्योगों की स्थापना की दृष्टि से कम से कम ब्याज की दर से कर्ज उपलब्ध कराये। ब्रिटेन के बैंकों ने इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति लाने

में प्रभावकारी भूमिका अदा की। बैंको ने जो पूंजी उपलब्ध करायी उसका उपयोग करके ब्रिटेन के उद्योगों की पैर जमाने का अवसर मिला।

अनुकूल राजनीतिक स्थितिः

ब्रिटेन के राजनीतिक वातावरण ने भी औद्योगिक क्रान्ति लाने में मदद की। सबसे पहले तो ब्रिटेन मे किसी प्रकार की राजनीतिक उथल पुथल के बजाय राजनीतिक स्थायित्व था। राजनीतिक शान्ति, स्वतंत्र समाज, संसदीय प्रजातंत्र और जनता को प्राप्त राजनीतिक अधिकारों ने एक ऐसा अनुकूल माहौल उत्पन्न कर दिया जिसमें आर्थिक प्रगति की संभावनाएं बढ़ी। ब्रिटेन के पूंजीपति अपने को सुरक्षित अनुभव करते थे और उद्योगों में धन लगाने में उन्हें किसी प्रकार की असुरक्षा नहीं दिखायी दी।

13.3 औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भिक दौर (1760-1830)

अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ब्रिटेन में तीव्र गति से औद्योगिक रूपान्तरण हुआ, उत्पादन में व्यापक वृद्धि हुई ओर विभिन्न उद्योगों के उत्पादन के ऐसे नये तरीके अपनाये गये जो इसके पहले दुनियां में कहीं भी नहीं अपनाये गये थे। मशीनीकरण तथा भाप की शक्ति का उपयोग इस औद्योगिक क्रान्ति के आधार स्तम्भ थे। उदाहरणार्थ शताब्दियों से ब्रिटेन में वस्त्र उद्योग था। लेकिन वस्त्रों के उत्पादन में मानव शक्ति का प्रयोग होता था। ये उद्योग छोटे पैमाने पर घरों में प्रचलित थे और घरेलू उद्योग के रूप में जो कुछ वस्त्र बना लिया जाता था उसे निकट के बाजारों में बेच दिया जाता था। औद्योगिक क्रान्ति के शुरू होते ही यह परम्परागत तरीका मशीनरीकरण के साथ बदला। नई-नई तरह की मशीनों के निर्माण और इनके उपयोग से उत्पादन के तरीके बदले।

ऊन और सूत की कताई और बुनाई कीं अनेक नयी मशीनों के आविष्कार होने से उत्पादन तेजी से बढ़ा। वस्त्र के उत्पादन की दो प्रक्रियाएं थीं। पहली प्रक्रिया थी कच्चे माल को कात कर धागा बनाना और दूसरी थी इन धागों को बुनकर ऊनी अथवा सूती कपड़ा बनाना। इस अवधि में ब्रिटेन में कातने और बुनने की मशीनें बनीं और धीरे-धीरे और भी अच्छी मशीनों का निर्माण हुआ। 1733 में जान के की फ्लाई शटल बनाई गयी। यह मशीन अधिक तेजी से बुनाई कर सकती थी। इससे कातने की मशीन की जरूरत पड़ी। 1767 में जेम्स हारग्रीव्स की स्पिनंग जैनी का आविष्कार हुआ। अभी तक परंपरागत प्रणाली से एक तकली पर एक धागा बनता था। अब आठ तकलियां एक साथ काम कर सकती थीं। 1760 में रिचर्ड आर्कराइट की स्पिनिंग फ्रेम मशीन से और भी परिवर्तन के द्वार खुले। इससे कताई की चौखट बनाने का क्रम शुरू हुआ। यह मशीन धागा भी बनाती थी और घूमती हुई तकलियों की मदद से इन धागों को घुमा सकती थी। इस मशीन की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि हाथ या पैर की शक्ति के स्थान पर यह जलशक्ति की मदद से चलती थी। ये मशीनें अच्छा तथा मजबूत धागा बनाने लगीं। इसी के साथ 1785 में एडमन्ड कार्टराइट ने पावरलूम का

आविष्कार किया। एक ऐसे करघे का आविष्कार हुआ जो पहले वाले शक्ति तथा बाद में भाप की शक्ति से चलने लगा। अब तक बुनाई की प्रकिया पहले की तुलना में अधिक तेज हो गयी। अच्छे धागे की मदद से ज्यादा कपड़े का उत्पादन शुरू हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति के इसी दौर में दो स्थिति-विकासों की चर्चा की जा सकती है। इनमें से मशीनों को चलानें में भाप की शक्ति का आविष्कार सबसे अधिक उल्लेखनीय विकास था। भाप की ताकत की जानकारी और इसका उपयोग औद्योगिक क्रान्ति का आधार था। दूसरा स्थिति-विकास था नई मशीनों के निर्माण में धातु का प्रयोग।

युगों से किसी भी प्रकार की मशीन को हाथों की ताकत से अधिक बल से चलाने का विचार मानव मस्तिष्क में था। वायु, जल या जानवर की शक्ति का उपयोग करने की समस्या का समाधान नहीं हुआ था। अन्ततः 1782 में तब चमत्कार हुआ जब जेम्स वाट ने भाप की शक्ति का उपयोग करते हुए तेजगति से घूमने वाला एक भाप का इंजन का आविष्कार किया। यह एक नये युग का आरम्भ था क्योंकि वस्त्र उद्योग के अलावा अनेक अन्य उद्योगों में भाप की शक्ति का उपयोग जैसे जैसे बढ़ता गया उसी अनुपात में औद्योगिक क्रान्ति तेज होती गयी। तरह तरह की मशीनों को भाप की शक्ति से चलाने का सिलसिला चल निकला।

भाप की शक्ति के जानकारी तथा लोहे और कोयले का प्रयोग औद्योगिक क्रान्ति के आधार स्तम्भ बने। लकड़ी की मशीनें भाप की शक्ति का दबाव सहयन नहीं कर सकती थी। लोहें की मशीनों के बनाने से क्रान्ति युग का आरम्भ हुआ। अठारहवीं शताब्दी तक निम्न श्रेणी का लोहा उपलब्ध था और इसे गरम करने में टनों लकड़ी का प्रयोग होता था। औद्योगिक क्रान्ति के पहले चरण में लोहे को पिघलाने में कोयले का उपयोग करने की प्रकिया शुरू हो गयी। अच्छी और शुद्ध लोहा तैयार करने की नयी विधियां ढूढ़ निकाली गयीं। परिणामतः लोहा और इस्पात का उत्पादन बढ़ा और इस धातु की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए इसकी गुणवत्ता को सुधारने के नये से नये आविष्कार हुए।

लोहे की आवश्यकता ने कोयले के निकालने की विधियां खोज निकालने की जरूरत को महत्वपूर्ण बना दिया। ब्रिटेन में कोयला प्रचुर मात्रा में था। लेकिन खदानों से इसे निकालना कठिन काम था क्योंकि खदानों में पानी भरा रहता था और पानी को हटाने की विकट समस्या थी। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान इसका समाधान ढूंढ निकाला गया। नये भाप की शक्ति से चलने वाले पम्पों की मदद से कोयले की खादनों से पानी हटाने की समस्या पर काबू पा लिया गया। धीरे-धीरे आविष्कारों ने अच्छे भाप की शक्ति से चलने वाले पम्पों के निर्माण में सफलता प्राप्त कर ली।

व्यापक पैमाने पर उत्पादन तभी संभव हो सका जब दो और आवश्यकताओं की पूर्ति हो गयी। इनमें से पहली आवश्यकता थी कच्चे माल को उन स्थानों तक पहुंचाना

जहां कारखाने लगाये गये थे और दूसरे उत्पादित माल को बाजारों तक पहुचाना। तजा से औद्योगिक विकास करने के लिये यातायात के साधनों में सुधार जरूरी था। इस दृष्टि से ब्रिटेन में अनेक कदम उठाए गये। इनमें से पहला था पक्की सड़कों का कोलतार और मिट्टी की मदद से निर्माण। एक अन्य तरीका था जल मार्ग। ब्रिटेन में नहरों और नदियां का जाल बिछा हुआ था जिस पर भाप की ताकत से चलने वाली नौकाओं द्वारा वस्तुओं को लाया और ले जाया गया। शीघ्र ही समुद्र पर भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों का जब निर्माण 1838 में शुरू हो गया तो यातायात के क्षेत्र में सचमुच क्रान्ति आ गयी। अब समुद्र के द्वारा ब्रिटेन को व्यापार करने के असीमित द्वार खुले और वे उत्पादित माल को देश के बाजारों के साथ-साथ विश्व के बाजारों में बेच सकता था और ऐसा करने की महत्वाकांक्षी योजनाएं ब्रिटेन में बनने भी लगीं।

यातायात के क्षेत्र में सबसे उल्लेखनीय स्थिति का विकास हुआ रेलवे के भाप इंजन का आविष्कार। रेल ईंजन का विकास धीरे-धीरे हुआ। पहले खदानों में छोटी-छोटी मोटरें चलीं। 1814 में जार्ज स्टीफैन्सन ने भाप से चलने वाले रेल ईंजन का सफलता पूर्वक निर्माण कर दिया। उसने इसको कुछ समय में और विकसित कर दिया। विशेष रूप से उल्लेखनीय घटना 1830 तक घटी जब मेनचेस्टर से लिवरपूल शहरों के बीच तीस मील प्रतिघंटा से रेलगाड़ी चली। इसके पश्चात तो रेल इंजन और डिब्बों के निर्माण में तरक्की होती गयी और सामान तथा मनुष्यों को लाने ले जाने में क्रान्ति स्पष्टतः दिखायी दी। यातायात के साधनों में इस विकास से औद्योगिक क्रान्ति के और कारगर होने के आधार स्पष्टतः दिखायी दिये। रेल यात्रा सस्ती थी, सुलभ थी और धीरे-धीरे समूचे देश में रेल का जाल फैल गया जिससे उत्पादित वस्तुओं और कच्चे माल को ले जाने में ऐसे परिवर्तन हुए जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की गयी थी।

उत्पादन के कुछ आकड़ों से परिवर्तन की गति और इसके स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है। कपास की खपत 1760 में आठ हजार टन थी जो बढ़कर 1830 में सौ हजार टन हो गयी। लोहे का उत्पादन 1800 में 250 हजार टन था जो 1835 में बढ़कर एक मिलियन टन हो गया। कोयले का उत्पादन 1770 में छह मिलियन टन था जो 1830 में बढ़कर 23 मिलियन टन हो गया। औद्योगिक क्रान्ति के पहले चरण में हुई आर्थिक प्रगति का आकलन इन आकड़ों से किया जा सकता है।

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन प्रणाली मे मूलभूत अन्तर यह पाया कि घरेलू उद्योग धन्धों के स्थान पर कारखानों की स्थापना हुई। कारखाने उत्पादन के केन्द्र बने। औद्योगिक क्रान्ति शुरू होने के पहले कताई, बुनाई तथा अन्य औद्योगिक उत्पादन अधिकतर घरों मे ही होता था अथवा दुकानों में होता था जहां परिवारजन, स्त्री, पुरूष और बच्चे सभी इस काम में हाथ बटाते थे। परिवार का मुखिया औजार इकट्ठा करने के साथ-साथ कच्चा माल लाने और उत्पादित माल को बेचने का कार्य भी करता था। इस प्रकार उत्पादन की प्रणाली वास्तविक रूप से घरेलू थी। औद्योगिक क्रान्ति के बाद

यह व्यवस्था बदल गयी। अब श्रमिक घर छोड़कर कारखानों में एकत्र होते थे। अनेक कारखाने बनते गये। ये श्रमिक निश्चित वेतन पाते थे और उत्पादनव के बाकी कार्यों से इनको कोई मतलब नहीं होता था। नये कारखाने धीरे-धीरे और भी विशाल औद्योगिक केन्द्र बनते गये और इनमें अनेक प्रकार की मशीनें लगने लगीं। फैक्टरी लगाने में काफी धन लगने लगा। श्रमिकों द्वारा धनवान लोगों को एक प्रकार से श्रम बेचने की पद्धति का आरम्भ हुआ। कारखानों की स्थापना से उद्योगों में अनेक प्रकार की नयी समस्याएं जन्मीं।

13.4 औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर

1830 से 1850 तक औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर चला। इस दौरान पहले दौर की औद्योगिक प्रगति का तेजी से विकास हुआ, अनेक उद्योगों का विस्तार हुआ और यातायात के साधनों के विस्तार से देश का नक्शा ही बदल गया। इस दौरान औद्योगिक क्रान्ति की उपलब्धियां स्पष्टतः प्रकट हुई। ब्रिटेन में लगातार हुए औद्योगिक विकास के तीन कारण दिये जा सकते हैं। ये थे औद्योगिक पूंजी का विकास, इंजीनियरिंग वर्गों की संख्या में तेजी से वृद्धि और वैज्ञानिक आविष्कार।

सूती वस्त्र उद्योग का व्यापार ब्रिटेन का पहला सफल उद्योग था। इसकी व्यापक सफलता के फलस्वरूप उन लोगों के पास विशाल पूंजी इकट्ठा हो गयी जिन्होंने इनमें धन लगाया था। जब इन उद्योगपतियों को एक उद्योग में आशा से अधिक लाभ मिला तो इन्होंने अन्य उद्योगों में धन लगाया। इस प्रकार उद्योगों में प्रगति बढ़ती गयी। इसी अवधि में ब्रिटेन में लिमिटेड कम्पनियां बनी और दूसरे कारपोरेशन स्थापित हुए। इन व्यापारिक संस्थानों में ऐसी प्रक्रिया शुरू की गयी जिसमें हजारों लोग अपना संचित ध ान लगाकर औद्योगिक उत्पादन के लाभ के भागीदार बने। विशाल पूंजी एकत्र करने की दृष्टि से यह एक निराला तरीका अपनाया गया।

इंजीनियरिंग और तकनीकी ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के योगदान से भी औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर गतिशील रहा। खदान, वस्त्र उद्योग, बिजली, सड़क, रेलवे आदि विभिन्न प्रकार के उद्योगों में वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान रखने वालों की निर्णायक भूमिका तरह-तरह से आविष्कारों में तो थी ही लेकिन मशीनों के रख-रखाव और ठीक प्रकार से उनके संचालन में भी नये वर्गों ने प्रभावी भूमिका निभायी।

औद्योगिक क्रान्ति के इस दूसरे दौर में रेलवे के असाधारण विकास ने समूची यातायात व्यवस्था का स्वरूप ही बदल दिया। 1830 तक रेलवे का दौर शुरू ही हुआ था और केवल पांच सौ मील की धीमी गति की रेलों पर यात्री सफर करते थे। ये रेलें सामान को लाने-ले जाने का साधन नहीं बनी थी। यात्रियों के आवागमन का रेल प्रमुख साधन नहीं बनी थी। आगामी दस वर्षों बाद रेल का विस्तार पांच हजार मील तक कर दिया गया। यात्रियों के आवागमन का रेल प्रमुख साधन बन गयी। इसकी

गति और दासता में विस्तार किया गया। शीघ्र ही भारी सामान भी रेलमार्ग से जाने लगा।

1830 के पश्चात के बीस वर्षों में हर क्षेत्र में उत्पादन बढ़ा। वस्त्र उद्योग मे भाप की शक्ति का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता गया। पहले सूती धागा कातने में भाप की शक्ति का प्रयोग लिया जाता था और इसके बाद बुनाई में भी भाप की शक्ति का प्रयोग बढ़ा। भाप से चलने वाले करघों की संख्या 1830 में साठ हजार थी जो 1850 में दो सौ पचास हजार हो गयी। इसी प्रकार से हाथ से चलने वाले करघों की संख्या लगातार घटती गयी। 2,25,000 हाथ से चलने वाले करघे इसी अवधि में घटकर पचास हजार रह गये। ऊनी और सिल्क वस्त्रों के उत्पादन से जुड़े सभी कार्यों में मशीनों का उपयोग बढ़ा। इन नये साधनों के परिणामस्वरूप कच्ची कपास का उपयोग एक लाख टन से बढ़कर तीन लाख टन हो गया। विदेशों से आयातित ऊन भी तीन गुना अधिक आने लगी। कच्चे माल के खपत के ये आकड़े बताते हे कि सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों का उत्पादन तेजी से बढ़ा।

इस अवधि में लोहे के उत्पादन में विशेष प्रगति हुई। 1830 में लोहे का उत्पादन सात लाख टन था जो बढ़कर बीस वर्षों बाद बीस लाख टन हो गया। इस समय लोहे के उत्पादन में तकनीकी दृष्टि से दो नये उपाय किये गये। गर्म हवा भट्टी का प्रयोग इनमें से पहला उपाय था। इसके पश्चात लोहे के उत्पादन को बढाने में वाष्पीय हथोड़ा प्रयोग मे आया। नयी तकनीकों का प्रयोग करके अधिक से अधिक लोहे का उत्पादन बढ़ाया गया। प्रायः इसी गति से कोयले का उत्पादन भी बढ़ा। 1830 से 1850 के बीच कोयले की खपत 23 मिलियन टन से बढ़कर 65 मिलियन टन हो गयी। रेलवे तथा उद्योगों के विकास के साथ-साथ लोहे और कोयले की मांग बढ़ती गयी और इस बढ़ती हुई मांग को पूरा करते हुए ही इनका अधिक उत्पादन किया गया।

कुछ अन्य क्षेत्रों में भी औद्योगिक प्रगति दिखायी दी। अब लोहे के सामुद्रिक जहाजो का निर्माण शुरू हुआ और सामुद्रिक जहाजों में वाष्प की शक्ति का प्रयोग होने लगा इस प्रकार के सामुद्रिक जहाज पहले से तेज गति से चलने लगे और इनको कम खतरो का सामना करना पड़ा। देश-विदेश तक वस्तुओं की आयात निर्यात में इन सामुद्रिक जहाजों का व्यापक प्रयोग शुरू हुआ। 1831 में बिजली इंजीनियरिंग का जन्म हुआ कुछ वर्षो में ही ब्रिटेन में बिजली के तार के खम्भें लगाये गये और सम्पर्क सूत्र स्थापित करने का नया साधन मिला इससे रेलवे के विकास में तथा व्यापार में सहायता मिली

13.5 औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

औद्योगिक क्रान्ति के लम्बे विकास क्रम द्वारा ब्रिटेन में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन आए, यहां के निवासियों के रहन सहन का तरीका बदल गया तथा राजनीति भी प्रभावित हुई। एक प्रकार से देश का पूरा स्वरूप ही बदल गया। यह उचित होगा

कि इन परिवर्तनों का आकलन किया जाये।

उत्पादन में असाधारण वृद्धि

ब्रिटेन में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में असाधारण वृद्धि से यहां के निवासियों का आर्थिक जीवन बदल गया। नित्यप्रति प्रयोग में आने वाली वस्तुएं बहुतायत में उपलब्ध होने लगी। इसके पूर्व कभी भी सूती वस्त्र, गलीचे तथा घर में उपयोग में आने वाली छोटी और बड़ी वस्तुएं न तो इतनी बड़ी संख्या में बाजार में उपलब्ध रहती थी और न कोई इसकी कल्पना कर सकता था। अतः वस्तुओं की उपलब्धता से उनकी बिक्री बढ़ी। लोगों का स्वभाव भी इस स्थिति से बदला और वे अलग-अलग प्रकार की वस्तुओं को खरीदने और इन्हें घर में रखने के इच्छुक दिखायी दिये। यह भी ध्यान देने योग्य है कि नित्य प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के दाम भी घट गये क्योंकि मशीनों के प्रयोग होने से इनका उत्पादन बड़ी संख्या में किया जा सकता था। वस्तुओं के उत्पादन से देश धनवान हुआ। इसका एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। 1760 में सूती वस्त्रों के उत्पादन की कीमत एक लाख पौंड थी जो बढ़कर 1910 में छह सौ लाख पौंड हो गयी। उत्पादन में हुई इस चमत्कारिक वृद्धि से देश में पूंजी आयी, लोग धनवान हुए और चारों ओर खुशहाली दिखायी दी।

शहरीकरण

नये-नये शहरों की स्थापना, शहरों का लगातार विकास और गांवों से लोगों का शहरों की ओर पलायन औद्योगिक क्रान्ति की प्रमुख देन थे। ये नये शहर अधिकतर उन औद्योगिक केन्द्रों से विकसित हुए जिनकी स्थापना लोहे और कोयले की व्यापक उपलब्धता वाले स्थानों के निकट की गयी थी। इस प्रकार के समीकरण से प्रकट है कि अधिकतर ब्रिटेन के नगर औद्योगिक नगर थे। जैसे-जैसे समय के साथ-साथ उत्पादन बढ़ा नये-नये उद्योग स्थापित हुए उसी अनुपात में नगरों की संख्या और आकार में वृद्धि हुई। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात में भारी परिवर्तन आया। ब्रिटेन में पहले अधिकतर लोग गांवों में रहते थे। उन्नीसवीं सदी से यह स्थिति बदल गयी। अब अधिकतर लोग हशहरों में रहने लगे। शहरों के तेजी से होने वाले विकास में नये प्रश्नों को जन्म दिया क्योंकि आवास, खान-पान, बीमारी, गन्दगी आदि अनेकों समस्याओं का समाधान करना आवश्यक हो गया। उन्नीसवीं सदी में इन शहरों का विकास किसी प्रकार की योजना से नहीं हुआ था। अतः मनमाने तरीकों से शहर बढ़ते गये। बाद में शहरीकरण से उपजे प्रश्नों पर ध्यान दिया गया।

मुक्त व्यापार

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ होने तक निर्यात और आयात करने के लिये ब्रिटेन में तरह-तरह के बन्धन लगे हुए थे। संरक्षणवाद की नीति अपनाते हुए अनेक ऐसे कानून

बने थे जो व्यापार करने में बाधा उपस्थित करते थे। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप संरक्षणवाद के स्थान पर मुक्त व्यापार की नीति अपनायी गयी और व्यापार करने पर लगाये गये अंकुश हटा दिये गये। इस निर्णय का मुख्य कारण यह था कि औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात ब्रिटिश उद्योग और व्यापार का सरंक्षण करने की जरूरत नही रह गयी। फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात ब्रिटेन का जहाजी बेड़ा भी शक्तिशाली हो चुका था किसी अन्य देश के सामान से ब्रिटेन के माल की रक्षा करने की आवश्यकता नही रह गयी। परिणामतः अर्थशास्त्री एडम स्मिथ और उसके सहयोगियों ने मुक्त व्यापार के पक्ष में आवाज उठायी। उन्नीसवीं सदी के मध्य से मुक्त व्यापार करने का निर्णय ब्रिटिश सरकार ने किया।

बैंक और मुद्रा

औद्योगिक क्रान्ति के दौरान बैंकों ने प्रमुख भूमिका अदा करते हुए विभिन्न उद्योगों को पूंजी उपलब्ध करायी। इस प्रकार तरह-तरह के उद्योगों की स्थापना में पूंजी को उपलब्ध कराने में ब्रिटेन के बैंकों ने प्रमुख कार्य किया। स्वाभाविक रूप से औद्योगिक परिवर्तन के साथ-साथ बैंको के महत्व को स्वीकारा गया। इसी समय यह भी अनुभव किया गया कि तरह तरह के लेन दने में भी बैंक प्रमुख भूमिका अदा कर सकते थे। उद्योगों में लगने वाली पूंजी, रेलवे, देश और विदेश में व्यापार इतनी तेजी से बढ़ा कि बैंकों को लेन देन का महत्वपूर्ण कार्य भी करना पड़ा। बैंकों की साख जरूरी साबित हुई और धीरे-धीरे लेन-देन चेक के माध्यम से होने लगा। मुद्रा के प्रचलन के स्थान पर भुगतान जब चेक से होने लगा तो उद्योग और व्यापार को सुविधा हुई। बैंक आफ इग्लैंड ने इस दृष्टि से निर्णायक कार्य किया। समय के साथ-साथ आधुनिक बैंकिग व्यवस्था का जन्म हुआ।

विश्वव्यापी स्तर पर बाजारों की खोज

औद्योगिक क्रान्ति के कारण ब्रिटेन में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन इतना अधिक होने लगा कि केवल स्वदेश में अथवा यूरोप में इसकी खपत न हो सकी। इन वस्तुओं को एशिया, अफ्रीका तथा विश्व के अन्य देशें में बेचने की भावना बलवती हुई। ब्रिटेन के उद्योगपति और व्यापारी विश्व के अनेकानेक देशों से कच्चा माल मंगाने लगे तथा ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं को इन देशों को बेचने लगे। इस व्यापार से उन्हें दोहरा लाभ मिला। एक ओर ब्रिटिश व्यापारियों ने कपास, पटसन आदि कच्चा माल कम से कम कीमत में खरीदा और दूसरे इन्ही को उत्पादित वस्तुओं में बदल कर एशिया और अफ्रीका के बाजारों में बेचा। धीरे-धीरे आर्थिक उद्देश्यों ने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को जन्म दिया और ब्रिटेन ने भारत सहित अनेक देशों पर साम्राज्यवादी शासन स्थापित कर लिया। औपनिवेशिक शासन स्थापित करने का एकमात्र उद्देश्य अधिक धन कमाना था। जब ब्रिटेन का उपनिवेशों में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो गया तो फिर ब्रिटिश

वस्तुओं की बिक्री के लिये कोई बन्धन नहीं रह गये। औद्योगिक क्रान्ति ने साम्राज्यवादी विस्तार को जन्म दिया और साम्राज्यवादी विस्तार से औद्योगिक क्रान्ति को लगातार पनपने का अवसर मिला।

श्रमिक समस्याएं:

औद्योगिक क्रान्ति ने अनेक श्रमिक समस्यांओं को जन्म लिया। आरंभिक दौर में अधिकतर मजदूर गावों से शहरों की ओर आये। लम्बे समय तक ग्रामीण लोगों का शहर की ओर पलायन चलता रहा। यह किसी योजना के हिसाब से नहीं हुआ। परिणामतः अनेक औद्योगिक ईकाइयों के आसपास श्रमिक गन्दे और छोटे-छोटे कमरों या झोपड़ियों में रहने लगे। इन श्रमिक बस्तियों से अनेक समस्याओं का जन्म हुआ।

उद्योगों में बड़ी संख्या में बच्चों और महिलाओं को इस कारण नौकरियां दी गयी क्योंकि इन्हें कम वेतन देकर इनसे अधिक काम लिया जा सकता था तथा इनको नियंत्रण में रखना आसान भी था। लेकिन यह श्रमिकों के शोषण का सबसे आसान तरीका था जिसके विरूद्ध आवाज उठी। लम्बे समय तक इनसे काम लेने से, काम के घंटे पहले से निर्धारित न होने से तथा आवास की समस्याओं के कारण श्रमिक बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य, पर बुरा असर पड़ा। बाद के दशकों में निम्नतम आयु निश्चित कर दी गयी, उन्हें आराम दिलाया गया तथा बच्चों और महिलाओं की स्थिति सुधारने की दृष्टि से अनेक श्रम कानून बनाए गये।

औधोगिक क्रान्ति के आरंभिक दशकों में श्रमिक असंगठित थे, अपने अधिकारों से परिचित न थे और इसी से उनका शोषण लगातार किया गया। मिल मालिक जब चाहते थे उन्हें नौकरी पर रखते थे और जब चाहे नौकरी से हटा देते थे। नौकरी के स्थायी न होने से श्रमिकों की स्थिति और भी कमजोर हो गयी, बीच-बीच में अनेक मजदूर बेरोजगार होने लगे। अनेक बार गांवों से अधिक संख्या में लोग शहर आ जाते थे और ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर मिल मालिक किसी भी मजदूर को हटा देता था। बाद के वर्षों में श्रमिक संगठन हो गये और नियम भी बने। सरकार ने श्रमिकों के पक्ष में हस्तक्षेप किया।

औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने के पश्चात अनेक वर्षों तक श्रमिकों का शोषण होता रहा। मिल मालिक भारी मुनाफा कमाते रहे, और श्रमिकों के हितों की उपेक्षा करते रहे। अनेक दशकों तक यही स्थिति चलती रही। उन्नीसवीं सदी के मध्य में ब्रिटेन में चार्टिस्ट आन्दोलन हुआ जिसने श्रमिकों को संगठित किया। उन्नीसवीं सदी के मध्य में समाजवाद का उदय होने से मजदूरों में नयी जागृति आयी। उनको संगठित करने के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये। इसके फलस्वरूप मजदूरों की स्थिति सुधरी।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों से मजदूरों की स्थिति सुधारने में सरकार ने हस्तक्षेप किया। समय-समय पर ब्रिटिश संसद ने श्रमिक-अधिनियम बनाकर सबसे पहले

बच्चों और महिलाओं को संरक्षण प्रदान किया, उनके काम के घंटे निश्चित किये गये, सप्ताह में अवकाश दिये जाने की व्यवस्था की गयी और उनको नौकरी पर रखने के नियम भी बने। समय-समय पर स्वीकृत इन श्रमिक अधिनियमों से धीरे-धीरे सभी श्रमिकों की स्थिति सुधरी।

13.6 महत्वः

ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रान्ति ने जिस प्रकार के परिवर्तनों को जन्म दिया वह एक व्यापक प्रक्रिया थी और कुछ दशकों के पश्चात भाप की शक्ति के प्रयोग और उद्योगों में हुए मशीनीकरण से समूचे यूरोप में और फिर विश्व के अनेक देशों में इसी प्रकार के औद्योगिक परिवर्तनों का दौर आने वाले अनेक दशकों तक चलता रहा। ब्रिटेन ने औद्योगीकरण को शुरू करके क्रांति के मार्ग पर कदम बढ़ाया।

ब्रिटेन में हुए इन औद्योगिक परिवर्तनों से सामाजिक सम्बन्धों पर गहरा असर पड़ा। ब्रिटेन में अठारहवीं शताब्दी तक सामन्तवादी वर्गो का जो दबदबा बना हुआ था वह उन्नीसवीं सदी से घटने लगा। औद्योगिक क्रान्ति ने मध्य वर्ग का प्रभुत्व बढ़ाया। व्यापार और उद्योग से जुड़े मध्यम वर्ग ने राजनीति और समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से कुछ श्रमिक वर्ग भी अपना प्रभाव ब्रिटेन में दिखाने लगे। समाज और राजनीति में श्रमिकों का प्रभाव बाद के दशकों में यहां तक बढ़ा कि श्रमिकों का अलग से राजनीतिक दल गठित हो गया। 1832 और 1867 के संसदीय सुधार अधिनियमों से मध्य वर्ग तथा कुशल श्रमिक वर्ग का ब्रिटिश संसद में प्रभाव दिखायी दिया।

औद्योगिक क्रान्ति से नये विचार पनपे। उदारवाद और उपयोगितावाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन औद्योगिक क्रान्ति की देन थी। बैन्थम, जौन स्टुअर्ट मिल, एडम स्मिथ और माल्थस आदि लेखकों के विचारों ने एक नई दार्शनिक विचारधारा को जन्म दिया। उपयोगितावादी विचारकों ने अधिक से अधिक लोगों की अधिक से अधिक भलाई का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इन्ही विचारकों ने जनहित में नये कानूनों की वकालत की। इसी से उपेक्षित वर्गों के लाभ के लिये उन्नीसवीं सदी के मध्य से अनेक कानून बनाए गये। इसी समय यह सवाल भी उठाया गया कि क्या राज्य को हस्तक्षेप करने की छूट दे दी जाये। इसका उतर ब्रिटिश दार्शनिकों ने यह दिया कि केवल शिक्षा, स्वास्थ्य, जन कल्याण आदि जनसाधारण के लाभ के लिये सरकार अधिक से अधिक सक्रिय हो। लेकिन व्यापार के मामले में राज्य के हस्तक्षेप का इन्होंने विरोध किया। व्यक्ति के महत्व पर लगातार जोर भी दिया गया।

13.7 औद्योगिक क्रान्ति का यूरोप में मन्द गति से प्रसार

फ्रांस की क्रान्ति के अन्त हो जाने के पश्चात जब यूरोप में शान्ति और राजनीतिक स्थिरता स्थापित हुई तथा कुछ देशों में औद्योगिक क्रान्ति का प्रसार हुआ।

यूरोप में सबसे पहले बेल्जियम में औद्योगिक परिवर्तन हुए। ब्रिटिश पूंजीपतियों के सहयोग से 1830 से बेल्जियम में वाष्प की मदद से इंजन चलने लगे और मशीनीकरण तेज हुआ। 1870 तक यह छोटे सा देश औद्योगिक विकास का उदाहरण बन गया था।

बेल्जियम के पश्चात फ्रांस में धीमी गति से यदि औद्योगिक क्रान्ति आगे बढ़ी तो इसका पहला कारण था यहां की राजनीतिक अस्थिरता जिसके फलस्वरूप उचित वातावरण न बन सका। दूसरा कारण था यहां के कृषकों का प्रभाव। फ्रांस के किसान पर्याप्त शक्तिशाली थे और उन्होंने कृषि को प्रधानता देने की नीति पर विश्वास बनाए रखा। 1834 से 1848 के बीच लुई फिलिप के शासन के दौरान औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत धातु और खदान उद्योगों में दिखायी दी। फ्रांस का मध्य वर्ग इसी अवधि में प्रभावी होता दिखायी दिया और इसने रेलवे के विकास तथा मशीनकरण में रूचि ली। 1850 से 1870 के बीच यह प्रक्रिया और भी तेज हुई। 1870 के आते-आते फ्रांस का उद्योग 1851 की तुलना में पांच गुनी अश्व शक्ति का प्रयोग करने लगा। फ्रांस में कोयले और लोहे की खपत भी इसी अवधि में तीन गुना हो गयी। फ्रांस के विदेश व्यापार में इस तक तेजी से विकास हुआ।

जर्मनी में 1870 तक औद्योगिक परिवर्तन की गति फ्रांस से भी मन्द रही। इसका एक कारण यह था कि इस अवधि तक यहां राजनीतिक एकता का अभाव था। 38 छोटे-बड़े राज्य जर्मनी में थे। ये जर्मन राज्य औद्योगिक विकास की कोई समान नीति ने अपना सके। राजनीतिक समस्या को ध्यान में रखते हुए जर्मन राज्यों ने एक आर्थिक संघ बना लिया। यहीं से औद्यौगिक विकास की नींव पड़ी। रेलवे तथा खादनों के विकास के उपाय शुरू किये गये। जर्मन एकीकरण 1870 में जब पूरा हो गया तो 1870 के पश्चात आर्थिक प्रगति हुई और नवोदित जर्मन राष्ट्र ने तेजी से औद्योगिक परिवर्तन की ओर कदम बढ़ाये।

इटली और आस्ट्रिया में जर्मनी के बाद औद्योगिक विकास हुआ। बाद के वर्षों में भी इन दोनों में औद्योगिक प्रगति प्रभावशाली नहीं रही। रूस में तो उन्नीसवीं सदी के अन्त तक भी मशीनीकरण ने गति नही पकड़ी। पूर्वीय यूरोप औद्योगिक परिवर्तन की दौड़ में उन्नीसवीं सदी में पीछे ही रहा।

अमेरिका में उन्नीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में औद्योगिक विकास की धीरे-धीरे शुरूआत हुई। लगभग 1870 तक अमेरिका के उतरी भाग में पर्याप्त औद्योगिक विकास हो चुका था। इसके बाद के वर्षों में अमेरिका में औद्योगिक क्रान्ति की तेजी से प्रगति हुई और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अमेरिकी उद्योगों ने चमत्कारिक तरक्की करके यूरोपीय देशों में भी धाक जमा ली।

13.8 सारांशः

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्रिटेन में प्रारम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति धीरे-धीरे यूरोप, अमेरिका और विश्व के अनेक देशों में फैली। ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति का जिस ढंग से आरम्भ हुआ और जैसा इसका विकास हुआ तथा इसके परिणाम जिस प्रकार ब्रिटेन में देखे गये उनका महत्व है इसका विश्वव्यापी प्रभाव। औधोगिक उत्पादन को दिशा देने का काम ब्रिटेन में हुआ। औद्योगिक क्रान्ति की सफलतापूर्वक आरम्भ ब्रिटेन में हुआ। इसी कारण देश में हुए सफल प्रयोग का विशेष महत्व है। अनेक दशकों तक ब्रिटेन के उद्योग उत्पादन के प्रतीक बने रहे और विश्व के राष्ट्र इनका अनुकरण करते रहे

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्नः

(i) औद्योगिक क्रांति के कारणों की व्याख्या कीजिये।

(ii) औद्योगिक क्रांति के आरम्भिक दौर पर प्रकाश डालिये।

(iii) औद्योगिक क्रांति के दूसरे दौर की विशेषताओं का विवरण दीजिये।

(iv) औद्योगिक क्रांति के क्या परिणाम निकले।

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थः

1. केटलबी, सी.डी.एम - आधुनिक काल का इतिहास

2. सी.डी. हेजन - मॉडन यूरोप

3. बार्न्स- द हिस्ट्री आफ वेस्टर्न सिविलिजाइजेशन

MAHY-102

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

एम.ए.पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड - 2

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 14	
उद्योगीकरण के बाद	3-18
इकाई 15	
फ्रांस की क्रान्ति-राज्य का स्वरूप एवं बुद्धिजीवी वर्ग और क्रांति	19-33
इकाई 16	
फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव	34-53
इकाई 17	
नेपोलियन का युग	54-73

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी. एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार,
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता,
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता,
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. कमलेश शर्मा,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर,
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा,
इतिहास विभाग, काशी हिन्दु
विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ.प्र.)

डा. बृजकिशोर शर्मा,
विभागाध्यक्ष , इतिहास विभाग, कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. याकूब अली खान,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. रत्नेश्वर मिश्र,
इतिहास विभाग, एल.एन.एम.
विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

डा. याकूब अली खान,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. एस.के. मनोत
इतिहास विभाग, राजकीय डूंगर
महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

डा. मकसूद अहमदखान,
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

डा. आर.वी. व्यास, कुलपति
डा. श्रीमती कमलेश शर्मा, विभागाध्यक्ष
डा. पी.के. शर्मा, निदेशक, पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण

पाठ्य सामग्री उत्पादन विभाग

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी

सर्वाधिकार सुरक्षित
इस सामग्री के किसी भी अंश की कोटा विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में "मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई-14
उद्योगीकरण के बाद

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 औद्योगिक पूँजीवाद

14.3 कारखाना-पद्धति

14.4 आर्थिक असन्तुलन

14.5 नगरों का विकास

14.6 जनसंख्या में वृद्धि

14.7 रहन-सहन के स्तर में सुधार

14.8 आर्थिक साम्राज्यवाद

14.9 मजदूरों के लिए राजनीतिक अधिकार

14.10 उद्योगीकरण के बाद वैचारिक प्रतिक्रियाएं

- 14.10.1 अहस्तक्षेप की नीति
- 14.10.2 सरकारी नियमन तथा सामाजिक विधान
- 14.10.3 यूटोपियाई समाजवाद
- 14.10.4 कार्ल मार्क्स

14.11 भौतिकवाद का विकास

- 14.11.1 प्रकृति विज्ञान का विकास
- 14.11.2 साहित्य और कला पर प्रभाव

14.12 सारांश

14.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.14 प्रासंगिक पठनीय ग्रंथ

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य यह जानना होगा कि उद्योगीकरण के बाद

- किस प्रकार औद्योगिक पूंजीवाद का विकास हुआ जिसमें मालिक और कर्मचारियों के सम्बन्ध क्रमशः कम होते गए,

- कारखाना पद्धति का विकास होने पर विनिर्माण किस प्रकार दुरूह प्रक्रिया बन गया और मालिक से प्रबंधक अधिक महत्वपूर्ण होने लगे,

- कैसे सारी दुनिया में एक आर्थिक असन्तुलन पैदा हुआ और जब-तब आर्थिक मन्दी और तेजी के दौर आने लग

- किस प्रकार नगरों का विकास हुआ तथा नगर-योजनाओं की आवश्यकता पड़ी,

- जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप किस प्रकार नई समस्याएं उत्पन्न हुई,

- लोगों के रहन-सहन में पहले की तुलना में किस तरह के परिवर्तन आए,

- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक प्रगति के कारण कैसे साम्राज्यवाद का विस्तार हुआ,

- श्रमिकों की स्थिति में किस प्रकार सुधार हुआ और कैसे संगठित होकर वे अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने लगे,

- उद्योगीकरण से उत्पन्न पूंजीवाद के प्रति बुद्धिवादियों ने, विशेषकर समाजवादियों ने क्या रूख अपनाया, और

- मानव जीवन को अधिक खुशहाल बनाने में विज्ञान, साहित्य, कला आदि प्रत्येक क्षेत्र में भौतिकवाद के आविर्भाव से किस तरह नए कार्य किए जाने लगे।

14.1 प्रस्तावना

उद्योगीकरण औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम था। यह हम जानते हैं कि औद्योगिक क्रान्ति क्या थी और इसमें क्या हुआ। हमें ज्ञात है कि इसकी दो प्रावस्थाएँ थीं- पहली 1870 से पूर्व की और दूसरी उसके बाद की।

लगभग 1750 से 1870 के बीच हुई औद्योगिक क्रान्ति ने विश्व की काया पलट कर दी। भौतिक प्रगति की गति अत्यधिक तीव्र हो गई। शक्ति चालित मशीनों के आविर्भाव से शारीरिक श्रम गौण पड़ने लगा। कारखाना पद्धति ने घरेलू उत्पादन पद्धति को महत्वहीन सा कर दिया। कारखानों में विनिर्माण में वाष्पशक्ति, लोहा, कोयला और इस्पात का प्रचुर उपयोग होने लगा। परिवहन के क्षेत्र में मैकेडमाइज्ड सड़कों, स्वेज नहर सहित कितनी ही छोटी-बड़ी नहरों, रेलगाड़ियों, मोटरगाड़ियों तथा विमानों ने दूरियाँ कम कर दीं। संचार के क्षेत्र में क्रान्ति हुई। तार, बेतार, दूरभाष, रेड़ियो टेलीविजन तथा छापेखाने के आविष्कारों ने लोगों को एक दूसरे के निकट ला दिया। 1870 के बाद इन परिवर्तनों की गति और तेज हुई। मशीनें पहले की तुलना में जटिलतर होती गईं। उन्हें चलाने के लिए वाष्प की जगह विद्युत, तेल तथा परमाणु-ऊर्जा का भी उपयोग होने लगा। मशीनें स्वचालित भी होने लगीं। श्रमिकों तथा शिल्पियों की भूमिका घटती गई। व्यवसाय तथा कारखानों का संचालन मालिकों द्वारा कम, विशेषज्ञ-प्रबन्धकों द्वारा अधिक होने लगा। मशीनीकरण ने कृषि

को भी प्रभावित किया जो अब व्यवसाय बन गई। सोलहवीं शताब्दी में जो वाणिज्य क्रान्ति हुई थी वह औद्योगिक क्रांति द्वारा लाए गए इन परिवर्तनों से और विस्तृत हुई। इस सबका आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों पर क्रांतिकारी और व्यापक प्रभाव पड़ा। उद्योगीकरण के बाद एक बिल्कुल ही नई दुनिया का सृजन हुआ। इस इकाई में हम इस नई दुनिया की विशेषताओं की विवेचना करेंगें। सर्वप्रथम हम देखेंगे कि आर्थिक जीवन और संगठन अब कैसा बना।

14.2 औद्योगिक पूँजीवाद

उद्योगीकरण के साथ पूंजीवाद बढ़ा। इसकी कतिपय स्पष्ट विशेषताएं थीं। इसके अन्तर्गत उद्यमशील व्यवसायियों को पूंजी बढ़ाने के अनेक नये अवसर मिले। वस्तुतः पूंजी का इस तरह का विस्तार सोलहवीं शताब्दी की वाणिज्य क्रांति से ही होने लग गया था। अब बहुत से व्यवसासियों ने अपनी समस्त जमा पूंजी लगाकर मशीनें, कच्चा माल तथा श्रम खरीदना शुरू किया। उनमें से अनेक ने तो ऐसी खरीदारी के लिए बैंकों से ऋण भी लिये, ताकि वें अपना उद्योग बिठा सकें। कालान्तर में इन उद्योगों से न केवल उनका धन बढ़ा, बल्कि उनके प्रभाव में भी बहुत वृद्धि हुई। वे "उद्योग के मुखिया" कहलाने लगे। संयुक्त राज्य अमेरीका में इस्पात-उद्योग के ऐंड्रयू कार्नेगी और तेल-उद्योग के जॉन डी रॉकफेलर इसी प्रकार के उद्योग-मुखिया थे। ये उद्योग मुखिया सामान्यतः न केवल अपने कारखानों के स्वयं मालिक होते थे, अपितु उनका सारा प्रबंध भी स्वयं ही करते थे। आज भी ऐसे उद्योगों के ये मुखिया निरन्तर अपने प्रभाव में विस्तार कर पाने में समर्थ हुए और वे अपने अर्जित लाभ को नित नए उद्योगों में लगाकर उद्योगीकरण की प्रवृत्ति को और गति देने में सफल थे। वे अत्यन्त लगन और निष्ठा से अच्छे से अच्छा माल बनाने की चेष्टा करते थे ताकि बाजार पर उनकी पकड़ बनी रहे तथा उनकी ख्याति बढ़ती रहे। वे सतर्कतापूर्वक नए बाजारों की तलाश भी करते रहते थे जहाँ उनके उद्योगों में तैयार माल सरालता से और अच्छे दामों पर बिक सकें। उन्हें अपने प्रतिद्विन्द्वियों से भी सावधान रहना होता था, क्योंकि वे तिकड़म से उन्हें दिवालिया बना दे सकते थे। यही कारण है कि अपने उद्योग का साार नियंत्रण वे अपने हाथों में रखते थे। इस अर्थ में वे उन व्यवसायियों से भिन्न थे जो मूलतः मध्ययुगीन श्रेणी (गिल्ड) पद्धति के पटु कारीगर थे तथा अपने उद्योगों में कार्यरत अन्य कारीगरों से मित्र-भाव रखते थे। इस पूरी प्रक्रिया को ही "औद्योगिक पूंजीवाद" कहा जाता है। स्पष्टतः इस व्यवस्था के अन्तर्गत मालिक और कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्धों में क्रमशः कमी होती गई।

"औद्योगिक पूंजीवाद" के विकास से एक अन्य बात यह हुई कि एक ओर बड़े छोटे व्यवसायियों के बीच एवं दूसरी ओर शारीरिक श्रम करने वाले तथा सफेदपोश कर्मचारियों के बीच भी वर्ग-विभेद बढ़ने लगा। वैसे समान स्वार्थ उपस्थित होने पर उनमें विभेद समाप्त भी हो जाते थे। उदाहरण के लिए आर्थिक एकाधिकार से मिलने वाले लाभ के मामले में व्यवसायियों में अन्तर होता था, किन्तु सरकार द्वारा कर की दर ऊँची किए जाने पर दोनों समान भाव से विरोध करते थे। उसी तरह मन्दी

अथवा बेकारी जैसी समस्याओं के सन्दर्भ में सभी प्रकार के श्रमिक एक होते थे, अन्यथा सफेदपोश श्रमिक मेहनतकश की अपेक्षा अपने को ऊँचा समझते थे।

14.3 कारखाना-पद्धति

उद्योगीकरण के विस्तार के साथ ही कारखाना-पद्धति का भी विकास हुआ। इस पद्धति के अन्तर्गत मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग कर व्यवसायियों ने बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए अपने कारखाने खड़े किए। इतना ही नहीं उत्पादन और अधिक बढ़े इस उद्देश्य से उन्होंने अपने बहुत से कारखानों को मिलाकर एक समूह अथवा औद्योगिक-संश्लिष्ट बना लिया। अब इनके प्रयोगशाला होते थे जहाँ वैज्ञानिक उत्पादन अधिक से अधिक बढ़ाने के लिए नई और अच्छी विधियों के आविष्कार में संलग्न रहते थे। वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों की आवश्यकता इसलिए भी पड़ी कि विनिर्माण-तकनीक के क्रमशः दुरूह होते जाने से उनमें सतत् सुधार और समंजन का कार्य वे ही कर सकते थे। इसी से उद्योगों और उनमें लगे मशीनों को निरन्तर क्रियाशील रखा जा सकता था। इस तरह जो नई औद्योगिक सभ्यता विकसित हुई उसमें पेशे के रूप में अभियंत्रण का महत्व बहुत हो गया। नित नए आविष्कारों द्वारा प्रौद्योगिकी को समृद्ध बनाने के लिए वैज्ञानिकों के महत्व में भी वृद्धि हुई।

न केवल प्रौद्योगिकी पक्ष, बल्कि वाणिज्य पक्ष भी इसी पद्धति के अन्तर्गत अधिकाधिक वैज्ञानिक होता गया। अब माल की गुणवत्ता, बाजार का रूख तथा ऐसी अन्य बातों के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्र कर उनका विश्लेषण किया जाता था। इस सबका उद्देश्य होता था उत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि करना तथा उत्पादों की ग्राह्यता को भी बढ़ाना। इस तरह औद्योगिक-संश्लिष्टों के बन जाने से उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर होने लगा और परिणामतः उत्पादों का मूल्य कम रखने पर भी बहुत लाभ प्राप्त कर लेना संभव हुआ। उद्योगीकरण से पहले उद्योग वाणिज्य का अनुगामी था, किन्तु अब उद्योग वाणिज्य के लिए अधिकाधिक विक्रेय माल की आपूर्ति करने लगा, जिससे उसके नए आयाम प्रकट होने लगे।

कारखाना-पद्धति से कारखानों के प्रबन्धक अपने स्वामियों से भी महव्वपूर्ण होने लगे। हुआ इस तरह कि समुचित संचालन के लिए औद्योगिक संश्लिष्टों को नियमों के रूप में संगठित किया जाने लगा। इन निगमों ने अपना और विस्तार करने के लिए अपनी पूँजी की प्रतिभूतियाँ (शेयर) बेचनी शुरू कीं। अधिक बड़ी धन राशि पाने के लिए इन्होंने और नई प्रतिभूतियाँ तथा अनुबन्ध पत्र (ब्रॉन्ड) जारी किए। इन्हें खरीदने के लिए एक नए प्रकार के बैंकों की शुरूआत् हुई, जिन्हें निवेश-बैंक (इनवेस्टमेन्ट बैंक) कहते हैं। यूरोप में रॉथ्सचाइल्ड तथा अमेरिका में जे0 पियरपोंट मौर्गन दो प्रसिद्ध निवेश बैंकर हुए। समय बीतने के साथ इन बैंकों ने निगमों का प्रबन्धन अपने हाथों में लेना शुरू किया। अनेक व्यवसायों के संचालन में उद्योगपतियों से भी अधिक बैंकरों का प्रभाव बढ़ गया। इसका स्पष्ट कारण यह था कि प्रतिभूति खरीदने वाले अनेक स्वामियों को उस निगम अथवा कारखाने, जिसकी प्रतिभूतियाँ वे खरीदते थे, के विषय में यह तक पता नहीं होता था कि वे कहाँ अवस्थित हैं।

इस प्रकार स्वामी और प्रबन्धक के बीच दूरी बढ़ती गई और प्रबन्धक ही स्वामी की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता गया।

14.4 आर्थिक असन्तुलन

उद्योगीकरण के बाद प्रायः ही विश्व के समक्ष आर्थिक असन्तुलन की समस्या उपस्थित हो जाया करती है- कभी आर्थिक मन्दी तो कभी आर्थिक तेजी। पहले ऐसा नहीं हुआ करता था, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति और परिवार आत्म निर्भर हुआ करते थे। वे अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ स्वयम् बना लेते थे। उन्हें उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धि अथवा विनिर्मित वस्तुओं की खपत के लिए किसी बाजार की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, क्योंकि वे उत्पादन करते ही थे आवश्यकता के अनुसार। अब स्थिति बदल गई। कारखानों और खेतों में कभी-कभी आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने लगा। इन उत्पादों के लिए ग्राहक अथवा उपभोक्ता मिलना मुश्किल हो गया। परिणामस्वरूप कभी-कभी उत्पादों की कीमत में भारी कमी हो जाती थी। पूरे विश्व की जनसंख्या को ध्यान में रखकर आवश्यकता से अधिक उत्पादन की बात करना असंगत है, क्योंकि कितना भी उत्पादन हो दुनिया में कहीं न कहीं लोग उसके उपभोग से वंचित रह ही जायेंगे। वस्तुतः उत्पादन का वह अंश जिसका बाजार में खपत न किया जा सके अथवा जिसे बेचकर समुचित लाभ नहीं कमाया जा सके उसे ही आवश्यकता से अधिक उत्पादन कहा गया। जो भी हो, इस तथ्य ने आर्थिक असन्तुलन तो उत्पन्न कर ही दिया।

आर्थिक असन्तुलन इस कारण भी उत्पन्न होने लगा कि उद्योगीकरण के बाद दुनिया में आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रों की परस्पर आश्रिता इतनी बढ़ गई है कि एक की घटना का दूसरे पर सीधा प्रभाव पड़ने लगा। एक देश में युद्ध छिड़ने पर अथवा वहाँ के बैंक के दिवालिया होने पर दूसरे देश भी दुष्प्रभावित होते हैं। उद्योगीकरण के बाद के विश्व में समय-समय पर ऐसे आर्थिक असन्तुलन उपस्थित होते ही रहे हैं।

आर्थिक असन्तुलन के सन्दर्भ में राष्ट्रों की जिस परस्पर आश्रिता का उल्लेख किया गया उसका एक रूप यह भी हुआ कि सारा विश्व एक बाजार बन गया। वस्तुतः आर्थिक निर्भरता के युग का सूत्रपात सोलहवीं शताब्दी की वाणिज्य क्रांति के परिणामस्वरूप ही हो चुका था। उद्योगीकरण के कारण वह और व्यापक हुआ। ब्रिटेन का सूती वस्त्र उद्योग अमेरिका से आयातित कपास पर अत्यधिक अवलम्बित था। न केवल कच्चे माल के लिए बल्कि खाद्यान्नों के लिए भी ब्रिटेन और उस जैसे दूसरे उद्योगीकृत यूरोपीय देशों को दुनिया के अन्य देशों पर निर्भर करना पड़ता था, क्योंकि शहरी उद्योगों में बड़े पैमाने पर निरत हो जाने के कारण इन देशों के लोग खेतों से कम उपज लेने में समर्थ हुए। खाद्यान्न के बदले ये देश कारखानों में विनिर्मित माल का निर्यात करने लगे। इस प्रकार एक बाजार में परिवर्तित विश्व में किसी भी देश में कहीं भी औद्योगिक अव्यवस्था होने से उसका दुष्प्रभाव हजारों किलोमीटर दूर स्थित देशों में परिलक्षित होने लगा।

14.5 नगरो का विकास

उद्योगीकरण से आर्थिक दृश्यपटल ही नहीं सामाजिक दृश्यपटल भी बदलने लगा। इससे मानव समाज का जो भौतिक रूपान्तरण हुआ उसका एक मुख्य पहलू था नगरों का विकास। ज्यों-ज्यों उद्योगीकरण बढ़ता गया त्यों-त्यों ही नगर भी बसते चले गए। प्राचीन और मध्यकाल में नगर मंडियों, धर्मस्थानों, किलों तथा राजधानियों को केन्द्र बनाकर उन्हीं के चतुर्दिक, विकसित होते थे, किन्तु अब नगरों की स्थापना के केन्द्र कारखाने होते थे। आरंभ में ये नगर बेतरतीब विकसित हुए और उनमें स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया किन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गए सहकारी गृह निर्माण योजनाओं तथा सरकारी चेष्टाओं के माध्यम से योजनाबद्ध ढंग से नगरों का विकास किया जाने लगा। अधिकांश देशों में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गंदी बस्तियों की जगह व्यवस्थित नगरों के निर्माण होने लगे। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, स्वीडन और नीदरलैंड इस क्षेत्र में अगुवा बने। यह परिवर्तन इसलिए हुआ क्योंकि कारखानों के मालिकों ने देखा कि अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में रहने वालों की अपेक्षा आरामदेह और स्वच्छ परिस्थितियों में रहने वाले मजदूरों तथा कर्मचारियों का काम कहीं अच्छा होता था।

14.6 जनसंख्या में वृद्धि

उद्योगीकरण के बाद सामाजिक क्षेत्र में एक बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन था जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि। 1750 से 1950 के बीच यूरोप मे जनसंख्या की वृद्धि के आँकड़े कुछ इस प्रकार थेः-

वर्ष	1750	1800	1850	1900	1950
जनसंख्या (दस लाख में)	140	180	266	401	540

जनसंख्या की यह वृद्धि इसलिए हुई क्योंकि अब जहाँ एक ओर अधिक अन्न उपजाया जाना तथा उन्नत यातायात के करण अतिरिक्त उपजवाले क्षेत्र से अन्न मंगाकर अधिकाधिक लोगों का भरण-पोषण करना संभव हुआ वहीं दूसरी ओर औषध विज्ञान की उन्नति होने से लोगों के जीने की औसत आयु बढ़ने लगी। जनसंख्या की वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में अधिक हुई। विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्था परइस वृद्धि क गंभीर प्रभाव पड़ा। खाद्यान्न की बढ़ी मांगों को पूरा करने के लिए ब्रिटेन जैसे देश में कृषि के तरीकों में सुधार हुआ तो रूस जैसे देशों में अधिक क्षेत्रों को खेती के योग्य बनाया जाने लगा। जनसंख्या वृद्धि के साथ उसकी गतिशीलता भी बढ़ी क्योंकि सुन्दरतर जीवनस्तर की तलाश मे लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसने लगे। इससे कई देशों को आव्रजकों को रोकने के लिए तो कइयों को उन्हें आकर्षित करने के उपाय करने पड़े। अमेरिका तो एक तरह से आव्रजकों का ही देश है।

14.7 रहन-सहन के स्तर में सुधार

उद्योगीकरण से जो एक बड़ा परिवर्तन संभव हुआ वह है लोगों के रहन-सहन के स्तर में अभूतपूर्व सुधार। अठारहवीं शताब्दी के लोगों ने उन सुविधाओं की स्वप्न में भी कल्पना न की होगी, जो आज सामान्य जन को भी सुलभ हैं। अमेरिका का

आज का एक मजदूर 1800 के धनी कुलीन से भी अच्छे स्तर में रहता है, क्योंकि उसे टेलीफोन, शीतलक, धुलाई मशीन तथा ऐसी ही अनेक उपभोक्ता सुविधाएं उपलब्ध हैं जो पहले किसी के लिए भी नहीं थीं। उद्योगों से धनी बने नए मध्यमवर्ग के लोगों को पहले तो कुलीन वर्ग तिरस्कार की दृष्टि से देखता था, किन्तु उनकी बढ़ती सम्पन्नता और उनके मुकाबले अपनी बढ़ती गरीबी के कारण वे नवधनाढ्य उद्योगपतियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने को बाध्य हुए।

इस सबसे पारिवारिक जीवन में बहुत बदलाव आया। उद्योगीकरण द्वारा सुलभ बनाई सुविधाओं के कारण अब लोग, यहाँ तक कि नारियाँ भी, घर की चार-दीवारी में बन्द नहीं रहे। वे काम के लिए भी और अवकाश का समय बिताने के लिए भी घरों से बाहर निकलने लगे।

मनोरंजन के तरीकों में हुए परिवर्तनों से इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। पहले शतरंज और ताश जैसे घरेलू खेल ही आम थे। पार्टियों, संगीत, नृत्य तथा नाटक आदि का आयोजन मात्र कुछ लागों के लिए ही सुलभ था। उन्नीसवीं शताब्दी से नाटक, सिनेमा, रेड़ियो, टेलीविजन आदि जनसामान्य के लिए सुलभ हो गए। बेसबॉल, फुटबॉल, हॉकी, टेनिस और बास्केटबॉल जैसे खेलों का बड़े पैमाने पर चलन हो गया। मनोरंजन का वाणिज्यीकरण हुआ जिससे एक बुराई भी आई और वह यह कि बहुसंख्य लोग उसमें भाग लेने के बजाय मात्र दर्शक बनकर रह गए।

उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप रहन-सहन के स्तर में एक नया परिवर्तन यह आया कि भोजन, वस्त्र, मकान, मनोरंजन और अन्य कई क्षेत्रों में एक विलक्षण मानकीकरण अथवा एकरूपता का विकास हुआ। डिब्बाबन्द खाद्य पदार्थ, वेष्टित डबलरोटी, सूट, शर्ट, स्वीकृत नक्शों के आधार पर बने मकान, मकानों की सजावट आदि सारी दुनिया में लगभग एकरूप होने लग गए। यह सब सुन्दरतर यातायात एवं संचार व्यवस्था की स्थापना से संभव हुआ।

14.8 आर्थिक साम्राज्यवाद

उद्योगीकरण के बाद राजनीति का स्वरूप बदल गया। सबसे पहले यदि राष्ट्रों के सम्बन्धों में आए बदलाव को देखें तो स्पष्ट होगा कि बदली आर्थिक परिस्थितियों ने आर्थिक साम्राज्यवाद को जन्म दिया। प्राचीन घरेलू उत्पादन पद्धति की तुलना में औद्योगिक उत्पादन के परिणामस्वरूप विनिर्माण की मात्रा बहुत बढ़ गई। इन्हें बेचने के लिए बाजारों की आवश्यकता हुई तथा कारखानों में विनिर्माण की प्रक्रिया निरन्तर बनाए रखने के लिए कच्चे माल की भी आवश्यकता हुई। ये दोनों बातें घरेलू मंडी से पूरी नहीं की जा सकती थीं, अतः नई मंडियों की तलाश शुरू हुई। इसी का परिणाम था कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समुद्र पार दुनिया के अविकसित भागों में यूरोपीय देशों ने अपने "प्रभाव क्षेत्र" स्थापित किए। इसके साथ ही औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना होने लग गई।

यह जानना बड़ा रोचक है कि विभिन्न देशों की सैनिक क्षमता का विकास उसके उद्योगीकरण के अनुपात में ही हुआ। इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी का आधुनिक काल

में यूरोप ही नहीं सारी दुनिया पर अधिक वर्चस्व उनके अधिक उद्योगीकरण के कारण ही संभव हुआ। रूस तथा कई दूसरे यूरोपीय देशों का इस सन्दर्भ में पिछड़ जाना उनके अपेक्षाकृत कम उद्योगीकरण के कारण हुआ। इसी तरह पूर्व की दुनिया में अपने उद्योगीकरण के चलते ही जापान अग्रणी सैनिकवादी देश बना। 1861-65 के अमेरिकी गृह युद्ध में उत्तरी संयुक्त राज्य अमेरिका दक्षिण को इसलिए परास्त कर सका क्योंकि जहाँ उत्तर में विकसित उद्योग थे वहीं दक्षिण अभी उद्योगीकरण की प्रारंभिक स्थिति में ही था।

14.9 मजदूरों के लिए राजनीतिक अधिकार

उद्योगीकरण के बाद सर्वाधिक परिवर्तन विभिन्न प्रकार के श्रमिकों की स्थिति में हुई। लम्बे मानव इतिहास में लोग भारी संख्या में दास, कृषक-दास अथवा बेगारी रहे। प्लेटो और अरस्तु के जमाने से ही इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता रहा था। अब इनकी स्थिति बदली है। श्रमिक स्वतंत्र हुए है तथा श्रम को गौरव का स्थान मिला है। दास प्रथा लगभग समाप्त हो गई। उद्योगीकरण से पहले भी दास प्रथा को समाप्त करने की चेष्टाए की गई, पर बाद में इस दिशा में किए गए प्रयास अधिक सफल हुए। अब श्रमिक अपनी इच्छा से किसी मालिक के लिए किसी प्रकार का काम और स्वयम् अपने द्वारा निर्धारित शर्तों पर करने के लिए स्वतंत्र हैं।

यह सब उद्योगीकरण के बाद मजदूरों में उत्पन्न चेतना से संभव हुआ। पहले-पहले ब्रिटेन में अपनी समस्याओं के समाधान के लिए मजदूरों ने चेष्टाए शुरू की। 1825 में कुछ उदारदलीय नेताओं की मदद से वहां के मजदूरों को अपने संघ बनाने की अनुमति मिली। 1875 में फ्रांस ने मजदूर संघों को कानूनी मान्यता दी। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1881 में शक्तिशाली अमेरिकी मजदूर फेडरेशन की स्थापना हुई। संघों में संगठित हो जाने पर मजदूरों को सामूहिक सौदेबाजी का सामर्थ्य प्राप्त हुआ। ब्रिटेन में मजदूरों का पहला बड़ा आन्दोलन, चार्टिस्ट आन्दोलन, 1848 में असफलता के साथ समाप्त हुआ। वहां के मजदूरों को मतदान का अधिकार 1867 के सुधार अधिनियम से ही मिल पाया। धीरे-धीरे ब्रिटेन में मजदूर-संधों की शक्ति इतनी बढी कि 1870 के बाद उन्होनें अपना एक राजनीतिक दल ही संगठित कर लिया। उद्योगिकरण के प्रभावों से अपेक्षाकृत वंचित कृषि प्रधान देशों में मजदूर-संधों का ऐसा विकास संभव नहीं हो सका।

मजदूर-संधों की बढती सफलता ने व्यवसायी अथवा पूंजीपति को भी अपने हितों की रक्षा के लिए संगठित होने को प्रेरित किया। मजदूर हड़ताल करते तो व्यवसायी तालाबन्दी। इससे दोनों को ही क्षति होती थी, अतः वे परस्पर सौदेबाजी द्वारा अपनी समस्यांए सुलझाने की चेष्टा करते थे। यह भी मजदूरों की उपलब्धि थी। वस्तुतः ज्यों-ज्यों लोकतंत्र शक्तिशाली होता जा रहा है त्यों-त्यों बड़ी संख्या के बल पर संगठित मजदूर अधिकाधिक राजनीतिक तथा दूसरे अधिकार प्राप्त करने में समर्थ होता जा रहा है।

14.10 उद्योगीकरण के बाद वैचारिक प्रतिक्रियाएं

उद्योगीकरण से उपजे पूँजीवाद की हम चर्चा कर चुके है। इस पूँजीवाद की एक बड़ी विशेषता यह थी कि शुरू से ही इसके प्रति बुद्धिवादियों का रूख भिन्न-भिन्न रहा। एक पक्ष सरकारी हस्तक्षेप की आलोचना करता था तो दूसरा सरकार द्वारा नियमन की वकालत। प्रथम पक्ष ऐडम स्मिथ के सिद्धान्त पर आधारित था। इसे अनुदार कहा गया तो दूसरे पक्ष को उदार। एक तीसरा पक्ष भी था जो पूंजीवाद को बिल्कुल समाप्त कर समाजवादी आर्थिक प्रणाली की स्थापना चाहता था। ये लोग आमूल-परिवर्तनवादी (रैडिकल) कहलाए। इन विभिन्न आर्थिक विचार-प्रणालियों का संघर्ष उद्योगीकरण के बाद के युग की विशिष्टता रही है।

14.10.1 अहस्तक्षेप की नीतिः

अहस्तक्षेप की नीति के समर्थक सरकार द्वारा नियमन अथवा नियंत्रण को बुरा मानते थे। उनके अनुसार मांग और आपूर्त्ति के प्राकृतिक नियम चलते रहने से उत्पादों की गुणवत्ता में वृद्धि तथा उनकी कीमतों मे कमी सुनिश्चित है। इससे व्यवसायियों को उद्योगों का विस्तार करने तथा नए उद्योग शुरू करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। ये विचार सर्वप्रथम "फिजियोक्रैट्स" नाम से ज्ञात फ्रांसीसी विचारक फ्रांस्वा क्वेज्ने तथा उसके अनुगामियों ने अभिव्यक्त किए। इसी तरह का विचार लेकर बाद में स्कॉटलैंड वासी ऐडम स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "वेल्थ ऑफ नेशन्स" लिखी। इसका उन्नीसवीं शताब्दी के आर्थिक चिन्तन पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। ऐडम स्मिथ के विचार में सरकार का कार्य सब जगह उपस्थित पुलिसवाले की तरह लोगों की सम्पत्ति की रक्षा करना तथा संविदाओं का अनुपालन कराना भर था। उसका काम व्यक्तियों द्वारा अपने हितों को बढ़ाने की चेष्टा के मार्ग में रोड़े अटकाना बिल्कुल नहीं था। नवोदित पूंजीवादी वर्ग में यह आर्थिक दर्शन अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इसे हम उद्योगीकरण द्वारा प्रस्तुत सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की व्याख्या के लिए राजनीतिक अर्थव्यवस्था के विज्ञान की शुरूआत भी कह सकते हैं

14.10.2 सरकारी नियमन तथा सामाजिक विधानः

उद्योगों के विस्तार के साथ-साथ सरकारी नियमन बढ़ता ही गया। ऐसा होना ही था, क्योंकि मजदूर संगठित होने लगे तथा काम की अच्छी दशा स्थापित करने के लिए आन्दोलन करने लगे। सरकारें हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य हुई। सरकारों को इसलिए भी हस्तक्षेप करना पड़ता था, क्योंकि कारखाने आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने लगे जिससे वस्तुओं की कीमतें गिरने लगीं और मन्दियों के दौर आने लगे। सरकारी हस्तक्षेप का परिणाम हुआ कारखाना कानूनों का निर्माण। उन दिनों मजदूरों की हालत सुधारने के लिए इस तरह के जो कानून बने वे आज के हिसाब से अमानवीय ही थे। उदाहरण के लिए 1802 में ब्रिटेन में बना वह कानून जिसके अनुसार नौ साल से कम आयु वाले बच्चों से एक दिन में बारह घंटे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था। 1842 के बाद ब्रिटिश खानों में स्त्रियों और बच्चों का काम करना प्रतिबंधिक कर दिया गया। 1860 तक अधिकांश ब्रिटिश कारखानों

में मजदूरों के कार्य की सीमा एक दिन में दस घंटे कर दी गई। 1880 के दशक में जर्मनी में चांसलर वॉन बिस्मार्क ने दुर्घटना बीमा, बाल श्रम कानून, अधिकतम घंटों का कानून बनाए। इन सब कानूनों से मजदूरों की स्थिति में सुधार हुआ, किन्तु कुछ लोगों की नजर इन कानूनों के बुरे प्रभावों पर भी पड़ी। अब मजदूरों में आलस्य, नशेबाजी और अनैतिकता बढ़ी, क्योंकि उनके पास इस सबके लिए अतिरिक्त धन भी था और समय भी। अहस्तक्षेप की नीति के समर्थकों ने इन कानूनों को मजदूरों द्वारा इच्छानुसार काम करने के अधिकार का अतिक्रमण भी माना। जो भी हो, मजदूरों के हित में कानून बनते रहे और बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था आदि की स्थिति में मजदूरों की आय सुनिश्चित करने तथा प्रबंधन की ओर से उन्हें सहायता उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई। इन कानूनों को "सामाजिक विधान" कहा जाता है।

सामाजिक विधि-निर्माण केवल मजदूरों तक सीमित नहीं रहा। बड़े व्यवसायियों के विरूद्ध छोटे व्यवसायियों को प्रतियोगिता में बनाए रखने, किसानों के हित में कृषि पैदावार की कीमतों को एक सीमा से नीचे न गिरने देने तथा उपभोक्ताओं को शुद्ध वस्तुएँ उपलब्ध कराने के लिए भी कानून बनाए गए।

सरकारी नियमन घरेलू उद्योगों तक ही सीमित नहीं था। अर्न्राष्ट्रीय व्यापार को नियमित करना भी जरूरी होने लगा। ब्रिटिश औद्योगिक उत्पादों की प्रतियोगिता से अपने उत्पादों को बचाने के लिए अनेक देशों ने उन्नीसवीं शताब्दी में भारी तटकर लगाकर बाहर से आने वाले उत्पादों की कीमतें बढ़ा दीं। स्वयम् ब्रिटेन में बाहरी देशों के कृषि-उत्पादों की प्रतियोगिता से अपने कृषि-उत्पादों को बचाने के लिए अन्न कानून (कॉर्न लॉ) बनाया गया। इससे भूस्वामियों को प्रसन्नता हुई तो उद्योगों में लगे लोगों को नाराजगी। उन्हीं के विरोध के कारण 1846 में इन कानूनों को रद्द करना पड़ा। जो भी हो, उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप संरक्षणात्मक तटकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अनिवार्य अंग बन गया।

सरकारी नियमन तथा सामाजिक विधि-निर्माण के बावजूद उद्योगाकरण के बाद उद्योगपति तथा प्रबंधन से जुड़े लोग तो धनी होते गए, किन्तु बहुसंख्य मजदूर गरीब ही रहे। श्रेण्य अर्थशास्त्रियों के नाम से ज्ञात थॉमस माल्थस और डेविड रिकार्डो ने अपने सिद्धान्तों द्वारा गरीब की स्थिति को अपरिवर्तनीय बताया। माल्थस के अनुसार गरीब की आर्थिक स्थिति में किसी प्रकार के सुधार का प्रयास बेकार था क्योंकि जनसंख्या की प्रवृत्ति जीवन-निर्वाह के लिए उपलब्ध साधनों के अनुपात में बढ़ने की होती है। रिकार्डो भी गरीब की स्थिति में सुधार की संभावना नहीं देखता था। उसके मजदूरी के लौह विधान" के अनुसार यह सामान्य प्रवृत्ति है कि मजदूरी की राशि उतनी ही रखी जाए जितनी मजदूर के जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त हो।

14.10.3 यूटोपिआई समाजवादः

गरीबों की स्थिति में सुधार के लिए कुछ लोगों ने उत्पादन के साधनों पर सरकारी स्वामित्व की मांग की। ऐसे लोगों को समाजवादी कहा गया और उनके द्वारा अनुशंसित व्यवस्था को समाजवाद। समाजवादी भी कई प्रकार के थे। सर्वप्रथम

वे थे जो सर थॉमस मोर की पुस्तक "यूटोपिया" से प्रेरणा ग्रहण कर एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सभी कामगार पारस्परिक सहयोग से अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं का उत्पादन कर सकें। इसमें वे पूंजीपतियों का भी सहयोग ले सकते थे। इसे यूटोपियाई समाजवाद कहा गया। इसके अन्तर्गत फ्रांस के चार्ल्स फरया और साँ सीमोन ने प्रस्ताव रखा कि सरकार सम्पत्ति का प्रबंध संभाले। इस सिलसिले में व्यावहारिक धरातल पर रॉबर्ट ओवन का काम विलक्षण था। उसने स्कॉटलैंड के न्यू लेनार्क नामक नगर में एक आदर्श बस्ती का निर्माण किया। वहाँ कारखानों पर मालिकाना अधिकार तथा कारखाने के मुनाफे में हिस्सा मजदूर और प्रबंधक में बंटे थे। उस नगर में अपराध का नामोनिशान नहीं था। ओवन ने ऐसा ही प्रयोग अमेरिका स्थित इन्डियाना राज्य के न्यू हार्मनी नगर में भी करने की कोशिश की, परन्तु वहाँ उसे सफलता नहीं मिली। फिर भी, ओवन के लैनार्क प्रयोगों को आधुनिक सहकारी संस्थाओं का प्रेरणा-स्रोत कहा जा सकता है। पहली सहकारी संस्था 1844 में इंग्लैण्ड के रॉशडेल नामक नगर में लगभग तीस बुनकरों ने मिलकर की थी। इस युटोपियाई समाजवाद की आलोचना भी की गई। 1848 की फ्रांसीसी क्रांति के नेता लुई ब्ला ने युटोपियाइयों की आलोचना इसलिए की कि वे पूंजीपतियों से सहयोग की बात करते थे।

14.10.4 कार्ल मार्क्सः

1848 में ही दो प्रमुख जर्मन समाजवादियों कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक ऐंजल्स ने "कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो" नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसके द्वारा अन्होंने संसार भर के मजदूरों को संगठित होने और पूंजीवाद को उखाड़ फैंकने की प्रेरणा दी। 1867 में उन्होंने "डास कैपिटाल" नामक पुस्तक की पहली तीन जिल्दें प्रकाशित कीं। इसके द्वारा इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की गई और कहा गया कि मनुष्य के प्रत्येक कार्य उन अवस्थाओं से निर्धारित होते हैं जिनमें रहकर वह अपनी जीविका अर्जन करता है। प्रत्येक युग में इन अवस्थाओं का निर्धारण धनी लोग ही करते हैं। आलोचकों की दृष्टि में मार्क्स ने राष्ट्रीयता और धर्म जैसे शक्तिशाली प्रभावों को अस्वीकार कर तथा आर्थिक प्रभाव को ही सब कुछ मानकर इतिहास को विकृत कर दिया। इस पुस्तक में मानव इतिहास को वर्ग-संघर्षों का इतिहास बताया गया। प्राचीन रोम में प्लैबियनों और पैट्रिशियनों, मध्यकालीन यूरोप में कृषक-दासों और भूस्वामियों तथा आधुनिक काल में पूंजीवादी और मजदूर वर्गों के संघर्ष इसके उदाहरण हैं। पुस्तक में मजदूरों का संगठित होकर क्रान्ति करने के लिए आह्वान किया गया है। आलोचक वर्ग-संघर्ष की इस अवधारणा को भी स्वीकार नहीं करते हैं।

1864 मे मार्क्स ने पूंजीवाद के विरूद्ध दुनिया के मजदूरों को "अन्तराष्ट्राय श्रमिक संघ" में बांधने का प्रयास किया। यह संगठन प्रथम इन्टरनैशनल कहलाया। 1876 में इसके भंग होने पर द्वितीय इन्टरनैशनल और फिर तृतीय इन्टरनैशनल अथवा "कौमिन्टर्न" और "कौमिन्फार्म" बने। लगभग प्रत्येक देश में मार्क्स के विचारों के आधार पर राजनीतिक पार्टिया बनीं। मार्क्स के अनुयायियों में कतिपय नरमदलीय

और दक्षिणपंथी हैं तो दूसरे आमूल-परिवर्तनवादी अथवा वामपंथी। प्रथम चुनावों में जीतकर सरकार पर अधिकार कर समाजवाद लाने में विश्वास करे हैं तो दूसरे हिंसात्मक मार्गों से पूंजीवादी सरकारों को उखाड़ फैंकने में। दक्षिण-पंथी वामपंथियों की आलोचना करते हैं कि वे हिंसा का प्रयोग करते हैं, मौलिक अधिकारों का दमन करते हैं तथा एकदलीय अधिनायकतंत्र की स्थापना करते हैं। जैसा कि भूतपूर्व सोवियत रूस में हुआ। आमूल परिवर्तनवादियों में अराजकतावादी (अनार्किस्ट) और संधाधिपत्यवादी (सिंडिकैलिस्ट) भी थे। फ्रांसीसी प्रूधों अराजकतावाद का जन्मदाता था और उसका मानना था कि मनुष्य स्वभावतः अच्छा है और राज्य अथवा धर्म जैसे सभी प्राधिकार बुरे हैं। संधाधिपत्यवादी भी सरकारों को निरर्थक मानते हैं और निकम्मा पूंजीबाद को समाप्त कर मजदूर संघों के माध्यम से कारखानों के प्रबंधन की कल्पना करते हैं। आमूल-परिवर्तनवादियों का प्रभाव कछ खास नहीं पड़ा।

14.11 भौतिकवाद का विकासः

उद्योगीकरण ने लोगों को भौतिक सुखों से भर दिया। अब सुखों की उपलब्धि के लिए मध्ययुगीन धार्मिक विधियों में स्वभावतः उसका विश्वास घटने लगा। थॉमस हकसले जैसे चिन्तकों ने अज्ञेयवाद (एनोस्टिजिस्म) के दर्शन का प्रणयन किया। इसका अर्थ था भौतिक तथ्यों से परे वस्तुओं के विषय में कोई कुछ नहीं जानता है और ऐसी किसी वस्तु में किसी को विश्वास करने का कोई अधिकार भी नहीं है जो वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जान सकता हैं यह भौतिकवाद की स्थापना थी। फ्रेडरिक डब्लू0 नीत्से का तो कहना था कि "मनुष्य की वास्तविक और गहरी प्रवृत्ति शक्ति के लिए है।" औद्योगिक क्रांति की असाधारण प्रगति के फलस्वरूप लोग यह सोचने लगे कि मानव सर्वप्रतिभासम्पन्न है और वह कुछ भी करने में समर्थ है- समाज को बदलने में भी। जिस तरह प्रकृति के कुछ नियम हैं उसी तरह समाज के भी, जिन्हें जानकर मनोनुकूल समाज बनाया जा सकता है। फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगेस्टी कॉमट ने इसे समाज विज्ञान (सोशियोलॉजी) नाम दिया। इसी तरह कुछ लोग यह सोचने लगे कि मनुष्य अच्छे या बुरे काम दैवी अथवा शैतानी प्रभावों के कारण नहीं, बल्कि अपने परिवेश के कारण करते हैं। इस सोच ने मनोविज्ञान (साइकोलॉजी) को जन्म दिया। विलियम जेम्स अमेरिका में मनोविज्ञान के एक संस्थापक हुए। सिग्मंड फ्रायड एक ऑस्ट्रियाई डॉक्टर थे जिसने मनोविश्लेषण की स्थापना की। इस तरह भौतिकवाद ने लोगों को कई तरह से प्रभावित किया। इसकी अभिव्यकित मात्र समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्रों में ही नहीं अपितु साहित्य और कला साहित जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी हुई।

4.11.1 प्राकृतिक विज्ञान का विकास

उद्योगीकरण के बाद कारखानों, पूंजी और मजदूरों के अच्छे-बुरे पहलुओं के अतिरिक्त पदार्थ जगत् के गुप्त रहस्यों को पता लगाने की भी चेष्टा की गई। अलेक्जेन्डर हमबोल्ट लुई अगासी, सर चार्ल्स लायल आदि प्रमुख आरंभिक वैज्ञानिक थे, परन्तु शायद उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे उल्लेखनीय वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन था। उसने अपनी पुस्तकों "प्राकृतिक चयन द्वारा स्पीशीज का उद्गम" तथा "मानव की

उत्पत्ति'' के माध्यम से विकासवाद तथा ''योग्यतम की अतिजीविता'' के सिद्धान्तों का निरूपण किया। भौतिकशास्त्र के क्षेत्र में भी अनेक खोजें की गई। बेंजामिन फ्रेंकलिन, काउण्ट वोल्टा, सर हम्फ्री डेवी, टॉमस एडीसन तथा माइकल फैरेडे के आविष्कारों के परिणामस्वरूप आज बिजली का प्रकाश हमारे अधिकार में है। सैमुअल एफ0बी0 मोर्स ने टेलीग्राफ तथा अलेक्जेन्डर ग्राहम बेल ने टेलीफोन का आविष्कार किया। डेवी और फैरेडे ने विसंज्ञकों (बेहोश करने की दवाओं) को खोज निकाला, जिनके कारण मनुष्य शरीर का चीर-फाड़ करना सरल हो गया है। जोसफ लिस्टर तथा लुई पाश्चर की खोजों के परिणामस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि बीमारियां अणुजीवों के कारण होती हैं तथा रोगाणुरोधक दवाओं से उनका निवारण किया जा सकता है। धीरे-धीरे चेचक, हैजे तथा अन्य बीमारियों से बचने के टीके खोज लिए गए। विल्हेल्म रून्टजेन ने एक्सरे की खोज की तो मानव-शरीर के भीतरी भागों को देख पाना संम्भव हुआ। मेरी क्यूरी ने रेडियम की खोज की जिसका प्रयोग कैंसर जैसी बीमारी के उपचार में होने लगा। इन खोजों ने मनुष्य को सुख-सुविधाएँ दीं, स्वस्थ बनाया तथा आमतौर से जीवन को अधिक खुशहाल और रोचक बनाया।

4.11.2 साहित्य और कला पर प्रभाव

दुनिया को बदल देने वाले औद्योगिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक परिवर्तनों का साहित्य और कला पर भी प्रभाव पड़ा। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में साहित्य और कला में जो भावनाएं अभिव्यक्त हुईं वह ''स्वच्छन्दतावाद'' (रोमान्टिसिज्म) कहलाया। स्वच्छन्दतावादियों के प्रेरणा के स्रोत अनेक थे। कुछ ने अतीत, विशेषकर मध्यकाल, का चित्रण किया, जैसे :- सर वाल्टर स्कॉट और टेनीसन, जिन्होंने क्रमशः ''आइवान हो'' ''आइडियल्स ऑफ द किंग'' नामक पुस्तकें लिखीं। कुछ ने गरीबों और पददलितों की स्थिति का चित्रण किया तो कुछ ने प्रकृति से प्रेरणा ली। राष्ट्रीयता और देशभक्ति भी इनकी विषय-वस्तु बनी। शेली और वर्ड्सवर्थ प्रकृति के चितेरे थे तो विलियम कौलिन्स देशभक्ति का गायक। रॉबर्ट ब्राउनिंग ने पुनर्जागरण युग के बारे में कविताएं लिखीं और कविता की परम्परागत प्रणाली का विरोध कर अधिक मुक्त छन्दों का प्रयोग किया। जर्मन साहित्यकार जान वुल्फगेंग वॉन गैटे तथा जॉन शीलर ने क्रमशः ''फाउस्ट'' और ''विलियम टैल'' नामक नाट्य-कविताएं लिखीं। स्वच्छंदतावादी उपन्यासकारों में चार्ल्स डिकेन्स ने कठोर परिश्रम करने वालों बच्चों तथा इंग्लैण्ड की जेलों में सड़ने वाले कर्जदारों की दुर्गति का चित्रण किया। प्रथम ख्यात महिला उपन्यासकार जार्ज इलियट तथा फ्रांसीसी विक्टर ह्यूगो ने लोगों के दुःख-दैन्य की तस्वीर खींची। ''तीन तिलंगे'' के लेखक अलेक्जेन्डर ड्यूमा ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। नेपोलियन कालीन युद्धों की प्रतिक्रिया में रूस में अलेक्जेन्डर पुश्किन ने राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यक्ति दी तो तुर्गनेव ने लोगों में फैली गरीबी को। धीरे-धीरे स्वच्छन्दतावाद अमेरीका, स्कैन्डिनेविया, नीदरलैंड्स, पोलैंड और स्पेन आदि देशों में भी फैला। स्वच्छन्दतावादियों की विशेषता थी कि वे महज तथ्यों के पुनर्निरूपण के बजाय कल्पनाशक्ति के सहारे भावनाओं की अभिव्यक्ति में अधिक दिलचस्पी लेते थे। कालान्तर में स्वच्छन्तावाद जारी रहा, किन्तु साहित्य और कला में जीवन की विद्रूपताओं को उकेरनेवाली यथार्थवादी कृतियाँ भी लिखी

जाने लगीं। अनातोले फ्रांस का ''दिरिवोल्ट ऑफ दू एंजिल्स'', टॉमस हार्डी का ''मेयर ऑफ कास्टरब्रिज'', हेनरिक इब्सन का ''ए डौल्सहाउस'' आदि ऐसी ही रचनाएं थीं। बर्नार्ड शॉ, एच0 जी. वेल्स तथा लियोतालस्ताय भी इसी श्रेणी के लेखक थे, यद्यपि इनमें से एच0 जी वेल्स ने विज्ञान के चमत्कारों को तो अन्य ने सामाजिक और मानवीय समस्याओं को अपनी विषय-वस्तु के रूप में ग्रहण किया। जीवन के दुःख-दर्द, देशभक्ति और व्यक्तिगत भावनाओं को प्रकट करने के लिए संगीतकारों, चित्रकारों आदि में भी स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद की प्रवृत्तियों को अपनाया। सिम्फली, ओरेटोरियों और ओपेरा इसी के प्रतिफल थे। लुडविग वॉन वीथोवन सर्वकालीन महान संगीतकार हुआ। रिचर्ड वाग्नीर ने जर्मन राष्ट्रवाद को अपने संगीत से गौरवान्वित किया। चार्ल्स गूनू, जाबीजा, जूसेपी वार्डो, फ्रेडरिक शोपाँ तथा एग्निस जॉन पाड्रेविस्की इस युग के अन्य महान् संगीतकार थे।

चित्रकला के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का सर्वाधिक दर्शन फर्डिनैन्ड डी लाक्रावा के चित्रों में होता है। 1850 के दशक में पाश्चात्य सम्पर्क के लिए जापान के खुल जाने के बाद पश्चिमी कला पर जापानी चित्रशैली का प्रभाव पड़ा और एक नई शैली विकसित हुई जिसे ''प्रभाववाद'' कहते हैं। एड़आर्ड मानी, जेम्स ह्विस्टलर, क्लूड मोनी और पेरी रीन्वार इसी शैली के चित्रकार थे। व्यंग्य चित्र बनाने की भी परम्परा चल पड़ी। जॉन टेनयेल प्रसिद्ध व्यंग्य चित्रकार हुआ।

इस प्रकार साहित्य और कला के क्षेत्र में उद्योगीकरण के बाद के युग का भौतिकवाद विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ा।

14.12 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार उद्योगीकरण ने दुनिया का रूप ही बदल दिया। औद्योगिक पूंजीवाद का विकास हुआ जिसने लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों को बदल दिया। इसके साथ ही कारखाना-पद्धति का भी विकास हुआ जिसने कारोबार के प्रौद्योगिकी तथा वाणिज्य दोनों पक्षों को अधिकाधिक वैज्ञानिक बना दिया। इस कारण प्रबन्धक मालिक से भी महत्वपूर्ण हो गया। आर्थिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक निर्भरता बढ़ी और जब-तब मन्दी और तेजी के दौर आने लगे। नगरीकरण और जनसंख्या की वृद्धि उद्योगीकरण के बाद की विशिष्टताएँ थी। लोगों के रहन-सहन के स्तर में अभूतपूर्व सुधार हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद का अभ्युदय और विस्तार हुआ तो राष्ट्रीय स्तर पर मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ाइयाँ लड़ी जाने लगीं। औद्योगिक पूंजीवाद ने अहस्तक्षेप से लेकर तरह-तरह के समाजवाद से सम्बन्धित विचारधाराओं को जन्म दिया तथा सामाजिक विधान बनाए जाने लगे। एक बहुत महत्वपूर्ण बात इस युग में यह हुई कि मध्ययुगीन अन्धविश्वासों की जगह विज्ञान, साहित्य तथा कला आदि प्रत्येक क्षेत्र में भौतिकवाद का विकास हुआ।

4.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. औद्योगिक पूंजीवाद क्या है ? इसकी विशेषताएं बताइये।

2. कारखाना पद्धति से आप क्या समझते हैं? किस तरह इस पद्धति में प्रबंधक स्वामी से अधिक महत्वपूर्ण होने लगे ?

3. उद्योगीकरण के बाद किन कारणों से प्रायः मन्दी और तेजी जैसी आर्थिक असन्तुलन की घटनाएं घटने लगीं ?

4. उद्योगीकरण के बाद नगरों के विकास का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

5. उद्योगीकरण के बाद जनसंख्या की वृद्धि का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

6. उद्योगीकरण के बाद लोगों के जीवन-स्तर में आए परिवर्तन की विवेचना कीजिए।

7. उद्योगीकरण और आर्थिक साम्राज्यवाद का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

8. उद्योगीकृत प्रदेशों में मजदूर-संघों का विकास रेखांकित कीजिए।

9. औद्योगिक पूंजीवाद के प्रति विभिन्न बुद्धिवादियों का क्या-क्या रूख था ?

10. आर्थिक क्रियाकलापों में अहस्तक्षेप की नीति से आप क्या समझते हैं ?

11. आर्थिक क्रियाकलापों में सरकारी नियमन तथा सामाजिक विधानों की आवश्यकता क्यों पड़ी ? ये गरीबों की स्थिति बदलने में क्यों असफल रहे ?

12. यूटोपिआई समाजवाद की विवेचना कीजिए

13. कार्ल मार्क्स और उसके अनुयायी आमूल परिवर्तनवादियों के विचारों का महत्व स्पष्ट कीजिए।

14. समाजशास्त्र और मनोविज्ञान किस प्रकार भौतिकवाद के विकास का परिणाम थे ?

15. उद्योगीकरण के बाद साहित्य और कला के क्षेत्र में हुए परिवर्तन को स्पष्ट कीजिए।

14.14 प्रासंगिक पठनीय ग्रन्थ

बार्न्स, *द हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न सिविलिजाइजेशन, II*

कार्ल्टन जे0 हेज, *ए जेनेरेशन ऑफ मैटेरियलिज्म 1871-1914*

डी0 एस0 मैक्कॉल, *नाइन्टीन्थ सेन्चुरी आर्ट*

ई0 जे0 हॉब्सबान, *इन्डस्ट्री ऐन्ड एम्पायर*

एफ0 एल0 मुसबॉम, *हिस्ट्री ऑफ द इकोनॉमिक इन्स्टिट्यूशन्स ऑफ मॉडर्न यूरोप*

फ्रीडेल, *कल्चरल हिस्ट्री ऑफ द मॉडर्न एज, III*

जी ब्रान्डेस, *मेन करेन्ट्स इन नाइन्टीन्थ सेन्चुरी लिटरेचर*

जी0डी0एच0कोल, *ए हिस्ट्री ऑफ सोशलिस्ट थॉट, II और III*

एच0 हीटन, इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ यूरोप

एच0 स्टूअर्ट ह्यूज, *कॉन्शसनेस ऐन्ड सोसाइटीः द ओरियेन्टेशन ऑफ यूरोपियन सोशल थॉट 1890-1930*

एम0 डी0 बिडिस, *द एज ऑफ द मासेजः आइडियाज ऐन्ड सोसाइटी इन यूरोप सिन्स 1870*

न्यू कैम्ब्रिज मॉर्डन हिस्ट्री

पीटर हॉल, *द वर्ल्ड सिटीज*

इकाई-15
फ्रांस की क्रान्ति-राज्य का स्वरूप एवं बुद्धिजीवी वर्ग और क्रान्ति

इकाई संरचना

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 प्रचलित संरचनाऐं

15.3 राजनीतिक संरचना

15.4 सामाजिक संरचना

15.5 धार्मिक संरचना

15.6 आर्थिक संरचना

15.7 बुद्धिजीवी वर्ग

15.7.1 मोन्टिस्क्यू

15.7.2 वाल्टेयर

15.7.3 जॉन जैक रूसो

15.7.4 अन्य विचारक

15.8 राज्य का बदलता हुआ स्वरूप

15.9 सारांश

15.10 अभ्यास कार्य

15.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री

15.0 उद्देश्यः

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको जानकारी होगी कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति के पूर्व फ्रांस में राज्य, समाज, धर्म एवं आर्थिक स्वरूप किस तरह का था ? इसके अलावा आपको जानकारी मिलेगी की इन स्वरूपों से किस तरह जनता ने अपना असंतोष प्रकट किया। इस असंतोष को भड़काने एवं क्रान्ति को सफलता प्रदान करने में वहाँ के अनेक महान दार्शनिकों एवं बुद्धिजीवियों ने अपना महान योगदान दिया जिनके अभाव में इस क्रान्ति का होना असंभव था, उनके इस योगदान के

बारे में जानकारी प्रदान करना भी हमारा उद्देश्य है। इसके साथ ही क्रान्ति के बाद राज्य, समाज एवं धर्म के बदलते हुये स्वरूप की जानकारी भी देना हमारा उद्देश्य है।

15.1 प्रस्तावनाः

क्रान्ति प्रगति की जननी होती है। क्रान्ति के कारण ही मानव समाज में परिवर्तन होते रहते हैं। मनुष्य उसी अवस्था में परिवर्तन (क्रान्ति) चाहता है। जब वह अपनी पतित अवस्था से खीझ कर उससे मुक्त होने की कोशिश करता है। अमेरिका वासियों ने दासता से बंधन मुक्त होने के लिये ही विद्रोह कर दिया और परिणामतः वे 1776 ई. स्वतंत्र हो गये। उनकी सफलता से प्रेरित होकर फ्रांसिसियों ने अपनी पतित अवस्था से मुक्त होने के लिए शासक वर्ग के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। जिसके कारण उन्होंने न केवल पुरातन व्यवस्था को ही समाप्त किया बल्कि विश्व के अन्य देशों में क्रान्ति की लहर को फैलायां 1789 ई. में उन्होंने निकम्मे शासन के जुऐं को उतार फैंका। जो विश्व इतिहास में "फ्रांस की राज्य क्रान्ति" के नाम से प्रसिद्ध है।

क्रान्ति का वातावरण जब बनता है तो उसे सफल बनाने में उस देश एवं समाज की सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना के साथ धार्मिक एवं आर्थिक संरचना भी क्रान्ति की सफलता को प्रभावित करती है। क्योंकि हम यह जानते हैं कि इन्हीं संरचनाओं की पृष्ठभूमि में क्रान्ति का जन्म होता है एवं इसी पृष्ठभूमि में जनसाधारण (अधिकारहीन) अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागृत होता है।

15.2 प्रचलित संरचनाऐंः

फ्रांस की क्रान्ति को समझने के लिए उन परिस्थितियों एवं संस्थाओं का परीक्षण करना आवश्यक है जिन्होंने उसको जन्म दिया। तभी हमारा दृष्टिकोण ठीक हो सकता है। और तभी हम चीजों का सही मूल्यांकन एवं विश्लेषण कर सकते हैं। फ्रांस के जीवन में क्रान्ति ने एक आमूल चूल परिवर्तन किया यानि शताब्दियों पुरानी सामन्ती व्यवस्था को हटाकर आधुनिक प्रजातंत्रीय व्यवस्था को जन्म दिया। वहां का सामाजिक एवं राजकीय ढांचा एक नये सांचे में ढ़ाला गया एवं कुछ नये एवं दूरगामी सिद्धान्तों की बुनियाद पर खड़ा किया गया।

15.3 राजनीतिक संरचना-

मध्ययुगीन विश्व में स्वेच्छाचारी निरंकुश एवं एकतंत्र राजा राज्य करते थे। फ्रांस इसका अपवाद नहीं था। वहॉ पर भी एक तंत्र स्वेच्छाचारी शासक राज्य करते थे। जो वंश क्रमानुगत होने के साथ-साथ अपने को सिर्फ ईश्वर के प्रति उत्तरदायी मानते थे। जिनकी इच्छा ही कानून थी। इस व्यवस्था की चोटी पर सम्राट विराजमान था जो राज्य की उच्च, वेदीप्यमान, प्रमुख राष्ट्र की शक्ति, प्रतिष्ठा तथा समृद्धि का मूर्त रूप था जो यह दावा करता था कि में इस पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि हूं। जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर परमेश्वर ब्रह्माण्ड के विविध प्राणियों की किसी भी प्रकार सम्मिति लिये बिना स्वेच्छा से शासन करता है ठीक उसी तरह राजा अपने राज्य

में प्रजा की सम्मिति पर जरा भी आश्रित हुये बिना अपनी इच्छा से शासन करता है। फ्रांसिसी शासक इसी मत की अनुपालना करते हुए जनता पर निरंकुश एवं एकाधिकारपूर्ण राज्य करते थे। लुई 14 वां अपने को राजा बताता था। फ्रांस की जनता राजा के इन शब्दों का विरोध करने में असमर्थ थी। फ्रांस के निरंकुश शासक को प्रशासनिक कार्यों में दक्ष होना अनिवार्य है, लेकिन फ्रांस के निरंकुश शासक अयोग्य एवं अदूरदर्शी थे। प्रशासन मुख्यतः दरबारियों द्वारा ही चलाया जाता था। यह जानते हुए भी कि जनता में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा हो गई है यह भी उन्हें आभास हो गया था कि इस जागरूकता के बादलों को नष्ट नहीं किया जा सकता है फिर भी उसने इस दिशम में कोई प्रयत्न नहीं किया, जिसके परिणाम स्वरूप इस क्रान्ति का विस्फोट हुआ। हॉलाकि वह गम्भीर, उत्तरदाई, बुद्धिमान, सदाशंय, गुणी एवं दयालु था, लेकिन समय की नाजुकता को देखते हुए उसमें अन्य गुणों का होना भी जरुरी था। वह कोई कार्य अपनी इच्छा शक्ति से नहीं बल्कि अपने दरबारियों मंत्रियों, अपनी पत्नी की मॉगों से विवश होकर करता था। किसी व्यक्ति को कैद करना, सजा देना राजा की स्वैच्छाचारिता का एक उदाहरण था। करों को इकट्ठा करने के लिए उन्हें ठेके पर दे दिया जाता था। जिससे ठेकेदार मनमाना कर जनता से वसूल करते और जनता का खून चूसते। शासक वर्ग की विलासिता एवं शान-शौकत का कोई अन्त नहीं था।

राज्य का बाह्य ढांचा चकाचौंध एवं जगमगाता होने के बावजूद भी आन्तरिक रूप से वह सड़ा हुआ था। वहां की शासन व्यवस्था-अव्यवस्था का शिकार थी एवं समय के विपरीत दिशा में थी। सरकारी ढांचे में कोई योजना या व्यवस्था देखने को नहीं मिलती थी। अर्थ यह है कि राज्य की मशीनरी निकम्मी एवं अवैज्ञानिक थी। यह भोगविलास प्रधान, स्वेच्छाचारी एकतंत्र शासन जनता के लिए असह्य न होता यदि इसमें योग्यता एवं अनुभव होता। एकतंत्र (निरंकुश) शासन हजारों सालों तक दुनियां में रहे हैं, लेकिन उनकी सफलता का राज उनकी मजबूती, शक्ति एवं दूरदर्शिता में निहित था। परन्तु फ्रांसिसी शासन अव्यवस्थित विश्रृंखल एवं अकर्मण्यता का शिकार हो गया था। जिसके कर्णधारों ने इस की तरफ कोई ध्यान न दिया बल्कि वे अपने आमोद-प्रमोद, सम्मान एवं आराम में लिप्त रहते थे। किसी तरह लुई 14 वें, 15 वें ने तो अपना शासनकाल बिता दिया लेकिन लुई सोलहवें में शक्ति एवं क्षमता का अभाव होने के कारण ऐसा शासन ज्यादा दिनों तक नहीं टिक सका। जब उसे चेतना की आंधी ने अपने शिकंजे में कस लिया तो वह पुराने खोखले वृक्ष की तरह चरमरा कर धराशायी हो गया।

मेरी एंटोयनेट-

बूर्बा राजवंश के इतिहास में स्त्रियों प्रभाव सदैव ही अधिक रहा है जिसका मेरी एंटोयनेट अपवाद नहीं थी। इससे भी बड़ी बात यह थी कि यह प्रभाव हमेशा घातक सिद्ध हुआ है। मिराबों का कथन है कि सम्राट के आस-पास एक ही व्यक्ति है। वह उसकी पत्नी है। हॉलाकि वह गौरवपूर्ण, राजोन्वित थी लेकिन राजनीति अनुभव में शुन्य थी। जब उसके हाथों राजा कठपुतली बन गया तो इन दुर्बलताओं ने और

भीषण रूप धारण कर लिया। फ्रांसीसी उसे योग्य माता की अयोग्य पुत्री एवं धृणा से आस्ट्रियन स्त्री कहा करते थे। दुर्भाग्य से वह हठधर्मी भी थी। वह ऐसे लुटेरों के दल की केन्द्र बनी हुई थी जो वहां की अव्यवस्था से ही अपना उल्लू सीधा करते एवं जो सुधार विरोधी थे। बिल्कुल अन्जाने वह वित्त स्थिति को विषम बना ने एवं इस महान बरबादी की गति को तेज करने का निमित्त बन गई।

15.4 सामाजिक संरचना :

फ्रांस की सामाजिक संरचना स्वतंत्रता पर आधारित न होकर जन्ममूलक स्थिति पर आश्रिम थी। फ्रांस में सामाजिक संगठन का आधारभूत सिद्धान्त यह था कि सभी समान व स्वतंत्र नहीं है। समाज स्पष्ट रूप से (I) अधिकार सम्पन्न वर्ग एवं (II) अधिकार-हीन वर्ग में विभाजित था। वहां की सामाजिक व्यवस्था बुराईयों कुरितियों, असंख्य शिकायतों, कष्टप्रद और हानिकारक कुव्यवस्थाओं का भण्डार थी। जिसका न तो बुद्धि से कोई सम्बन्ध था और न ही बहुसंख्यक जनता के हितों से। इन कुप्रथाओं के कारण राष्ट्रीय जीवन के विकास की अनेक दिशाओं में रूकावटें पैदा होती थीं। फ्रांस का समाज मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित था:-

(1) चर्च- समाज का एक महत्वपूर्ण वर्ग चर्च या उन से संबंधित पादरियों का था जो प्रथम एस्टेट के नाम से जाने जाते थे। यह राज्य के क्षेत्र में एक दूसरे राज्य के समान था, जिसकी अपनी सरकार और अपने कर्मचारी थे। देश की भूमि के लगभग 20% भाग पर चर्च का आधिपत्य था। जिससे भारी आय होने के बावजूद उसे एक फ्रेंक भी कर के रूप में नहीं देना पड़ता था। पादरी भी दो भागों में बंटे हुए थे- बड़े पादरी बिशप, आर्क विषप, एबट आदि चर्च के ऊंचे पदों पर नियुक्त होते थे जिनके प्रभाव एवं समृद्धि की कोई सीमा न थी। सांसारिकता एवं भ्रष्टाचार ने उन्हें मानहीन कर दिया था। एक अवसर पर लुई 16 वें ने कहा था कि हमें कम से कम पैरिस का तो ऐसा आर्कविषप चुनना चाहिये जो ईश्वर में विश्वास रखता हो। छोटे-पादरी धार्मिक विधि-विधानों एवं कर्मकाण्डों का सम्पादन करने के बावजूद भी अपना पेट बेफिकरी से नहीं भर सकते थे। इसी वग्र ने चर्च के पतन में अपना सर्वाधिक योगदान दिया था। वे जनतंत्रवादी एवं जारूक थे। यही कारण था कि निम्नवर्ग के पादरियों के हृदय में उच्च पादरियों के प्रति विद्वेषकी भावना थी इसलिए उन्होंने क्रान्ति के समय जनता का साथ दिया:-

(2) कुलीन वर्ग- सम्राट एवं उसके परिवार के लोगों के बाद समाज में कुलीनों का ही स्थान था। जो विशेषाधिकार पूर्ण एवं विशाल भू-भाग के स्वामी थे, जिस पर उन्हें कोई कर नहीं देना पड़ता था। फ्रांस में एक कहावत प्रचलित थी कि कुलीन लड़ते हैं पादरी प्रार्थना करते हैं एवं जनता पैसा देती है। जो मुख्यतः एक सामन्ती विचार था जिससे कुलीनों की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। जनसाधारण को कुलीन की दुकानों से ही सामान लेना पड़ता था चाहें दूसरे स्थानों पर वे कितनी ही सस्ती क्यों न हो, कुलीन किसानों से फसल का 1/5 भाग कर के रूप में वसूलते थे। इनका पेशा न केवल मौज उड़ाना बल्कि दरबार की साजिशों में व्यस्त रहना भी था। जनता के हृदय में सामन्त वर्ग के प्रति जो धृणा थी वह वास्तव में स्वार्थी

एवं लालची दरबारी सामन्तों के प्रति ही थी। प्रान्तीय सामन्त प्रचलित व्यवस्था से खिन्न थे। न्यायिक सामन्त उदार विचारों के थे उनके विशेषाधिकारों पर आंच आने पर पुरातन व्यवस्था के समर्थक बन जाते थे। सामाजिक संरचना में प्रचलित यही प्रवृत्ति उस विकट आर्थिक विषमता का कारण थी, जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से क्रान्ति के लिए जिम्मेदार थी।

(3) किसान- फ्रांसिसी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग किसान थे जो तृतीय एस्टेट के नाम से भी जाने जाते थे। इसी वर्ग की हालत सबसे ज्यादा खराब थी। किसान अपने मालिक के लिए ही पैदा होते एवं उसी के लिए मरते थे। किसानों को भारी मात्रा में कर देना पड़ता था। तुर्गो के अनुमान के आधार पर वे अपनी उपज का 55% कर देते थे। राजा के खर्च के लिए "तेलि कर"- देते थे जिस का राजा हिसाब नहीं देता था। इसके अलावा हरेक व्यक्ति को नमक कर भी देना पड़ता था। जो असह्य था। सैनिक सेवा भी किसान बेगार में ही करते थे। इन सभी करों से किसान वर्ग हमेशा संकट में फंसा रहता था। सामन्त की चक्की से ही आटा पिसवाना, उसी के तन्दूर से रोटी पकवाना, उसी के कारखानें से शराब निकलवाना इत्यादि कार्य किसान पर्याप्त शुल्क देकर करवाते थे, जिससे भी उनकी दशा और खराब-होती गई। कहा जाता है कि इस समय फ्रांस की जनता का 1/10 भाग बदहजमी से एवं 9/10 भाग भूख से मर रहा था। जीवन की ऐसी ही परिस्थितियों से वे दिन प्रतिदिन बल्कि प्रतिक्षण सुधारों की तीव्र आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। वे इतना जानते थे कि हमारा जीवन तभी सुधर सकता है जब सामन्ती कर हटा दिये जायें, और राज्य कर भी कम हो जायें। फ्रांस में क्रान्ति की सफलता कारहस्य वहाँ के सर्वसाधारण की अवस्था का उन्नत एवं जागरूक होना ही था।

उच्च मध्य वर्ग- साहित्यकार, वकील, चिकित्सक लेखक, कवि, व्यापारी, साहूकार, कलाविज्ञ, सरकारी नौकर और छोटे-छोटे कारखानों के मालिक इस वर्ग में शामिल थे। जो व्यवहार कुशल व्यवसायी होने के साथ-साथ दिल-दिमाग और धन के स्वामी भी थे। समझदार, कर्मठ, शिक्षित एवं धनी होने के कारण प्रचलित व्यवस्था से इन्हें सबसे ज्यादा असंतोष था। उच्च वर्गों का व्यवहार इनके प्रति इतना असह्य था कि उन्हें कदम-कदम पर हीनता का अनुभव होता था। लेकिन उनकी जागरूकता, शिक्षा-दीक्षा से वे समान्तों के व्यवहार का जवाब धृणा एवं ईर्ष्या से देते थे। इस श्रेणी के लोगों ने ही फ्रांस में पहली बार "जनतंत्र" नामक वस्तु को पैदा किया। राज्य की दिवालियेपन की स्थिति से उनके स्वार्थों पर कुठाराघात हो रहा था, क्योंकि उन्होंने बड़े-बड़े कर्जे राज्य को दे रखें थे। राजनीतिक दृष्टि से इनकी हालत एक भूखे-नंगे किसान जसी थी। इन्हीं कारणों से वे प्रचलित व्यवस्थाओं से असंतुष्ट थे। राज्य क्रान्ति में इन्हा लोगों का सर्वाधिक समर्थन एवं सहयोग रहा था। क्रान्ति में इन्हें स्पष्ट रूप से अपनी दुराव्यवस्था के अन्त होने की सम्भावना नजर आ रही थीं।

औद्योगिक एवं व्यावसायिक वर्गः

18 वीं सदी में यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी, जिसके कारण यूरोप एवं दूसरे महाद्वीपों में औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे थे। मानवीय

श्रम का स्थान अब बड़ी-बड़ी मशीनों ने ले लिया था, जिसके कारण अब उत्पादन अधिक और श्रेष्ठ होने लगा था। ग्रामीण जनता मजदूरी के लिए शहरों की ओर पलायन करने लगी थी। फ्रांस भीं इस क्रान्ति से अछूता नहीं रहा था। जिसके प्रभाव दृष्टिगोचर होना शुरू हो गये थे। जिसके कारण वहां पर भी एक उद्योग-धंधों से सम्बन्धित वर्ग का विकास हो रहा था। उद्योग-धन्धों के स्वामी आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार द्वारा धनी होते जा रहे थे। इसके अलावा उन कारखानों में काम करने वाले मजदूरों का भी एक वर्ग धीरे-धीरे अपना रूप ग्रहण कर रहा था। ऐसे मजदूरों की संख्या लगभग 25 लाख थी। शहरों का व्यावसायिक जीवन उस समय था तो आर्थिक श्रेणियों में संगठित था या छोटे-छोटे कारखानों में। जो मजदूर इन श्रेणियों के सदस्य थे उनकी हालत बुरी न थी। लेकिन उनकी आजादी के मार्ग में इन श्रेणियों के कानून थे। जो मजदूर कारखानों में काम करते थे उनकी अवस्था बहुत खराब थी। उन्हें काफी समय तक काम करने के बदले काफी कम वेतन मिलता था। उनकी मेहनत थकाने वाली और कष्टप्रद थी। इनका कोई संगठन न होने के साथ-साथ ये काफी असंतुष्ट भी थे। इन कारखानों की वजह से एक नई तरह की श्रेणी विकसित हो रही थी जो शहरों में रहती हुई नवीन बातों की जानकारी रखती हुई और उत्पत्ति का सारा कार्य करते हुये भी पूर्णतया असहाय थी। इस श्रेणी के लोगों को अभी तक अपनी शक्ति व महत्व का ज्ञान नहीं हुआ था फिर भी ये अपने हितों को कुछ-कुछ समझने लगे थे। और यह इसी का परिणाम था कि यद्यपि फ्रांस की राज्य क्रान्ति राजनीतिक स्वाधीनता की स्थापना के लिए विशेष रूप से प्रयत्न कर रही थी। तथापि आर्थिक समस्या की भी कुछ झलक उसमें विद्यमान थी।

अन्त में, सारे देश में आर्थिक प्रतिबन्ध लगे हुए थे, जैसे गिल्ड विनियम, नगर-विनियम, प्रान्तीय सीमा शुल्क, सामन्ती सीमा शुल्क इत्यादि। ये प्रतिबन्ध कहीं-कहीं दूसरे विरोधी थे और कही एक दूसरे के ऊपर थे। जिनकी वजह से अव्यवस्था बढ रही थी, जो व्यापार एवं व्यवसायों की उन्नति में बाधक थी।

14.5 धार्मिक संरचना-

इस युग में फ्रांसीसी जनता को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। हालांकि अधिकांश, जनता रोमन कैथोलिक चर्च को मानने वाली थी, लेकिन प्रोटेस्टेन्टों एवं यहूदियों को भी काफी बड़ी तादाद वहां बसती थी। 1685 में नान्ते का प्रसिद्ध धार्मिक अध्यादेश रद्द हो जाने की वजह से प्रोटेस्टेन्ट धर्म अवैध घोषित कर दिया गया था। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति का रोमन कैथोलिक चर्च के अधीन होना परम आवश्यक था। प्रोटेस्टेन्ट धर्म का पालन एक अपराध था। जिसके लिए कठोर श्रम की सजा भी दी जाती थी। विदेशी समझे जाने वाले यहुदियों के साथ सहिष्णुता का व्यवहार होने के बावजूद उनकी अपमान जनक स्थिति थी। विधर्मियों को अपने विश्वासों के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक धार्मिक कृत्यों को करने का अधिकार भी नहीं था। चर्च धार्मिक स्वतंत्रता एवं सहिष्णुता के पूर्णतया विरूद्ध था। इसी कारण वालतेयर जैसे दार्शनिक उसके घोर शत्रु बन गये थे। एक ओर तो फ्रांस में धार्मिक स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध था, दूसरी तरफ वहां नास्तिकता की प्रवृत्ति बढ़ रही थी।

सिर्फ सर्वसाधारण जनता ही नहीं बल्कि पादरी वर्ग में भी नास्तिकता की लहर जोर पकड़ती जा रही थी।

15.6 आर्थिक संरचना-

फ्रांस यूरोप का एक समृद्ध देश था जो कि महान राष्ट्रीय पराजयों के बावजूद भी समृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा था। लेकिन शासक वर्ग द्वारा मनचाहे ढंग से खर्च करने एवं कृषि की तरफ पूर्ण ध्यान न देने के कारण देश की अर्थ-व्यवस्था डगमगाने लगी जिसने एक विकराल रूप ले लिया था। वहां की आर्थिक अव्यवस्था ही बहुत कुछ सीमा तक बढ़ते हुये अंसतोष का कारण थी। कुलीन एवं चर्च वर्ग सर्वाधिक सम्पन्न था, लेकिन ये वर्ग-करों से मुक्त थे, और विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। मध्यम श्रेणी की आर्थिक दशा भी अच्छी थी, लेकिन सबसे खराब अवस्था किसानों की थी, जिनको अपनी आमदनी कम से कम 80% भाग करों के रूप में देना पड़ता था।

कर वसूलने के लिए सरकारी कर्मचारियों की व्यवस्था नहीं थी इसके लिये ठेकेदार नियुक्त किये जाते थे। जो मनमाना कर वसूल करके सरकार को निश्चित रकम ही देते थे। इस अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए सरकार ने कोई उचित व ठोस कदम नहीं उठाया। लुई 16 वें ने इस अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए तुर्गो को अपना वित्त विभाग सौंपा। लेकिन दरबारी एवं सम्राज्ञी ने उसकी मिव्ययता का विरोध करके सम्राट के द्वारा उसे पदच्युत करा दिया। उसके बाद नेकर को वित्तमंत्री बनाया गया जो आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए प्रसिद्ध था। फ्रांस की अर्थव्यवस्था को सुधारने की दिशा में उसने महत्वपूर्ण कार्य भी किये, लेकिन साम्राज्ञी द्वारा विरोध करने के कारण उसे भी स्तीफा देना पड़ा। उसके बाद कैलोन को नियुक्त किया जिसने सभी वर्गों पर समान रूप से कर लगाने की योजना बनाई लेकिन पादरी एवं कुंलीन वर्ग के विरोंध के कारण उसे भी अपने पद से हटना पड़ा। 1787 में "प्रसिद्ध पुरुषों की सभा" राजधिवेशन भी समस्या का समाधान करने में असफल रही। राजा के द्वारा नये कर लगाने की योजना का पैरिस की पार्लमां ने विरोध किया। राजा ने उसे भंग करके उसके सदस्यों को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया परन्तु सैनिकों ने गिरफ्तार करने से मना कर दिया फलतः विवश होकर 1789 में सम्राट को एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की घोषणा करनी पड़ी।

आस्ट्रिंया के उत्तराधिकार युद्ध, सप्तवर्षीय युद्ध एवं अमरीका के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण फ्रांस की अर्थव्यवस्था और ज्यादा खराब हो गई। जैसे-जैसे आर्थिक व्यवस्था खराब होती गई वैसे-वैसे राष्ट्रीय ऋण भी बढ़ता गया स्थिति यह हो गई कि देश की आय राष्ट्रीय ऋण के ऊपर होने वाले ब्याज से भी कम हो गई।

सम्राट एवं कुलीनवर्गीय सदस्यों को यह पूरा यकीन था कि इस सभा में कुलीनों एवं चर्च का बहुमत है इसलिए वे फ्रान्ति का अन्त करने में सफल हो जायेंगे जो

कि उनका भ्रामक विचार था। वास्तव में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना ही क्रान्ति का शुभारम्भ करना साबित हुआ।

15.7 बुद्धिजीवी वर्गः

यूरोप के सभी देशों की हालत ऊपर लिखित फ्रांसिसी अव्यवस्था जैसी ही थी। पुरातन व्यवस्था के खिलाफ सबसे पहले क्रांन्ति फ्रांस में ही हुई। इसका प्रथम एवं महत्वपूर्ण कारण क्रान्ति की उस भावना का वहाँ विकसित होना था जो वहाँ के बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा विकसित की जा रही थी। जिनमें से अनेक लेखक तथा दार्शनिकों ने सोई हुई जनता को जागृत किया और अपने लेखों एवं ग्रन्थों से मध्यवर्गीय जनता को प्रभावित किया। इतिहासकारों का कहना है कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति से पूर्व फ्रांस में एक बौद्धिक क्रान्ति हुई थी जिसके अभाव में वहाँ क्रान्ति का होना एवं सफलता प्राप्त करना संदिग्ध था। इसी वर्ग ने लम्बे समय तक वहां की जनता में स्वतंत्रता, समानता बंधुत्व की भावना का विकास किया। उनके विचारों से प्रेरित होकर देश में अनेक नेताओं का अभ्युदय हुआ। जिन्होंने मनुष्य जाति के हजारों सालों से चले आ रहे विश्वासों के आगे प्रश्न चिन्ह लगा दिया। और नये विचार जनता के समक्ष प्रस्तुत किये। मोन्टेस्क्यू, वाल्टेयर, रूसों, दिदरों और अन्य अनेक विचारकों की लेखनियों से निकली पुस्तकों ने मानसिक जगत की गहराई को धरातल तक आन्दोलित दिया। उन्होंने राजनीति, धर्म, समाज, व्यवसाय आदि से संबंधित अगणित विचारों के संचार की गति को तीव्र कर दिया। इस ज्वलनशील साहित्य का क्लेवर विशाल तथा प्रभाव अत्यधिक गहरा था। उनकी लेखनी से स्वतंत्रता का प्रेम और न्याय की अभिलाषा निकल कर वायुमण्डल में फैल गई। उने उदार विचारो ने जनता के मस्तिष्क में घर कर लिया। विचारों ने इस व्यापक आन्दोलन एवं मंथन ने प्रचलित बुराईयों तथा उनके निवारण से संबंधित इस निरन्तर तथा गम्भीर वाद-विवाद ने आने वाली उन महान घटनाओं का मार्ग-प्रशस्त किया, जो फ्रांस तथा समस्तयूरोप के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

इस बुद्धिजीवी वर्ग के महान विचारक उनके एवं उसके प्रभाव के बारे में हम संक्षेप में वर्णन करना चाहेंगे।

15.7.1 मोन्टेस्क्यू

फ्रांसिसी राजतन्त्र की नींव की कटु आलोचना एवं तीव्र व्यंग्य का प्रहार सर्वप्रथम एक न्यायिकवर्ग के सामन्त, न्यायाधीश एवं उच्च श्रेणी के वकील मोन्टेस्क्यू (1689-1755 ई.) ने किया । हालांकि वह क्रान्तिकारी नहीं था। लेकिन कालान्तर में उसके विचारों ने क्रान्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह राजा का विरोधी न होकर उसके दैवी-अधिकार का विरोधी था। कानून की आत्मा (Spirit of this law) उसकी महान कृति थी। उसने रहस्य के उस आवरण को, जिससे मनुष्य ने अपनी समस्याओं को ढक कर रखा था, फाड़कर फैंक दिया। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित दैवी सिद्धान्त की तिरस्कारपूर्ण उपेक्षा की। उसने अपने विचारों के विश्लेषण एवं परीक्षण से इंग्लैण्ड की शासनव्यवस्था को श्रेष्ठ बताया। मौन्टेस्क्यू ने इस बात पर भी जोर दिया कि एक सुनियमित राज्य में सरकार की तीनों शक्तियॉ-विधायी, कार्यपालिका एवं

न्यायपालिका- को पृथक किया जाना चाहिये ताकि सत्ता के दुरुपयोग की संभावना न रहे और ऐसी व्यवस्था भी आवश्यक है जिसमें विभिन्न सत्ताऐं एक दूसरे पर अंकुश बन सके। मोन्टेस्क्यू ने सामन्तवादी सामाजिक सबंधों की कटु आलोचना की। चर्च के वर्चस्व का विरोध किया और राजनीतिक स्वतंत्रता का नारा दिया। शक्ति पृथक्करण तथा अवरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त का फ्रांस के उन सब संविधानों पर गहरा असर पड़ा जो 1789 के बाद बने और उन्होंने उस देश की सीमा के बाहर भी संविधान निर्माताओं को प्रभावित किया। मोन्टेस्क्यू की कृति बुद्धिमतापूर्ण विचारों का भण्डार सिद्ध हुई। चूँकि मोन्टेस्क्यू एक विद्वान, लेखक एवं अध्ययनशील न्यायाधीश था और उसकी भाषा तथा शैली गंभीर एवं औजपूर्ण थी इसलिए उससे फ्रांस में तथा अन्यत्र विचारों, वाद-विवाद और कार्यो को भारी उत्तेजना मिली।

15.7.2 वाल्टेयर (1694-1778)

यूरोपीय इतिहास में एक महान मनीषी वाल्टेयर हुआ है। जिस तरह से लूथर या दूरास्मस के युग की चर्चा की जाती है वैसे ही वाल्टेयर के काल की चर्चा होती है। वह बौद्धिक स्वतंत्रता का महान पोषक था। लोग इसी कारण उसे राजा वाल्टेयर कहकर पुकारते थे। संसार में उससे अधिक स्वतंत्र, निर्भिक एवं साहसी आत्माऐं बहुत कम हुई हैं। वह कुलीन श्रेणी का न होकर मध्यवर्ग का था। अपने समय के अत्याचारों एवं अन्यायों का उसे प्रत्यक्ष अनुभव था। कुछ समय वह राजदरबार में भी रहा। हॉलांकि उसके चरित्र में दुर्बलताऐं थी, लेकिन मानव स्वतंत्रता संग्राम में लड़ने वालों के लिए वह दिन में दिशा सूचक बादल का, रात में प्रकाश स्तम्भ का काम करता था। पुरातन व्यवस्था के प्रति उसके दिल में गहरी एवं स्थायी घृणा थी, उसका विश्वास था कि पुरातन व्यवस्था को उखाड़ देने में ही भलाई है। उसका मानना था यदि हमें नवीन युग की आधारशिला रखनी है तो हमें पुरातन व्यवस्था को इस जहॉ से मिटाना ही होगा। तलवार की धार के समान उसकी शैली स्पष्ट, नुकीली, लोचदार और तिखी थी। व्यंग्य लिखने में वह सिद्धहस्त था। अपने युग के आडम्बरों, अत्याचारों और धर्मान्धता पर उसने इन शास्त्रों का जमकर प्रयोग किया और अपनी लेखनी की विध्वंसक आग से उन्हें जला डाला। उसने कानून तथा न्याय व्यवस्था की बुराईयों, अन्यायों की एवं मनमाने ढंग से निर्दोष नागरिकों को कारागार में डालने और यातना देने की प्रथा की खुलकर भर्त्सना की। वह कैथोलिक चर्च का कट्टर आलोचक था। वह चर्च को कख्यात वस्तु कहा करता था। वाल्टेयर जनतंत्र शासन प्रणाली का पक्षपाती नहीं था। उसका कहना था कि सौ चूहों की बजाय एक शेर का शासन मुझे अधिक पसंद है। राज्य-व्यवस्था की विशेष बुराईयों पर उसने जोरदार प्रहार किया और राज्य के प्रति लोगों की जो श्रद्धा थी उसे कमजोर कर दी। वह अंग्रेजी न्याय-विधान का प्रशंसक एवं फ्रांसिसी न्याय विधान का कटु आलोचक था। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का वह कट्टर समर्थक था। एक बार उसने कहा था कि "यद्यपि आप की बात से मैं सहमत नहीं हूँ लेकिन आपके ऐसा कहने के अधिकार की रक्षा के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूँ। "चर्च एवं राज्य के दोषों के विरूद्ध उसने जो पुस्तकें लिखी उनके कारण

लोगों का ध्यान उनकी बुराईयों की तरफ आकृष्ट हुआ और लोग इन दोषों को दूर कर एक नवीन युग की कल्पना करने लगे।

15.7.3 जॉन जैक रूसो- (1712-1778 ई.)

रूसो की राजनीतिक विचारधारा ने 18 वीं सदी की फ्रांसिसी बुर्जआ क्रांति की पूर्व वेला के दौरान फ्रांस के जनवादी हल्कों की सामाजिक चेतना पर अपरिचित प्रभाव डाला। उसके विचार आज भी पहले जैसे ही राजनीतिक संघर्ष का केन्द्र-बिन्दू बने हुए हैं। फ्रांस में क्रान्ति की भावना को विकसित करने में सबसे प्रथम स्थान रूसो का है। वह एक नवीन युग एवं समाज की कल्पना करता था। उस के विचार में मानव का भूतकाल ही उज्जवल था। जब सब समान व स्वतंत्र थे। रूसो की सुप्रसिद्ध रचना'' सामाजिक संविदा'' है जिसमें उसने निरंकुश राजतत्र की कटु आलोचना की है। रूसो लिखता है कि ''मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है लेकिन वह सदैव जंजीरों में जकड़ा रहता है। कुछ लोग अपने को दूसरों का मालिक समझता है लेकिन वस्तुतः वे दूसरों की अपेक्षा अधिक गुलाम होते हैं। यह परिवर्तन कैसे आ गया ? इस प्रश्न का जवाब देते हुए रूसो लिखता है कि ''मानव समाज व राज्य में जनता की इच्छा ही सर्वोपरि है सरकार की न्यायता इसी जनता की इच्छा पर निर्भर करती है जनता शासन करने के लिए किसी एक आदमी-राजा को नियत कर सकती है। पर उस आदमी की सत्ता जनता की इच्छा पर ही निर्भर है। जनता अपनी इच्छा को कानून की शक्ल में प्रकट करती है। जिसके अनुसार राजा को शासन करना चाहिये।''

रूसो के ऐसे विचार 18 वीं सदी के लोगों के लिए ''उग्र-क्रांतिकारी'' विचार थे। राजा की इच्छा नहीं वरन् जनइच्छा ही कानून है। यहीं विचार फ्रांसिसी राज्यक्रान्ति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा था। उसने सभी लोगों को स्वतंत्र एवं समान मानते हुऐ उनके अधिकारों की रक्षा करना सरकार का उद्देश्य बताया। मोन्टेस्क्यू के विपरीत उसने अंग्रेजी शासन व्यवस्था को दोषमुक्त नहीं माना। उसके दो विचारों-जनता का प्रभुत्व एवं उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता ने यूरोप के तत्कालीन राज्यों की जड़े खोदने में महत्वपूर्ण भाग अदा किया। इन सिद्धांतों ने फ्रांसीसी क्रांति को खूब प्रभावित किया।

रूसो की विचार-सारणी के अनुसार राज्य का निर्माण जनता की आपसी संविदा (Contract) द्वारा हुआ है। अतः राज्य में लोकमत ही सर्वोपरि होना चाहिये। वह शासन पद्धति सर्वोत्तम है जिसमें बहुमत के आधार पर शासन होता है। सामाजिक संविदा के स्वरूप के बारे में अपनी धारणाओं के आधार पर रूसो जन-सम्प्रभुता का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। वह कहते हैं कि केवल सामान्य इच्छा ही राज्य की स्थापना के उद्देश्य-सामान्य कल्याण को ध्यान में रखते हुए राज्य की शक्तियों का संचालन कर सकती है।'' सामाजिक संविदा भी इसका अपवाद नहीं है।'' रूसों के ये सिद्धान्त एक नये संदेश के समान सम्पूर्ण यूरोप में व्याप्त हो गये। फ्रांस के क्रान्तिकारियों के लिए रूसो के विचार धार्मिक-सिद्धान्तों का सा महत्व रखते थे। रूसों ने केवल पुरातन व्यवस्था की ही भर्त्सना नहीं की बल्कि अर्वाचीन युग का

चित्र भी लोगों के सामने रखा। लोगों ने अनुभव किया कि यह नवीन चित्र बहुत ही सुन्दर है वे उसके अनुयायी हो गये। सेन्ट-जस्ट और रोबस्पियर भी अपने आपको रूसो का अनुयायी बताते हैं। व्यक्तिगत बुराईयों के बावजूद भी उसका प्रभाव क्रांति पर सर्वाधिक था। रूसों के महत्व को स्वीकारते हुए एक बार नेपोलियन महान ने कहा था- "यदि रूसो का जन्म न हुआ होता तो फ्रांसिसी क्रान्ति भी न हुई होती।"

15.7.4 अन्य विचारक-

क्रान्ति के इन तीन अग्रदूतों के अतिरिक्त फ्रांस में अन्य विचारक भी हुऐ थे जिन्होंने अपने सिद्धान्तों के प्रचार से फ्रांस की बौद्धिक क्रान्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया था साथ ही इन विचारकों ने क्रान्ति की भावना का प्रादुर्भाव भी किया। इनमें दिदरों, क्वेसने, हालबैश, हैल्वेशियस इत्यादि मुख्य हैं। दिदरो (1713-1784) एक महान विद्वान था जिसने एक विशाल शबद कोष प्रकाशित करने की योजना बनाई। जिसका उद्देश्य उस समय के सपूर्ण ज्ञान को सरल भाषा में पेश किया जाये ताकि लोगों को उनसे सबंधित विषयों का ज्ञान हो सके। यह विश्वकोष जनता के लिये लाभदायी सिद्ध हुआ था, लेकिन राजा व चर्च को विश्वकोष द्वारा प्रचारित ज्ञान असह्य था। यह योजना क्रान्ति की भावना को विकसित करने में सफल रही। मंत्रियों ने इन विश्वकोषों को राजसत्ता तथा धर्म के खिलाफ बताते हुऐ उन्हें पढ़ने से रोका जिसका जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सरकारी विरोध के बावजूद भी विश्वकोषों की बिक्री बढ़ती रही। इनमें एकतंत्र राजसत्ता, धार्मिक असहिष्णुता, दास प्रथा, अन्याययुक्त टैक्स, सामन्त पद्धति, फौजदारी कानून आदि सभी विषयों पर विस्तार से विचार किया गया। इन विचारों से इन सबके दोष जनता के सामने आ गये। संक्षेप में ये विश्वकोष क्रान्ति की भावना को प्रज्जवलित करने में उपयोगी सिद्ध हुई।

फ्रेन्कोइस क्वेसने (1694-1774) फ्रांस के राजा लुई 15 वें का वैद्य था जहाँ उसकी रूचि अर्थशास्त्र में पैदा हुई। क्वेसने ने अपने आस-पास बहुत से अर्थशास्त्रियों को इकट्ठा कर लिया जो उसे अपना नेता मानते थे। क्वेसने ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में समानता के सिद्धान्त को रखा

क्वेसने का मानना था कि बचत से नुकसान होता है क्योंकि इसको खर्च नहीं किया गया तो इसके द्वारा भुगतान की समानता का क्रम टूट जायेगा। उसकी नीति प्राकृतिक कानून की तरह "खुला छोड़ दो" के सिद्धान्त पर आधारित थी। वास्तव में वह 19 वीं सदी के उन लोगों में से एक था जिन्होंने समाज के वर्गों में समानता बनाये रखीं और इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया कि पूर्णतया सामाजिक सन्तुष्टि खुली प्रतियोगिता से ही संभव है।

पोल हेनरी डेट्रिक, हॉलबेश (1723-1789) फ्रांस का एक महान विश्वकोष शास्त्री एवं दार्शनिक था जो नास्तिकता एवं भौतिकवाद का कट्टर समर्थ था। डॉ. हॉलबेश ने दिदरों के विश्वकोष में 376 लेख प्रस्तुत किये जो अधिकाशंतः रसायन-शास्त्र एवं अन्य संबद्ध विज्ञानों से संबधित थे।

कलोड एडरीन हेल्वेशियस (1715-1771) विश्व में भोगवादिय दृष्टिकोण, धर्म के नैतिकतावादी विचारों पर आक्रमण और अपव्ययी शैक्षणिक सिद्धान्त इत्यादि बातों से

जाना जाता है। हेल्वेशियस ने नैतिकता पर आधारित धर्म की भर्त्सना की जिसका जमकर विरोध हुआ और लेखों की प्रतियां जला दी गई और उसका विरोध हुआ। हेल्वेशियस का मानना था कि सभी मनुष्य ज्ञान प्राप्ति के लिये समान है।

15.8 राज्य का बदलता हुआ स्वरूपः

फ्रांस की आर्थिक दशा अपने निम्नतम स्तर तक गिर चुकी थी जिसे ऊपर उठाने से सम्बन्धित समस्त प्रयास विफल हो चुके थे। फलस्वरूप सम्राट को विवश होकर स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना पड़ा जो उसकी पराजय का सूचक थी। क्योंकि अब सम्राट ने भी यह मान लिया था कि आर्थिक समस्या के हल के लिए जनता का सहयोग अनिवार्य है। लेकिन सम्राट ने इस सभा की कार्यवाही के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट कार्यक्रम नहीं बनाया। सभा के उद्घाटन के दूसरे दिन (6 मई 1789) सभा के तीनों सदनों में विकट संघर्ष छिड़ गया। गति-अवरोध के परिणामस्वरूप तीसरे सदन ने अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। गति-अवरोध के वातावरण में इस सदन के लोगों ने एक शपथ ली जो "टैनिस कोर्ट" की शपथ के नाम से ख्यात है जिसमें कहा गया था कि "जब तक राज्य का संविधान लागू नहीं हो जाता हम एक रहेंगे।" जनता ने राजा की निरकुंश शक्ति से लोहा लेने व प्रतिक्रियावादियों के गढ़ को समाप्त करने के लिए बेस्टील नामक एक जेल पर (14 जुलाई 1781) धावा बोलकर उसका पतन कर दिया जो जनता की भारी विजय थी। राष्ट्रीय सभा ने राजा के एक तंत्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर उसकी शक्ति को संविधान द्वारा सीमित कर दिया। इसके साथ ही सामन्ती प्रथा का भी अन्त कर दिया। इसी सभा के द्वारा 27 अगस्त, 1789 को रूसो के समझौते के सिद्धान्त के आधार पर मानव अधिकारों की घोषणा की जिसमें कहा गया कि मनुष्य स्वतंत्र एवं समान है। कानून जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति है। इसके साथ ही आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए चर्च की जगीरें बेच दी एवं मठों का भी अन्त कर दिया गया। राष्ट्रीय सभा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य दो वर्ष के कठिन परिश्रम से 1791 ई. में नया संविधान बनाना था। जिसमें राजा के अधिकारों को सीमित कर दिया गया। मंत्रीगण सम्राट के प्रति उत्तरदायि न होकर राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी थे। नवीन संविधान के अन्तर्गत एक व्यवस्थापिका सभा की व्यवस्था की गई जिसके 750 सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष का था। जिनका निर्वाचन परोक्ष रूप से होता था। न्याय व्यवस्था सम्बन्धी भी नवीन कानून बनाये गये और न्यायाधीशों की नियुक्ति निर्वाचन के आधार पर की जाने लगी। न्याय निःशुल्क था। 30 सितम्बर 1791 ई. में सभा विसर्जित हो गई। सभा के बाद व्यवस्थापिका का निर्वाचन हुआ जिसके आधार पर राजा ने नवीन संविधान को स्वीकार कर लिया। व्यवस्थापिका भी कोई महत्वपूर्ण कार्य किये बिना 21 सितम्बर, 1792 को भंग हो गई जिसके बाद नेशनल कन्वेंशन अस्तित्व में आई। जिसने राजतंत्र को समाप्त कर गणतंत्र की घोषणा की। राजा पर मुकदमा चलाकर 21 जनवरी, 1793 ई. को उसे मृत्यु दण्ड दिया। राजा के वध के कारण यूरोप के राष्ट्र फ्रांस के खिलाफ हो गये और फ्रांस यूरोपीय देशों से युद्ध में उलझ पड़ा। रानी पर देश द्रोह का आरोप लगाकर 16 अक्टूबर, 1793 ई. में मृत्यु दण्ड दे दिया गया। नेशनल कन्वेंशन ने क्रान्ति कलेण्डर

के तीसरे वर्ष में देश के लिए एक-नया संविधान बनाया जिसमें व्यवस्था की गई है कि कार्यपालिका शक्ति पांच व्यक्तियों की एक डाइरेक्टरी में निहित होगी। इसका अध्यक्ष ही फ्रांस का राष्ट्रपति था। इस संविधान में दो भवनों वाली एक व्यवस्थापिका का भी निर्माण किया गया जिसके सदस्यों के निर्वाचन का आधार सम्पत्ति था। कर दाता ही मतदाता थे। इस संविधान को पास कर कन्वेंशन 26 अक्टूबर, 1795 ई. में भंग हो गई। कन्वेंशन की समाप्ति पर फ्रांस में डाइरेक्टरी का शासन शुरू हुआ जिसका महत्वपूर्ण कार्य फ्रांस के शत्रु राष्ट्रों के विरूद्ध युद्ध जारी रखना था। इस समय तक जनता रक्तपात एवं अव्यवस्था से थक चुकी थी जो अब शासन में दृढ़ता पंसद करने लगी। यह माना जाता है कि दीर्घकालीन अव्यवस्था अशांति से डिक्टेटरशिप का जन्म होता है इसी तरह से फ्रांस में भी अव्यवस्था एवं अशान्ति के वातावरण में नेपोलियन नामक डिक्टेटर का उदय हुआ।

15.9 सारांशः

फ्रांसिसियों ने अपनी पुरातन व्यवस्था के जुऐं को उतार फैंकने एवं अपनी पतित अवस्था से मुक्त होने के लिए न केवलशासक वर्ग के विरूद्ध विद्रोह किया बल्कि विशेषधिकार सम्पन्न वर्गों को भी विशेषाधिकारहीन बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। 1789 ई. में उन्होंने निकम्मे शासन के जुऐं को उतार फैंका और स्वतंत्रता समानता एवं लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। क्रान्ति किसी एक कारण या परिस्थिति से नहीं बल्कि सैकड़ों वर्षों की परिस्थितियां इसका निमित बनती है। इन परिस्थितियों में वहॉ की राजनीतिक संरचना मुख्य रूप से क्रान्ति के लिए उत्तरदायी थी वहॉ निरकुंश स्वेच्छाचारी शासकों का आंतक पूर्ण राज्य था जो जनता पर ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में राज्य करते थे। जनता उनकी निरंकुशता पर अंकुश लगाने में असमर्थ थी, शासक प्रशासनिक कार्य अपनी इच्छा से नहीं बल्कि बाह्य लोगों के दबाव से करता था। शासन व्यवस्था-अव्यवस्था का शिकार एवं समय के विपरीत थी। तात्पर्य यह है कि सरकारी मशीनरी निकम्मी एवं अवैज्ञानिक थी। लुई 16 वां जनता की भावना को समझने में असमर्थ था। उसकी नासमझी एवं अदूरदर्शिताने ही उसके स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर दिया। उसकी पत्नी भी उसके पतन में बराबर की भागीदार थी। क्योंकि वह महत्वाकांक्षी थी, चाटुकर लोगों का केन्द्र थी। राज्य का हित-अहित जाने बिना राज्यादेश निकाल देती थी। लोग उसे धृणा से आस्ट्रियन स्त्री पुकारा करते थे। महान अर्थशास्त्रियों के आर्थिक सुधारों का उसके द्वारा विरोध करने से ही आर्थिक-व्यवस्था निम्नतमस्तर तक पहुंची जो क्रान्ति के लिए कम उत्तरदायी न थी।

फ्रांस की सामाजिक संरचना भी दोषपूर्ण एवं असमानता क ढांचे पर आधारित थी। कुछ लोग तो विशेषाधिकार सम्पन्न एवं कुछ विशेषाधिकारहीन थे जिनकी अवस्था दासों जैसी ही थी। चर्च राज्य के भीतर के अलग-राज्य था जिसके पास विशाल भू-भाग एवं खजाना था जो भ्रष्टाचार एवं विलासिता का केन्द्र बना हुआ था। पादरी धार्मिक कृत्यों में भाग न लेकर सांसारिक सुखों में लिप्त रहते थे। इनकी विलासिता जनसाधारण की मेहनत पर टिकी थी। कुलीन वर्ग भी विशेषाधिकार पूर्ण एवं विशाल

भू-भाग का स्वामी था। जिस पर उन्हें कोई कर नहीं देना पड़ता था। जनसाधारण ही कुलीनों की विलासिता का स्रोत था। इनका पेशा-दरबार की साजिशों में भी लिप्त रहना था। न्यायिक एवं प्रान्तीय सामन्त भी प्रचलित व्यवस्था से खिन्न थे। फ्रांसिसी समाज का एक महतवपूर्ण वर्ग किसान था जो शोषण एवं हर तरीके के अन्याय का शिकार था। वह न केवल राज्य एवं चर्च को भारी कर देता था बल्कि उसे बेगार भी करनी पड़ती थी। कुलीन की दूकान से ही सारा खरीदना अनिवार्य था चाहे दूसरी जगहों पर वह सामान कम मूल्य में ही क्यों न मिल रहा हो। ऐसा अनुमान था कि उनकी आय का 55% भाग राज्य करों के रूप में वसूल करता था लेकिन वे लोग अपनी इस अवस्था से परिचित थे और हमेशा यह सोचते रहते थे कि उनकी पतित अवस्था तब ही समाप्त हो सकती है, जब सामन्ती कर हटा दिये जायें एवं राज्य कर कम हो जायें। इसके अलावा यूरोप के अन्य देशों की तुलना में वे जागरूक भी थे। उच्च मध्यवर्ग में भी पर्याप्त असंतोष था। यह वर्ग भी अपने कार्यों एवं लेखनी से अपनी दुर्दशा का अन्त करना चाहता था। धार्मिक संरचना भी क्रान्ति के लिए उत्तरदायी थी। वहाँ रोमन कैथोलिक धर्म को छोड़कर अन्य धर्मावलम्बियों को धार्मिक स्वतंत्रता न ही थी। जिसके कारण अन्य सम्प्रदायों में भी असंतोष था। आर्थिक संरचना भी दोष पूर्ण थी। उच्च वर्ग करों से मुक्त था जनसाधारण पर भारी कर लगे हुऐ थे। कर इकट्ठा करने की प्रक्रिया भी दोष पूर्ण थी। राज्य की आय राष्ट्रीय ऋण पर होने वाले ब्याज से भी कम थी। इस अवस्था से मुक्ति पाने के लिए ही राजा को एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना पड़ा था।

हालांकि वहाँ के लोग प्रचलित व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे लेकिन उनको मार्ग-दर्शन एवं उनमें जागृति का अभाव था उनको मार्ग-दिखाने एवं क्रान्ति का वातावरण तैयार करने का श्रेय वहाँ के बौद्धिक वर्ग को जाता है जिसने अपनी लेखनी एवं भाषणों से जनता में चेतना जगाई, एवं पुरातन व्यवस्था के विरोध में खड़ा किया। इन महान विद्वानों में रूसों, वाल्टेयर, मोन्टेस्क्यू, एवं अन्य विद्वान भी थे जिन्होंने क्रान्ति को संभव बनाया। उनके अभाव में क्रान्ति का सफल होना संदिग्ध था। इस वर्ग ने राजनीति, धर्म, समाज व्यवसाय आदि से संबंधित विचारों के संचार की गति को तेज कर दिया। उनकी लेखनी से स्वतंत्रता एवं बंधुत्व की भावना का संचार हुआ जिसको प्राप्त करने की अभिलाषा हरेक व्यक्ति में थी।

आर्थिक समस्या के समाधान हेतु राजा द्वारा एस्टैटस जनरल का अधिवेशन बुलाना पड़ा जिसकी कार्यवाही में गतिरोध पैदा हो गया लेकिन क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय सभा बनाकर महत्वपूर्ण निर्णय लिए एवं अन्य सभाओं ने भी अपने कार्यों एवं लेखनी से फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना करते हुए पुरातन व्यवस्था को धराशायी कर दिया।

15.10 अभ्यास कार्यः-

(I) फ्रांसिसी राज्य क्रान्ति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों का वर्णन कीजिऐ।

(II) "फ्रांसिसी क्रान्ति से पूर्व फ्रांस में बौद्धिक क्रान्ति हुई थी।" व्याख्या कीजिऐ।

(III) फ्रांसिसी क्रान्ति के परिणामों पर संक्षिप्त लेख लिखिये।

15.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री-

(i) Hazen, C.D. : *Modern Europe.*

(ii) केटलबी. सी. डी. एम., *आधुनिक काल का इतिहास*

(iii) *Illustrated World Emcyclopedia pp.* 652-655.

(iv) *Reader's Digest Library of Modern Knowledge pp* 1173-1176.

(v) *The New Encyclopedia Britannica, pp.* 978-979 Vol.4.

(vi) Grant and Tempulary : *Europe in the 19th and 20th Centuries.*

(vii) Gooch, Brison. D. : *Eurape in the 19th Century.*

इकाई-16
फ्रान्स की क्रान्ति का प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 फ्रान्स पर प्रभाव

- 16.2.1 स्वेच्छाचारी व निरंकुश बूर्बो राजतन्त्र का अन्त
- 16.2.2 सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव
- 16.2.3 चर्च की सर्वोच्च स्थिति में गिरावट
- 16.2.4 सामन्त वर्ग के महत्व की समाप्ति
- 16.2.5 बुर्जुआ (मध्यम वर्ग) एवम् निम्न मध्यम वर्ग की दशा में सुधार
- 16.2.6 बौद्धिक, वैचारिक व सांस्कृतिक प्रभाव
- 16.2.7 न्याय व्यवस्था पर प्रभाव
- 16.2.8 आर्थिक प्रभाव
- 16.2.9 मानव अधिकारों की घोषणा
- 16.2.10 प्रशासनिक एवम् संवैधानिक सुधार
- 16.2.11 लोक निर्माण कार्य
- 16.2.12 हानिकारक प्रभाव

16.3 इंग्लैण्ड पर प्रभाव

- 16.3.1 क्रान्ति का स्वागत
- 16.3.2 क्रान्ति का विरोध
- 16.3.3 पिट द्वारा इंग्लैण्ड में प्रतिक्रियावादी नीति का क्रियान्वयन
- 16.3.4 व्हिग पार्टी में फूट
- 16.3.5 आयरलैण्ड में राष्ट्रीय आंदोलन
- 16.3.6 आंग्ल साहित्य पर प्रभाव

16.4 यूरोप पर प्रभाव

16.4.1 अधिकारों के लिए संघर्ष का सूत्रपात

16.4.2 क्रान्तिकारी युद्ध

16.4.3 यूरोप में प्रतिक्रिया का युग

16.4.4 सम्मेलनों का युग

16.4.5 यूरोपीय साहित्य पर प्रभाव

16.5 विश्वव्यापी स्थाई प्रभाव

16.5.1 स्वतन्त्रता की भावना

16.5.2 समानता

16.5.3 राष्ट्रीयता की भावना

16.5.4 प्रजातन्त्र की विचारधारा

16.5.5 बन्धुत्व

16.5.6 समाजवाद

16.5.7 शैक्षिणिक क्षेत्र में परिवर्तन

16.6 सार समीक्षा

16.7 अभ्यास प्रश्न

16.8 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में 1789 ई0 की फ्रान्स की महान राज्य क्रान्ति के प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करके आप यह समझ सकेंगे कि :-

1789 की फ्रान्स की महान राज्य क्रान्ति से फ्रान्स की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर क्या परोक्ष अपरोक्ष प्रभाव पड़े ?

फ्रान्स की सीमाओं को लांघ कर इस क्रान्ति ने इंग्लैण्ड व फिर समूचे यूरोप को किस रूप में व कितना प्रभावित किया ?

क्रान्ति के चिरस्थाई विश्वव्यापी प्रभाव क्या रहे जिन्होंने न केवल यूरोप वरन् सम्पूर्ण विश्व इतिहास को कतिपय नूतन आयाम दिये ?

16.1 प्रस्तावना

आधुनिक फ्रांस का इतिहास सन् 1789 ई. की महान फ्रांस क्राति काही विकसित रूप है। इस क्रान्ति ने फ्रांस की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवम् धार्मिक व्यवस्था को समग्र रूप से परिवर्तित कर दिया। वस्तुतः फ्रांस की राज्य

क्रान्ति केवल मात्र एक राष्ट्रीय आंदोलन ही नहीं था वरन् इसके सिद्धान्तों यथा-स्वतन्त्रता, समानता, विश्व बन्धुता के नारों में सम्पूर्ण यूरोप को गुंजायमान कर दिया। इसीलिये कहा गया है कि "यह एक अन्तर्राष्ट्रीय आंदोलन था जिसके उदय से फ्रांस का इतिहास यूरोप का इतिहास बन जाता है तथा फ्रांस का राष्ट्र नायक नेपोलियन यूरोप का नायक बन जाता है।" (देखें-जॉन हाल स्टीवर्टः ए डॉक्यूमैन्ट्री सर्वे ऑफ दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन, पृ0 785) इसी संदर्भ में इस कहावत की प्रासंगिकता भी स्वतः सिद्ध होती दिखाई पड़ती है कि "यदि फ्रांस को जुकाम होता था तो सारा यूरोप छींकता था।" विशद् रूप से देखें तो स्पष्ट है कि फ्रांसिसियों ने जो रक्त बहाया वह मानवता के लिए था, उन्होंने जो कष्ट सहे वे सम्पूर्ण मानव जाति के लिए थे; उनके संघर्ष तथा उनके विचार जिन्होंने संसार की समूची व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया, मानवता की विरासत हैं। ये सभी प्रयत्न फलीभूत हुए। इसी क्रान्ति नें विश्व को प्रजातंत्र, राष्ट्रीयता व समाजवाद की भावना से प्रेरित किया। इस संदर्भ में यह अठारहवीं शताब्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके प्रभाव हमें आज भी दृष्टिगत होते हैं।

ठीक इसके विपरीत कुछ ऐसे भी इतिहासज्ञ हैं जो क्रान्ति के प्रभावों को नैराश्यपूर्ण व हानिकारक मानते हुए क्रान्ति को "एक भूल" तथा फ्रांस व यूरोप के लिए एक "बुरी वस्तु" के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके आरोप हैं कि यह क्रान्ति प्रतिक्रियावादी, प्रजातन्त्र विरोधी और अप्रगतिशील थी। जबकि अन्य इतिहासकारों का मत है कि यह आधुनिक इतिहास में सबसे महान घटना थी, आधारभूत रूप से यह सबके लिए एक 'अच्छी वस्तु' थी और इसने आधुनिक यूरोप के उदारवाद, प्रजातान्त्रिक और प्रगतिशील जीवन की आधारशिला रखीं है। (देखें- जॉन हॉल स्टीवर्डः ए डॉक्यूमैन्ट्री सर्वे ऑफ दि फ्रैन्च रिवोल्यूशन, पृ0 785) इस सम्बन्ध में दोनों ही पक्षों द्वारा युक्ति युक्त तर्क प्रस्तुत किए गये हैं जिनका विश्लेषण करके हम फ्रांस की क्रान्ति के प्रभावों का सही आंकलन करने का प्रयास करेंगे। फ्रांस की क्रान्ति के प्रभावों का उचित अध्ययन करने के लिए हम स्थूल रूप से इन्हें चार भागों में विभक्त कर सकते हैंः-

(1) फ्रांस पर प्रभाव

(2) इंग्लैण्ड पर प्रभाव

(3) सम्पूर्ण यूरोप पर प्रभाव

(4) क्रान्ति के चिरस्थाई विश्वव्यापी प्रभाव

16.2 फ्रांस पर प्रभाव

1789 ई. की फ्रांस की क्रान्ति वस्तुतः फ्रांस की पुरातन व्यवस्था में व्याप्त विविध विकृतियों, विसंगतियों एवम् बुनियादी दोषों के विरूद्ध एक सशक्त प्रतिक्रिया थी अतः इस क्रान्ति में मुख्य रूप से फ्रांस के ही राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवम् आर्थिक जीवन को प्रभावित किया। यह क्रान्ति पुरातन शासन व्यवस्था, असमानता पर आधारित फ्रांसिसी समाज, विलासितापूर्ण अन्य पादरी वर्ग तथा आर्थिक

दीवालियेपन के विरुद्ध एक सशक्त आंदोलन था, जिससे बूर्बों वंश के कुशासन का अन्त कर दिया तथा फ्रांस में प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली का मार्ग खोल दिया। फलतः फ्रांस में एक नवीन समाज का निर्माण प्रारम्भ हुआ। फ्रांस के जीवन पर इस क्रांति के निम्नलिखित प्रभाव पड़ेः-

16.2.1 स्वेच्छाचारी व निरंकुश बूर्बो राजतन्त्र का अन्तः

यह क्रान्ति फ्रांस के बूर्बो राजवंश के स्वेच्छाचारी, निरंकुश व भ्रष्ट शासनतन्त्र को पूर्णतया हिला कर रख देने की दृष्टि से सफल रहीं जो पूर्णतया केन्द्रीकृत, अमर्यादित, भ्रष्ट और व्ययसाध्य था; जहाँ चर्च, सामन्त या कोई अन्य वर्ग ऐसा नहीं था जो राजा की स्वेच्छाचारी प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करता। (देखे-ईश्वरी प्रसादः क्रान्तिकारी यूरोप तथा नेपोलियन का युग, पृ0 28) बूर्बो शासक पूर्णतया स्वेच्छाचारी व निरंकुश थे। वे अपने आप को धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे। जनता व जनहित की कोई परवाह नहीं करते थे। शासक के अत्यधिक केन्द्रीयकरण और पग पग पर राजकीय हस्तक्षेप से जनता को बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। प्रशासन की दृष्टि से सारा फ्रांस 34 'इण्टेण्डेंसीज' (Intendencies) या 'जनरेलटीज' (Generalities) में विभक्त था जिनके प्रशासक सम्राट द्वारा नियुक्त 'इण्टेडेण्ट' कहलाते थे। फ्रांस के ये 34 इण्टेडेण्ट एक प्रकार से फ्रांस के 34 राजा थे जो केन्द्र में सम्राट के बाद प्रान्तों में अपने अमर्यादित आचरण और प्रशासनिक अत्याचारों से फ्रांसिसी जनता द्वारा धृणा की दृष्टि से देखे जाते थे।

1789 ई. की क्रांति ने इस निरंकुश बूर्बो राजतन्त्र को मय इण्टेडेण्टों के जड़ से उखाड फैंका। सम्राट के साथ ही साथ इन इण्टेडेन्टों की निरंकुशता व स्वेच्छाचारिता का भी अन्त हुआ। 1791 ई. के संविधान के अनुसार लोगों की इच्छा व परमात्मा की कृपा से फ्रांस सम्राट को फ्रांसिसी लोगों का शासक' घोषित किया गया। तत्पश्चात फ्रांस के किसी भी राजा ने दैवी अधिकारों का ढ़िढोरा भी नहीं पीटा (दृष्टव्य-जे. हॉलैण्ड रोजः फ्रांस की राज्यक्रान्ति और नेपोलियन पृ0 176-220; सी.डी.एम. कैटल्बीः ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाईम्स, पृ0 33)

16.2.2 सामाजिक व्यवस्था पर प्रभावः

इस क्रांति ने फ्रांस की उस सामाजिक व्यवस्था को भी तहस नहस कर दिया जो असमानताओं, विषमताओं, विशेषाधिकारों, विमुक्ति व रियायत पर आधारित था; जिस समाज में एक ओर ऐसा वर्ग था जो विशेषाधिकारों व अनेक मुखी सुविधाओं से समलंकृत था तो दूसरी ओर ऐसा वर्ग था जो इन सुविधाओं से सर्वथा वंचित उपेक्षा व विपन्नता का जीवन बिताता था। क्रांति ने इस सामाजिक वैषाम्य की जड़ पर प्रहार किया व समाज नये सिरे से संरचित व गठित होता दिखाई दिया। (दृष्टव्य-लियो गर्शायः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नपोलियन, पृ0 33-54; कोबान अल्फरः हिस्ट्री ऑफ फ्रेन्च रिवोल्यूशन, पृ0 18-22; लार्ड एक्टनः रिवोल्यूशनरी आईडियाज इन फ्रांस, पृ0 118)

16.2.4 चर्च की सर्वोच्च स्थिति में गिरावटः

इस क्रांति ने फ्रांस को चर्च की प्रभुत्ता, अनावश्यक निरंकुशता, भ्रष्टाचार आदि से भी मुक्ति दिलाई। चर्च या पादरी वर्ग को फ्रांस की सामाजिक व्यवस्था में 'प्रथमइस्टेट' (वर्ग) माना जाता था। फ्रांस में इनकी संख्या 1 लाख 30 हजार के लगभग थी। इनमें भी समृद्ध व उच्च पादरी वर्ग नें तो तबाही मचा रखी थी। इनके हाथों में चर्च के उच्च पद व आय के अनन्त स्रोत थे। इनका धार्मिक कृत्यों से कोई सम्बन्ध नहीं था। सन्देह व नास्तिका इनके जीवन के मूल मन्त्र थे। ये मठाधीश ज्ञानोयार्जन, धर्म प्रचार व जनकल्याण की अपेक्षा अपना समस्त समय राग रंग व आमोद-प्रमोद के भ्रष्ट कार्यों में लगाते थे। चर्च के पास समस्त देश की भूमि का पांचवा भाग था। इस आय के अतिरिक्त चर्च को भेंट, उपहार व किसानों से मिलने वाले सामन्ती करों के रूप में भी अगणित आय होती थी जबकि इन्हें कर के रूप में राज्य को कुछ भी नहीं देना पड़ता था। चर्च अन्ध विश्वास व पाखण्डवाद का अड्डा बना हुआ था। क्रांति नें चर्च की इस विशिष्ट स्थिति को समाप्त कर दिया। राज्य द्वारा चर्च की भूमि, सम्पति अधिग्रहित कर चर्च को मर्यादित जीवन व्यतीत करने व अपने कर्तव्य पालन के प्रति सचेष्ट होने को विवश किया गया। जनता को लगा कि चर्च अब उनका दमन करने की स्थिति में नहीं रह गया है। फ्रांस में उच्च पादरियों का प्रभाव बहुत कम हो गया। अनेक तो देश छोड कर भाग गये। जो रह गये उन्हें राज्य व संविधान के प्रति स्वामीभक्त बने रहने की शपथ लेनी पडी। चर्च के अधिकारी सरकार के अधिकारी बन गऐ व अब उन्हें अनन्त आय की जगह सरकार से निश्चत वेतन मिलने लगा था। इससे भी वे संयमित जीवन यापन को विवश हो गऐ। चर्च का दर्जा राज्य से नीचा हो गया। फ्रांस में पोप का प्रभाव भी कम हो गया। पादरियों की विलासिता में कमी आई। कैथोलिक चर्च के अतिरिक्त अन्य धर्मानुयायिओं को भी धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई। क्रान्ति ने लोगों में धर्म की भावना को भी कम कर दिया। कट्टर क्रान्तिकारी धर्म के स्थान पर बुद्धि एवम् तर्क की पूजा (Worship of Reason) को अधिक महत्व देने लगे। (दृष्टव्य- मादलाँः फ्रेन्च रिवोल्यूशन, पृ0 175 ; लियो गर्शायः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन, पृ0 33; केटल्बीः ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाईम्स, पृ0 148)

16.2.4 सामन्त वर्ग के महत्व की समाप्तिः

क्रान्ति पूर्व फ्रांस में सामन्त वर्ग बड़ा प्रभावशाली था। इन्हें 'द्वितीय इस्टेट' (वर्ग) का दर्जा प्राप्त था। प्रो0 गर्शाय के शब्दों में- "यह समाज का दूसरा समृद्ध वर्ग था जिसके पास सुख समृद्धि के प्रचुर साधन थे और अगणित विशेषाधिकार व सुविधाएँ थीं। शासन, सेना व चर्च के उच्चतम पद इन्हीं के हाथों में थे। (गर्शायः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन, पृ0 36) वे प्रत्यक्ष कर से मुक्त थे। कृषकों से उन्हें अनेक प्रकार के कर, शुल्क व बेगार मिलती थी। डॉ0 ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं कि "राज्य" चर्च व सामन्तों को कृषकों द्वारा दिये गये करों और देयों के अतिरिक्त अनेक ऐसे कार्य करने पड़ते थे जो सामन्तों के अधिकार थे और कृषकों के कर्तव्य। उदाहरण के लिए कृषकों से पथ-निर्माण इत्यादि के लिए बलात श्रम

लिया जाता था। यह अधिकार 'कार्वी' (Corvee Seignneuriale) कहलाता था। यहीं नहीं, कृषक अपनें जमींदार की चक्की पर अपना आटा पिसवाने, उसके तन्दूर पर अपनी सेंटी सिकवाने, मांस के लिए जमींदार के बूचड़खाने में पशुओं का वध कराने, जमींदार के कोल्हू पर जैतून का तेल निकलवाने उसकी भट्टी में शराब बनवाने के लिए अंगूर भेजने के लिए बाध्य थे। कुलीनों या सामन्तों के ये अधिकार 'बेनातिरीज' (Banalities) कहलाते थे। इन सब कार्यों के लिए किसानों को शुल्क के रूप में काफी पैसा देना पड़ता था और इन कार्यों के लिए प्राय कई मील दूर जाना पड़ता था" (ईश्वरी प्रसादः क्रान्तिकारी यूरोप तथा नेपोलियन का युग, पृ0 34-35) अपनी परम्परागत अयोग्यता और प्रशासन के प्रति उदासीनता के कारण उनकी राजनीतिक शक्ति काफी हद तक समाप्त हो चुकी थी। इसके बावजूद वे स्वयं अथवा अपने कारिन्दों के माध्यम से किसानों का शोषण करने, उन्हें यातनाऐं देने व तिरस्कृत करने के लिए मुक्त थे। क्रांति ने इस सामन्त वर्ग की तानाशाही का जडोन्मूलन कर दिया। क्रान्ति के दौरान क्रान्तिकारियों ने सामन्त वर्ग के सदस्यों को बहुत क्षति पहुंचाई। इनके गढ़-गढ़ियों पर आक्रमण किए गए। उन्हें ध्वस्त किया गया इनकी धनसम्पति भी, छीन लेने के कार्य भी किऐ गये। कुछ सामन्त क्रान्तिकारियों के हाथों दुर्दशा के शिकार बने व कुछ काल के ग्रास। कुछ सामन्त तो अपने सम्मान व प्राणों की रक्षा के लिए फ्रांस को छोड़ कर विदेशों को भाग गऐ। जनसाधारण को सामन्त वर्ग के शोषण व अत्याचार से मुक्ति मिली व सामाजिक वैषम्य का अन्त हुआ। क्रान्ति ने इनकी विशिष्ट स्थिति एवम् 'कार्वी', 'बेनातिरीज' जैसे व अन्य विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया। (दृष्टव्य-सी.जे.एच हेज एण्ड वी थामस भूनः माडर्न हिस्ट्री, पृ0 297; सी.डी. हेजनः माडर्न यूरोप अप टू 1945, पृ0 103-04; हर्नशाः मेन करैन्ट्स ऑफ यूरोपियन हिस्ट्री, पृ0 42)

16.2.5 बुर्जुआ (मध्यम वर्ग) व निम्न् मध्यम वर्ग की दशा में सुधारः

यह फ्रांस के समाज का जनसाधारण वर्ग था। इसे ही 'तृतीय इस्टेट' कहा जाता था। यह वर्ग विशेषाधिकारों व सुविधाओं से वंचित था। इस वर्ग के लोगों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथमतः उच्च मध्यम वर्ग के लोग या 'बुर्जुआ' तथा द्वितीयः शिल्पी कृषक व श्रमिक गण जिन्हें 'पेटी बुर्जुआ' या निम्न मध्यम वर्ग की संज्ञा दी गई थी। फ्रांस की कुल जनसंख्या का 99 प्रतिशत भाग इसी तृतीय वर्ग का था। बुर्जुआ या उच्च मध्यम वर्ग में व्यापारी, साहूकार, उधोगपति, शिक्षक, डॉक्टर, वकील इत्यादि आते थे। सम्पत्ति, शिक्षा, योग्यता व संस्कृति में श्रेष्ठता के उपरान्त भी यह वर्ग सामन्तों, की भांति राज-शासन व सुविधाएँ प्राप्त नहीं था। उच्च पदों के द्वार इनके लिए बन्द थे। अनेक अक्सरों पर इन्हें सामन्तों द्वारा तिरस्कृत व अपमानित होना पड़ता था। इस सामाजिक अब मानना के अतिरिक्त इन्हें कतिपय व्यवसायिक कठिनाईयों का भी सामना करना पड़ता था। सम्राट व सामन्तों की तरफ से इनके व्यापार व्यवसाय पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध तथा अनावश्यक नियन्त्रण व अंकुश थे। इसी बुर्जुआ वर्ग का क्रान्ति में सर्वाधिक हाथ रहा। क्रांति पूर्व फ्रांस के अधिकांश विचारक, लेखक, दार्शनिक, मनीषी व नायक इसी वर्ग से थे एवम् घुटन महसूस करते थे।

तृतीय इस्टेट का निम्नतर वर्ग शिल्पी, कृषक और कृषि-श्रमिकों का था। मशीनों के प्रयोग ने शिल्पी वर्ग की दशा सोचनीय बना रखी थीं। कृषक वर्ग सर्वाधिक उपेक्षित, दरिद्र, विपन्न व त्रस्त था। अधिकांश कृषक भूमिहीन थे व कृषक दास का जीवन बिता रहे थे। गर्शाय लिखता है कि- "खेती का प्रत्येक कार्य यथा बुआई, जुताई, फसल की कटाई, उत्पादन का स्थानान्तरण, बिक्रि आदि सभी पर सरकार का पूरा नियन्त्रण था व कृषक निरा निस्सहाय था" (गर्शाय-दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन, पृ0 50;) रेन के अनुसार "एक कृषक अपनी आय के 100 फ्रैन्क में से 53 फ्रैन्क कर के रूप में राज्य को दे देता था, 14 अपने सामन्त को देता था और 14 अपने चर्च को देता था। बचे हुए 19 फ्रैन्क से वह कर-संग्रहकों को देता व अपना पेट पालता था। इस प्रकार उसे अपनी आय के 80 प्रतिशत से भी अधिक कर के रूप में ही दे देना पड़ता था। (रेनः ऑरिजन डी-ला-फ्रांस-कॉण्टेम्पोरेयर (एल 'आंशिया रिजीम'); इश्वरी प्रसाद- क्रांतिकारी यूरोप तथा नेपोलियन का युग, पृ0 34 से उद्धृत) किसानों को 'कार्वी' (किसानों से लिया जाने वाला बलात् श्रम) और बेनातिरीज (सामन्तों को किसानों से अनेक प्रकार के शुल्क प्राप्त करने विषयक विशेषाधिकार) इत्यादि के कारण भी काफी कष्ट भुगतने पड़ते थे।

क्रान्ति ने सर्वाधिक राहत इसी वर्ग को पहुँचाई। अब इन्हें अपनी योग्यता के अनुरुप शासन व उच्च पदों में भागीदारी प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त हो सका। इन्हें सामन्तों के तिरस्कार व अपमान से भी मुक्ति मिली। राजा चर्च व सामन्तों के अनावश्यक बन्धनों से ये मुक्त हो गये। व्यापार-व्यवसाय पर लगे अनावश्यक प्रतिबन्ध हट गऐ। फलतः यह वर्ग लाभान्वित हुआ। भूमिहीन कृषकों व कृषि दासों की स्थिति सुधरी व राज्य द्वारा इन्हें जीविकोपार्जन हेतु भूमि भी दी गई। अनेक अनावश्यक कर हट गये व करों में समानता आने से इस वर्ग के लोगों ने राहत की सांस ली। कृषकों को कॉर्वी व बेनातिरोन रूपी शोषण से मुक्ति मिली फलतः वह अपने जीविकोपार्जन हेतु अधिक बचा पाने की स्थिति प्राप्त कर सका जिससे अंततोगत्वा उसके जीवन स्तर में सुधार का मार्ग प्रशस्त हुआ। (दृष्टव्य- लियो गर्शायः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन पृ0 54; सी.डी.एम.कैटल्बीः ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाईम्स, पृ0 33-34, डेविड थोमसनः यूरोप सिन्स नेपोलियन, पृ0 25,26)

16.2.6 बौद्धिक, वैचारिक व सांस्कृतिक प्रभावः

फ्रांस के विविध प्रबुद्धवादियों ने अपने विवेकवाद, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानववादी अवधारणा को अपने लेखन व विचार शैली का आधार बना कर तत्कालीन फ्रांस की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विकृतियों पर प्रहार करते हुए साहित्य, समाज, राजनीति, विज्ञान इत्यादि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण क्रांतिकारी विचारों को अभिव्यक्त किया। इनमें माण्टेस्क्यू (1689-1755 ई.), वॉल्टेयर (1694-1778 ई.), रूसो (1712-1778 ई.) तथा फिजियोक्रेट्स (आर्थिक विचारक जैसे-फ्रांकाय क्वेने, जीन द गूर्ने, मर्सियर द ला रेवियर, जेक्स त्यूरगो, ड्यूपान्ट द नेमर्स आदि) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विचारकों ने सशस्त्र राज्य क्रान्ति को एक दर्शन देकर, उसे बौद्धिक सामग्री प्रदान कर जो नैतिक बल प्रदान किया उससे फ्रांस के बौद्धिक विकास में क्रान्तिकारी परिवर्तन आऐ। क्रान्ति नें समूचे फ्रांस में अद्भुत बौद्धिक चेतना का प्रवाह कर दिया

एवम् फ्रांसिसीयों का नैतिक बल उत्तरोत्तर बढ़ा। भाषण, लेखन, प्रकाशन की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। क्रांतिकारी साहित्य की रचना हुई। तर्क को रूढ़ियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाने लगा। अनेक स्कूल, विज्ञान, गणित, मैडीकल शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, शारीरिक शिक्षा व विविध समाज विज्ञानों के अध्ययन, अध्यापन व अनुसन्धान का कार्य किया जाने लगा। इन समस्त बातों का रचनात्मक परिणाम यह निकला कि फ्रांसिसीयों का बौद्धिक विकास हुआ और वे जीवन के प्रति प्रगतिशील व उदारवादी बने। (दृपटव्य- कैटल्वीः हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाईम्स पृ0 33,36; गर्शायः पूर्व0 पृ0 273; डेविड थोमसनः यूरोप सिन्स नेपोलियन, पृ0 24; एलन. जार्ज. एचः फ्रेन्च रिवोल्यूशन, वोल्युम I, पृ0 133-34

16.2.7 न्याय व्यवस्था पर प्रभावः

इस क्रांति ने फ्रांस की उस दोषपूर्ण न्यायिक व्यवस्था को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया जो अत्यन्त भ्रष्ट व विश्रंखलित थी; जिसमें एकरूपता नहीं थी; जिसमें क्रानूनों की कोई प्रमाणिक संहिता नहीं थी; जिसमें लगभग 400 प्रकार के कानून प्रचलन में थे; जिसके अन्तर्गत न्यायालयों के क्षेत्राधिकार अस्पष्ट व अव्यवस्थित थे; न्यायालय भी जिसमें अनेक प्रकार के होते थे और जिनके न्यायधीशों के पद बिका करते थे वे भी प्राय वंशानुगत आधार पर और जिस न्यायिक व्यवस्था में 'लैटर्स द काशे' (Letters de Cachet) जैसी निन्दनीय प्रथा प्रचलित थी। क्रान्ति ने प्रचलित भ्रष्ट न्यायिक व्यवस्था का अन्त कर दिया और सम्पूर्ण फ्रांस के लिए एक सी न्याय व्यवस्था का निर्माण हुआ। कानूनों का संग्रह कर दिया गया। 'लैटर्स द काशे' जैसी कुप्रथा समाप्त कर दी गई। इस सम्बन्ध में नेपोलियन ने उल्लेखनीय कार्य किऐ और न्यायिक क्षेत्र में कतिपय नूतन आयाम स्थापित किऐ। (दृष्टव्य- साल्वेमिनीः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन, पृ0 34; जे. हॉलैण्ड रोजः फ्रांस की राज्य क्रांति और नेपोलियन, पृ0 105)

16.2.8 आर्थिक प्रभावः

क्रांतिकारी फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त जर्जरित, जटिल व बोझिल थी। जनसाधारण व कृषक वर्ग की दशा सोचनीय थी। रूस्टन लिखता है कि - "इस समय अधिकांश किसानों को पेट भर भोजन नहीं मिल पाता था। नमक बहुत ही महंगा था, मांस व मदिरा का आहार सबके लिए सुगम नहीं था। शीतकाल में भी वे चीचड़ों से लिपटे रहते थे। उनके रहने के स्थान कच्चे, प्रकाश व वायु से रहित थे।" (एम.रुस्टनः दि पायोनियर्स ऑफ दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन) इधर कृषक वर्ग की यह दशा थी तो उधर सरकार में आर्थिक गठन व नीति के क्षेत्र में भयँकर शिथिलताऐं थीं। जनसाधारण पर करों का असहम बोझ था। उच्च विशेषधिकार या सुविधालंकृत वर्ग करों के दायित्व से एक प्रकार से मुक्त ही था। कर संग्रह की पद्धति भी अत्यन्त व्ययसाध्य, भ्रष्ट व असंतोषजनक थी। किसानों को कई अनावश्यक कर देने पड़ते थे। जैसे 'गैबेल' नमक कर का पर्याय था। यह अत्यन्त ही अनैतिक, व कष्टकारक कर था। वास्तव में नमक की बिक्री का एकाधिपत्य सरकार ने एक कम्पनी को दे रखा था और प्रत्येक व्यक्ति को एक निश्चित परिमाण में नमक खरीदना आवश्यक था। कम्पनी नमक का मनमाना दाम निश्चित कर देती थी। इधर

जो व्यक्ति निश्चित परिमाण में नमक खरीदने में असमर्थ होता था वह राज्य की ओर से दण्ड पाता था। प्रो0 हेजन ने लिखा है कि- "नमक के अवैध व्यापार के लिए प्रतिवर्ष 30,000 व्यक्तियों को कारावास और 500 व्यक्तियों को मृत्युदण्ड मिलता था।" (हेजन दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन, वोल्युम I, पृ0 70) दूसरी ओर राज परिवार अपनी शान शौकत व अपव्ययता पर पानी की तरह धन बहा रहा था। राज्यकोष रिक्त था। 1789 ई. में क्रान्ति प्रारम्भ होने से पूर्व फ्रांस पर 400 करोड़ पौण्ड का राजकीय ऋण था जिस पर 23 करोड़ 60 लाख पौंड वार्षिक सूद देय था। सूद की यह राशि राज्य की कुल आय से कुछ ही कम थी। (ईश्वरी प्रसादः क्रांतिकारी यूरोप व नेपोलियन का युग, पृ0 37)

क्रांति ने फ्रांस के आर्थिक जीवन को आद्योपान्त परिवर्तित कर दिया। किसानों व जनसाधरण के आर्थिक जीवन स्तर को सुधारने हेतु कई प्रयास किए गऐ। अनावश्यक व अनुचित कर समाप्त कर दिये गये। 'गैबल' जैसे कष्टकारी अनैतिक करों को समाप्त कर करों के क्षेत्र में समानता स्थापित की गई। करों का भार अब सारी जनता पर समानव रूप से फैल गया। राज्य की अर्थव्यवस्था को सम्बल प्रदान करने के लिए कई कदम उठाए गए। पत्र मुद्रा प्रचलित की गई। गिल्ड सिस्टम के कट्टर नियमों का अन्त कर दिया गया। प्रवासी जमींदारों की जमीनें सरकार द्वारा अधिग्रहित करके जरूरतमन्द किसानों को सस्ते दामों पर दे दी गई। चर्च की असीमित सम्पति पर अधिकार करके भी सरकार ने उससे सम्पूर्ण जनता को लाभ पहुँचाया। राजदरबार की फिजूलखर्ची का अन्त हो गया। सम्पूर्ण फ्रांस में दशमलव प्रणाली पर आधारित नाप-तौल के पैमाने चालू किए गये। पैरिस में बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना की गई। असंख्य चुंगी घर समाप्त कर दिऐ गऐ, जो व्यापार-वृष्टि के विकास में बाधक थे। इस प्रकार क्रान्ति के फलस्वरूप फ्रांस में अनेक क्रान्तिकारी आर्थिक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। (दृष्टव्य-हंज एण्ड पी. थामस मूनः माडर्न हिस्ट्री पृ0 297-98)

16.2.9 मानव अधिकारों की घोषणाः

क्रांतिकारियों ने क्रांति की सफलता के उपरान्त मनुष्य के नैसर्गिक, अपरिवर्तनीय और पवित्र अधिकारों की घोषणा करना अनिवार्य माना ताकि शासनतन्त्र के सूत्रधार अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट रह सकें। इनकी आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए इतिहासज्ञ हेंजन लिखते हैं कि- "चूंकि फ्रांस में स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों की ऐतिहासिक परम्परा नहीं थी अतः संविधान की आधारशिला के रूप में इसका होना अत्यावश्यक था।" रूसो की कृति 'सामाजिक संविदा' पर आधारित इस घोषणा के प्रारुप में कुल 17 अनुच्छेद थे। इसमें कहा गया था कि मनुष्य स्वतन्त्र व समान है जनता ही प्रभु है, कानून जनइच्छा की अभिव्यक्ति है, और इनके निर्माण हेतु जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों द्वारा भाग लेने का अधिकार है और अधिकारी गण उसी सत्ता का उपभोग कर सकते हैं जो कानून द्वारा निश्चित रूप से उन्हें दे दी जाती है। इसके अतिरिक्त विविध स्वतन्त्रताओं का भी उल्लेख किया गया जैसेः वैक्तिक स्वतन्त्रता, भाषण व विचाराभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, सम्पति सुरक्षा व अत्याचार के विरोध की स्वतन्त्रता आदि। सारांश में यह घोषणा स्वतन्त्रता समानता व जनता के प्रभुत्व की घोषणा थी जो सम्पूर्ण मनुष्य मात्र के लिए, सभी

कालों के लिए, प्रत्येक देश के लिए और सारे संसार के लिए उदाहरण स्वरूप थी और समस्त संसार में लागू की जा सकती थी। लियो गर्शाय लिखते हैं कि- "यह घोषणा पुरातन व्यवस्था की मृत्यु का प्रमाण पत्र थी और फ्रांस के लिए एक नवीन जीवन की आशा थी।" (गर्शायः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन, पृ0 125) ग्राण्ट एण्ड टैम्परली इसके महत्व का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि- "आधुनिक राज्य व्यवस्था भी इससे प्रभावित हुई। बाद के वर्षों के लिए यह एक उदारता का चार्टर बन गया। जब कभी किसी देश में लोग मानव अधिकारों की चर्चा करते हैं तो उन्हें फ्रांस की इस घोषणा का स्मरण हो आता है।" (ग्राण्ट एण्ड टेम्परलीः यूरोप इन दि नाइन्टीय एण्ड ट्वन्टीपथ सैन्चु रीज, पृ0 24) हैनरी लिटल फील्ड सीखे इतिहासज्ञों ने तो इस घोषणा की तुलना ग्रेट ब्रिटेन के मैग्नाकार्टा (1215 ई.), बिल ऑफ राईट्स (1688 ई.), अमेरीका की स्वतन्त्रता घोषणा (1776 ई.) आदि से करते हुए इसे यूरोपीय इतिहास की एक मूल्यवान निधि बताया हैं। (दृष्टव्य-हैनरी लिटल फील्ड हिस्ट्री ऑफ यूरोप, पृ0 105)

16.2.10 प्रशासनिक व संवैधानिक सुधारः

फ्रांस की पुरातन शासन व्यवस्था जीर्ण-शीर्ण एवम् दोषपूर्ण थी जिसके पुनर्गठन व सम्पूर्ण साम्राज्य के प्रशासन में सुव्यवस्था व एकरूपता लाने के लिए क्रान्ति की सफलता के उपरान्त राष्ट्रीय संविधान सभा द्वारा कई कार्य किये गये। सम्पूर्ण फ्रांस को 83 विभागों (Departments) में विभक्त किया गया। पुराने इण्टेडेण्टों को समाप्त करके उन्हें 374 जिलों (Cantons) में विभक्त कर इन जिलों को 44,000 कम्यूनों (Communes) में बाँट दिया गया। कम्यूनों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान कर दी गई। नये कैन्टोनों व कम्यूनों में प्रान्तीय व स्थानीय कौन्सिल्स का गठन किया गया जिनमें जन निर्वाचित प्रतिनिधि रखे गये। इस प्रकार के प्रशासनिक सुधारों ने फ्रांस में प्रशासनिक सुव्यवस्था और सत्ता के विकेन्द्रीकरण को सम्भव बनाया व शासन पर राजा का प्रत्यक्ष प्रभाव समाप्त प्रायः सा हो गया। 1791 के संविधान द्वारा जहाँ फ्रांस में संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना, एक सदन वाली व्यवस्थापिका का गठन आदि किया गया वहीं 1795 ई. में एक नवीन संविधान द्वारा फ्रांस में प्रथम गणतन्त्र की स्थापनास की गई। प्रशासनिक व संवैधानिक सुधारों की दृष्टि से ये उपलब्धियाँ फ्रांस के लिए अच्छे संकेत थे। (दृष्टव्य-लियो गर्शायः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन, पृ0 148)

16.2.11 लोक निर्माण कार्यः

क्रान्ति काल में प्रशासन ने अनेक लोक निर्माण कार्यों की ओर भी ध्यान दिया। निर्धन व भूमिहीन कृषकों को सस्ती दरों पर भूमि वितरित की गई। कृषि उत्पादन के साधनों का वर्गीकरण किया गया, फसलों के लिए कृत्रिम जल सिंचवाई के साधनों का विकास किया गया। दलदली व गैर कृषि योग्य भूमि को साफ करा कर कृषि योग्य भूमि का विस्तार किया गया। इसी प्रकार व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहन देने के लिए आवागमन के साधनों का विकास किया गया।

16.2.12 क्रान्ति के हानिकारक प्रभावः

जहाँ क्रान्ति के अनेक लाभदायक प्रभाव परिलक्षित हुए वहाँ दूसरी ओर क्रान्ति के कतिपय कुप्रभाव भी दृष्टिगोचर हुऐ। इन्हीं कुप्रभावों को आधार बना कर कुछ इतिहासकारों ने क्रान्ति की आलोचना की है और इसे प्रतिक्रियावादी प्रजातन्त्र विरोधी, अप्रगतिशील आदि कह कर इसकी भर्त्सना की है। स्थूल रूप से क्रान्ति के मुख्य कुप्रभाव निम्नलिखित रहेः-

(i) क्रान्ति के दौरान फ्रांस में जनसाधारण को अनेकानेक कष्ट व परेशानियों झेलनी पड़ीं। असंख्य लोग मृत्यु की गोद में सुला दिए गये। रक्तपात नें फ्रांस की धरती को रक्त रंजित कर दिया। सामन्तों, जमींदारों के भवनों, गढ़ों आदि को आग लगा दी गई, फसलें नष्ट कर दी गई। व्यापार उद्योग-धन्धों को भी क्षति पहुंची। फ्रांसिसियों के आर्थिक कष्टों में बढ़ोतरी हुई। 'आतंक का राज्य' के दौरान असंख्य निरपराध लोगों को 'गिलोटिन' कर दिया गया। सर्वत्र जन-धन की व्यापक क्षति हुई।

(ii) लम्बे समय तक फ्रांस में अशान्ती, अव्यवस्था एवम् आराजकता का बोलबाला रहा।

(iii) विदेशी प्रतिक्रियावादी राज्यों द्वारा फ्रांस की क्रान्ति का अंत करने के लिए युद्ध छेड दिए गये। ये युद्ध लगभग 23 वर्षों तक चलते रहे। इनसे फ्रांस के आर्थक विकास पर प्रतिकूल असर पड़ा।

(iv) क्रान्तिकारी फ्रांस को कोई चिरस्थाई संविधान दे पाने में असफल रहे।

(v) प्रजातन्त्र के आदर्श को पूर्णतः कभी भी क्रियान्वित नहीं किया गया। 'आतंक का राज्य' के दौरान तो प्रजातन्त्र व न्याय को ताक पर रख दिया गया।

(vi) मानव अधिकारों की घोषणा नें जनसाधारण में अपने अधिकारों के प्रति तो जागरुकता पैदा कर दी किन्तु, उन्हें कर्तव्य बोध कराने का रंच मात्र भी प्रयास नहीं किया गया।

(vii) यद्यपि सामाजिक वैषम्य दूर करने के कई सार्थक प्रयास किए गये थे किन्तु, इनमें से कोई भी प्रयास जन साधारण में जाति व वर्ग भेद की दरार को पूर्णतः न मिटा सका।

उपर्युक्त कुप्रभावों या विसंगतियों के बावजूद 1789 ई. की महान राज्य क्रान्ति ने फ्रांसिसीयों को एक नयी जीवन शैली। चिन्तन व कार्य दिशा प्रदान की। यद्यपि सब कुछ पूर्णतया नहीं बदला जा सका तथापि इस दिशा में ठोस व काफी हद तक सफल प्रयास किये गये व परिवर्तन के सिद्धान्त की सार्थकता को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। कतिपय कुप्रभावों के बावजूद स्वतन्त्रता, समानता के साये में फ्रांस विकास व उज्जवल भविष्य के नूतन पथ पर अग्रसर होता दिखाई दिया।

16.3 इंग्लैण्ड पर प्रभाव

16.3.1 क्रान्ति का स्वागतः

प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में फ्रांस की 1789 ई0 की क्रान्ति का खुले हृदय से स्वागत किया गया। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री पिट दी मंगर (Pit the Younger) भी क्रान्ति के प्रति सहानुभूति रखते थे। इंग्लैण्ड की प्रजा ने इस क्रान्ति का मुक्त हृदय से स्वागत इस कारण भी किया चूंकि उनका ऐसा मानना था कि इस क्रान्ति के फलस्वरूप फ्रांस में भी इंग्लैण्ड जैसा प्रजातंत्र स्थापित हो जायेगा व जनता को लोकतान्त्रिक अधिकार प्राप्त होंगे। वर्डज़वर्थ (Wordsworth) और कौलरिज (coleridge) जैसे महाकवियों ने इस क्रान्ति में नवीन युग का सूत्रपात अनुभव किया एवम् अपनी प्रसन्नता अनुभव की। प्रगतिशील, उदारहृदय पादरियों में क्रान्ति के पक्ष में जनमत तैयार किया व तद्विषयक प्रचार भी किया। बिहगों ने इसकी तुलना 1688 ई0 की शानदार क्रान्ति (Glorious Revolution) से करते हुऐ इसे उससे मिलती जुलती क्रान्ति बताया। दृष्टव्य- वार्नर, मार्टिन एण्ड मयूरः दि न्यू ग्राउन्ड वर्क ऑफ ब्रिटिश हिस्ट्री, पृ0 671-72)

16.3.2 क्रान्ति का विरोधः

परन्तु, जैसे-जैसे क्रान्ति का स्वरूप उग्र होता चला गया और हिंसा प्रमुख तत्व के रूप में उभरती दिखाई दी, इंग्लैण्ड ने इसका विरोध करना शुरू कर दिया। सितम्बर हत्याकाण्ड, आंतक का राज्य, सम्राट व साम्राज्ञी का वध आदि कतिपय ऐसी घटनाऐं थीं। जिन्होंने शीघ्र ही क्रान्ति के प्रति इंग्लैण्ड का मोह भंग कर दिया। इंग्लैण्ड इस बात से आशंकित होने लगा कि कहीं फ्रांस की इस हिंसात्मक क्रान्ति का प्रभाव इंग्लैण्ड के संवैधानिक राजतन्त्र को क्षत विक्षत न कर दे। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री पिट नें भी अब क्रान्ति की खुली आलोचना शुरू कर दी। अगले ही वर्ष सन् 1790 ई. इंग्लैण्ड के एक व्हिग नेता बर्क नें 'Reflections on the french Revolution' नामक पुस्तक लिख कर फ्रांस की क्रान्ति की तीखी आलोचना कर डाली। उसने यह निष्कर्ष निकाला कि फ्रांसिसी क्रान्ति का परिणाम होगा- "अव्यवस्था और आराजकता।" (दृष्टव्य-बर्कः रिफ्लैक्शन्स ऑन दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन, प्राक्कथन)

16.3.3 पिट द्वारा इंग्लैण्ड में प्रतिक्रियावादी नीति का क्रियान्वयनः

प्रधानमन्त्री पिट नें इंग्लैण्ड में इस क्रान्ति के प्रभाव को अंकुशित और नियन्त्रित करने के लिए प्रतिक्रियावादी नीति को कार्यन्वित किया। उसनें समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता, राजनीतिक सभाओं और भाषणों आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिये। संदिग्ध विदेशियों पर कड़ी निगाह रखी जाने लगी। सभी प्रकार के राजनीतिक व संवैधानिक सुधारों को कुछ काल के लिए स्थगित कर दिया गया। मजदूरों द्वारा संगठन का निर्माण करना भी प्रतिबन्धित कर दिया गया। इन सभी प्रतिबन्धों के बावजूद भी क्रान्ति की भावनाओं से उत्प्रेरित होकर इंग्लैण्ड की जनता संसदीय सुधारों की मांग को लेकर आंदोलन करती रही।

16.3.4 व्हिग पार्टी में फूट

क्रान्ति का एक कुप्रभाव इंग्लैण्ड की राजनीति पर यह दृष्टिगोचर हुआ कि इंग्लैण्ड के एक प्रमुख राजनीतिक दल व्हिग पार्टी में फूट पड़ गई। इस पार्टी का एक मुख्य नेता फॉक्स क्रान्ति का समर्थक था और दूसरा नेता बर्क इसका कट्टर विरोधी था। इसलिए उनमें सवैंधानिक मतभेद उत्पन्न हो गया। परिणामतः इस फूट से व्हिग पार्टी पूर्वापेक्षा दुर्बल हो गई।

16.3.5 आयरलैण्ड में राष्ट्रीय आंदोलनः

फ्रांस की क्रान्ति नें इंग्लैण्ड के प्रभुत्व वाले आयरलैण्ड की आयरिश प्रजा में राष्ट्रीयता की भावना को जगा दिया। इंग्लैण्ड के प्रभुत्व से अपने आपको स्वतन्त्र कराने के लिए आयरिश लोगों नें ब्रिटेन के विरूद्ध स्वतन्त्रता आंदोलन छेड़ दिया। क्रान्ति की सफलता से उत्साहित फ्रांस आयरिश लोगों को नं केवल इस हेतु उकसा रहा था वरन् वह उन्हें सहायता भी दे रहा था। वस्तुतः आयरिश स्वतन्त्रता संग्राम का मूल प्रेरणा स्त्रोत फ्रांस की सन् 1789 ई0 की क्रान्ति ही थी।

16.3.6 आंग्ल साहित्य पर प्रभावः

इस क्रान्ति ने आंग्ल भाषा के साहित्य को भी परोक्ष-अपरोक्ष में खूब प्रभावित किया। क्रांति के पक्ष और विपक्ष में प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा गया। कूपर, वर्डज़वर्थ, कौलरिज, शैली और बायरन आदि कवियों के साहित्य पर क्रान्ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस दृष्टि से बर्क द्वारा लिखित 'रिफ्लैक्शन्स ऑन फ्रेन्च रिवोल्यूशन' पेन रचित 'राईट्स ऑफ मैन' और सदे द्वारा रची गई 'लाईफ ऑफ नेल्शन' आदि कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

16.4 सम्पूर्ण यूरोप पर प्रभाव

इस क्रान्ति के प्रभाव मात्र फ्रांस या इंग्लैण्ड तक ही सीमित नहीं रहे वरन् अतिशीघ्र ही समग्र यूरोप भी इस क्रान्ति की लहर से प्रभावित होता दिखाई दिया। इस संदर्भ में हैनरी लिटल फील्ड नें ठीक ही लिखा है कि- "यह एक सम्पूर्ण यूरोपीय आंदोलन था जो फ्रांस में आरम्भ हुआ तथा नेपोलियन के काल में यूरोप में फैल गया एवम् जिसने फ्रांस के बाद यूरोप में भी पुरातन व्यवस्था की जड़ों पर प्रहार किया" (हैनरी डब्लू. लिटलफील्डः हिस्ट्री ऑफ यूरोप (1500-18481, पृ0 101) फ्रांस की क्रान्ति के यूरोप पर पड़े प्रभावों को अग्रंकित बिन्दुओं में विभक्त कर देख सकते हैं:-

16.4.1 अधिकारों के लिए संघर्ष का सूत्रपात

क्रान्तिकारी के स्वतन्त्रता, समानता व बन्धुत्व आदि नारों नें समूचे यूरोप में एक स्फुरणा भी जागृत कर दी। यूरोप भर में निरंकुश राजतन्त्रों के सिंहासन डोलने लगे व जनसाधारण द्वारा स्थान-स्थान पर अधिकारों की मांग को लेकर व्यापक जागृति आ गई। यूरोप भर में राजनीतिक अधिकारों की मांग को लेकर जन आंदोलन होने लगे।

16.4.2 क्रान्तिकारी युद्ध

फ्रांस में क्रान्ति की सफलता से फ्रांस के पड़ौसी देश भयत्रस्त हो गये। उन्होंने फ्रांस का विरोध करना शुरू कर दिया। फ्रांस के प्रवासी कुलीनों, सामन्तों, पादरियों आदि ने भी यूरोप भर के राजा महाराजाओं को फ्रांस के विरूद्ध उत्तेजित करने का कार्य शुरू कर दिया। परिणामतः सन् 1792 से फ्रांस के विरूद्ध क्रान्तिकारी युद्धों की शुरूआत हुई और आगामी 23 वर्षों तक यूरोप इन युद्धों से त्रस्त रहा। इससे यूरोपीय देशों को असीम जन धन की हानि हुई। नेपोलियन क्रान्ति का रक्षक बना यूरोप से जूझता रहा। इंग्लैण्ड नें चार बार उसके विरूद्ध संगठन स्थापित किये परन्तु, नेपोलियन को पराजित करना कोई सहज कार्य नहीं था। अन्ततोगत्वा सन् 1814 में बाटरलू के मैदान में मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेनाऐं नेपोलियन को अन्तिम व निर्णायक रूप से पराजित करने में सफल हो सकीं तब कहीं जाकर यूरोप ने शान्ती व राहत की सांस ली।

16.4.3 यूरोप में प्रतिक्रिया का युगः

क्रान्ति व क्रान्तिजनित विचारों से क्षुब्ध यूरोप के निरंकुश शासकों ने इन्हें समूल नष्ट करने के उद्देश्य से प्रतिक्रियावादी नीतियों को कार्यान्वित करना शुरू कर दिया। 1815 की वियना कांग्रेस के समस्त मुख्य निर्णयों के मूल में क्रान्ति जनित विचारों को नष्ट करना और फ्रांस को अंकुशित व नियन्त्रित करना ही प्रधान ध्येय रहा। सन् 1815 से 1845 तक आस्ट्रिया के चांसलर मैटरनिस नें तो इन उदारवादी विचारों व कार्यों को नष्ट करने के लिए एक के बाद एक ऐसे अनेक कार्य संपादित किये जिनके कारण इस युग को 'प्रतिक्रिया के युग' के नाम से ही जाना जाने लगा। इस समग्र प्रतिक्रिया के मूल में फ्रांस व उसकी क्रान्ति का भय अन्तर्निहित था।

16.4.4 सम्मेलनों का युगः

इस क्रान्ति के उपरान्त यूरोप में ऐसा वातावरण बना कि सर्वत्र युद्ध के बादल मंडराते रहे और युद्धों ने यूरोप को त्रस्त कर दिया। अनवरत युद्धों से तंग आकर यूरोप के राजनीतिज्ञों ने आपसी झगड़ों व विवादों का निपटारा युद्ध द्वारा न करके शान्तीपूर्ण विचार विमर्श द्वारा करने का निर्णय लिया और इसकी क्रियान्विति के लिए सन् 1818 से 1822 के मध्य एक्स-ला-शैपेल (1818 ई.), ट्रोपो (1820 ई.), लाइबेख (1821 ई.), वैरोना (1822 ई.), सैन्ट पीटर्सबर्ग (1825 ई.) आदि स्थानों पर यूरोपीय राष्ट्रों के सम्मेलन हुए जिन्हें 'सम्मेलनों द्वारा कूटनीति' का सम्बोधन दिया गया। यद्यपि इन से कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी तथापि इन सम्मेलनों नें अपरोक्ष में आधुनिक संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधारशिला तैयार कर दी।

16.4.5 यूरोपीय साहित्य पर प्रभावः

क्रान्ति व क्रान्तिजनित विचारों से प्ररेणा पाकर यूरोप के विद्वानों ने उच्च कोटि के क्रान्तिकारी साहित्य का प्रणयन किया। इन विद्वानों नें अपनी रचनाओं के द्वारा क्रान्ति जनित विचारों यथा स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, राष्ट्रीयता आदि की भावनाओं को आम जनता तक पहुंचाने का प्रयत्न किया। इन रचनाओं मे विक्टर हूगो की 'ला मिजरेबल' सदे की 'जोन ऑफ आर्क' वर्डजवर्थ की 'प्रीयूल्ड', शैली की 'मिस्टेक

ऑफ अनाकी आदि रचनाएं अपने आप में यूरोप ही नहीं विश्व की श्रेष्ठ क्रान्तिकारी साहित्यक रचनाएँ मानी जाती हैं।

16.5 विश्वव्यापी स्थाई प्रभाव

फ्रांसीसी क्रान्ति कोई स्थानीय घटना नहीं थी। इसने नं केवल फ्रान्स व यूरोप ही वरन् समूचे विश्व को भी प्रभावित किया। फ्रांस का उदाहरण पहले यूरोप का और फिर वहां से सम्पूर्ण विश्व की प्रेरणा का स्त्रोत बना। गूच लिखते हैं कि "इसने विश्व में सदियों से चली आने वाली व्यवस्था का अन्त करके एक ऐसी शक्ति को उत्पन्न किया जिसके फलस्वरूप एक नई सभ्यता का जन्म हुआ।" (कैम्ब्रिज माडर्न हिस्ट्री, पृ0 382) इस संदर्भ में एच0ए0 डेविस के ये विचार भी उल्लेखनीय हैं कि- "1917 की रूसी क्रान्ति से पूर्व और कुछ अंशों में उसके बाद भी इस क्रान्ति ने संसार की अधिकांश महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभावित किया।" (एन आऊटलाईन हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड, पृ0 445) फ्रांसीसी क्रान्ति के निम्नलिखित स्थाई व विश्वव्यापी प्रभाव पड़े:-

16.5.1 स्वतन्त्रता की भावनाः

फ्रांस की क्रान्ति के मुख्य उद्घोषों में से एक स्वतन्त्रता का उद्घोष था। क्रान्ति के बौद्धिक अग्रदूत रूसों नें अपनी कृति 'सामाजिक संविदा' में लिखा है कि मनुष्य जन्म के समय स्वतन्त्र था, किन्तु, बाद में वह कई तरह की जंजीरों में जकड़ गया। स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए क्रान्तिकारीयों नें पुरातन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक परम्पराओं के जाल को जड से उखाड फैंका। इसी क्रम में उन्होंने मानव अधिकारों की घोषणा की तथा राजा के दैवी अधिकारों का खण्डन किया। सामाजिक वर्ग भेद को समाप्त कर पादरी व सामन्त वर्ग के शोषण व अत्याचारों से जनता को स्वतन्त्रता मिली। कानून के समक्ष मनुष्य की समानता को स्थापित किया गया। राष्ट्रीय सभा द्वारा 'मानव अधिकारों की घोषणा' नें इस तथ्य पर बल दिया कि सर्वाधिक सम्पन्नता जनता में निहित है और कानून केवल जन इच्छा की अभिव्यक्ति हैं। शासन तन्त्र को इस प्रकार चलाया जाये कि जनता का अधिकाधिक हित हो और उसकी स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार की आंच नहीं आऐ।

फ्रांसीसी क्रान्ति का दावा था कि जनता को अपने आप ही स्वयं पर राज्य करना चाहिए और शासन केवल 'जनता के लिए' ही नहीं, अपितु 'जनता द्वारा' भी होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब जनता स्वतन्त्रता का उपभोग कर रही हो। इस स्वतन्त्रता की विचारधारा नें विश्व भर में 'जंगल की आग' का काम किया। स्वतन्त्रता की विचारधारा समूची मानवता की प्रतिनिधि बन गई तथा दुनिया भर के सुधारकों व क्रान्तिकारियों का मूल मन्त्र बनती दिखाई दी। स्वतन्त्रता विश्व की परिपाटी बन गई। केवल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही नहीं वरन् सम्पति की स्वतन्त्रता, वोट देने के अधिकार की स्वतन्त्रता, सरकारी अधिकारियों के कार्यों की जांच करना, उत्तरदायी सरकार की स्थापना, लेखन, भाषण, प्रकाशन और विचाराभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता

तथा नागरिक व राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए विश्व भर में आंदोलन होने लगे।

16.5.2 समानता

फ्रांसीसी क्रान्ति नें राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक समानता की भावना को जन्म दिया। मानव अधिकारों की घोषणा नें समानता के सिद्धान्त की सम्पुष्टी कर दी। अधिकार युक्त व अधिकार विहीन वर्गों का अन्त कर सामाजिक समानता को स्थापित किया गया। विधि या कानून के समक्ष सबकी समानता को स्वीकारा गया। सरकारी नियुक्तियों में भी समानता व योग्यता को कसौटी बना दिया गया। फ्रांस की क्रान्ति का दावा था कि प्रत्येक मनुष्य कानून के समक्ष समान है। जन्म और धन पर आधारित विशेषाधिकारों को नकार दिया गया। परिणामतः मुजारेदारी, सामन्तवादी प्रतिबन्ध और व्यापारिक संघों द्वारा स्थापित सारे प्रतिबन्ध समाप्त कर दिये गये। धार्मिक सहिष्णुता का मार्ग प्रशस्त हुआ। समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता स्थापित हुई व प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को समानता के आधार पर मान्य ठहराया गया। सन् 1792 के 'स्त्रियों के अधिकारों की मान्यता' (Vindication of the rights of woman) के प्रस्ताव द्वारा मेरी वुलस्टोन-क्राफ्ट नें मांग की कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त हों। यह विचारधारा भी समूचे विश्व को प्रभावित करने में सफल रही और इस सिद्धान्त नें विश्व के इतिहास पर अमिट प्रभाव छोडा।

16.5.3 राष्ट्रीयता की भावनाः

फ्रांस की क्रान्ति नें ही विश्व को 'राष्ट्रीयता' नाम की प्रबल विचारधारा दी जिसने समग्र विश्व में तहलका मचा दिया। क्रान्ति से पूर्व सामन्तों व राजा के प्रति स्वामीभक्ति ही देशभक्ति थी। क्रांति नें फ्रांस के राज्य को एक राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया। जब क्रान्ति का विरोध करने के लिए यूरोपीय देशों नें फ्रांस के विरूद्ध युद्ध छोड दिये तो फ्रांसीसी एक प्रबल राष्ट्रीय भावना से उत्प्रेरित होकर क्रान्ति और अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए संघर्ष में कूद पड़े थे। 11 जून सन् 1792 को 'पितृभूमि पर आपत्ति है' की घोषणा से लोगों में राष्ट्रीयता की भावना नें जोश मारा और फ्रांस को अपने शत्रुओं से टक्कर लेने का हौसला मिला। यूरोप के अन्य देशों पर फ्रांस के आक्रमण के कारण वहाँ की राष्ट्रीयता की भावना जागृत हो गई। 'प्रायद्वीपीय युद्ध' के मध्य स्पेन व पुर्तगाल में यही भावना जागृत हो गई। नेपोलियन के मास्को अभियान के समय इसी भावना ने रूसीयों के हृदय में नेपोलियन से संघर्ष का साहस व हौसला पैदा किया। इसी भावना के बल पर प्रशा और आस्ट्रीया नें नेपोलियन का कट्टर विरोध किया और इसी प्रभावशाली भावना के कारण ही इंग्लैण्ड फ्रांस को क्रान्तिकारी युद्धों में पराजित कर सका। फ्रांसिसी क्रान्ति द्वारा पैदा की गई इसी भावना में इटली व जर्मन वासियों को अपने प्रदेशों के एकीकरण के लिए एक लम्बे समय में भी यही भावना अन्तर्निहित थी। यही बात बैल्जियम, सर्बिया, ग्रीस, रूमानिया, बल्गेरिया के साथ हुई। इसी सिद्धान्त ने रूस को तब खूब परेशान किया जब पोलैण्डवासियों में अपनी स्वतन्त्रता के लिए रूस से संघर्ष किया। 1849 ई0 में कासुय के नेतृत्व में हुआ हगरी का विद्रोह भी राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत था। यह कहना, अतिश्योक्ति नहीं होगा कि 19 वीं शताब्दी के यूरोप का इतिहास

इसी राष्ट्रीयता के संघर्ष का इतिहास है। (दृष्टव्य-हेहयेर बैलकः दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन, भूमिका)

16.5.4 प्रजातन्त्र की विचारधाराः

यह क्रान्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव था। 1789 ई. से पूर्व इंग्लैण्ड व स्विटजरलैण्ड के अतिरिक्त लगभग समूचे यूरोप में निरंकुश, स्वेच्छाचारी, सर्वाधिकार सम्पन्न शासकों का ही शासन था। शासन में जनता की कोई भागीदारी नहीं थी। क्रान्ति के महान् दार्शनिक रूसों नें ही सर्वप्रथम यह आवाज बुलन्द की कि सर्वसत्ता जनता में ही निहित हैं। अगर नेपोलियन फ्रांस का सम्राट बना तो राजा के दैवी अधिकारों से नहीं वरन् जनता की इच्छा से बना था। क्रान्ति नें यह बात भली-भांति स्थापित कर दी कि शासन प्रजा के लिए ही नहीं वरन् प्रजा के द्वारा भी होना चाहिऐ, और वही सच्चा प्रजातन्त्र अर्थात् लोकतन्त्र है। डेवी का कथन है कि- 'उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास प्रजातन्त्र की ओर धीमी परन्तु, निश्चित प्रगति का इतिहास है तथा इस उन्नति के लिए बड़े भाग पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से फ्रान्स की क्रान्ति का प्रभाव है।'' (क्रोपटकिनः दि ग्रेट फ्रेन्च रिवोल्यूशन, पृ0 52 से उद्धृत) फ्रांस की क्रान्ति से प्रेरणा पाकर विश्व भर में लोकतान्त्रिक अधिकारों की मांग उठाई जाने लगी और विश्व में कई स्थानों पर प्रजातन्त्र की स्थापना हो सकी। जहाँ कहीं राजतन्त्र अधिक सुदृढ़ स्थिति में अस्तित्वमान था वहां भी संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना होना प्जातन्त्र की विजय ही कही जानी चाहिऐ।

16.5.5. बन्धुत्वः

फ्रांस की क्रांति के स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीयता आदि विचारों नें नं केवल फ्रांस को ही बन्धुत्व के बन्धन में बांधा वरन् इससे समूचे विश्व ने प्रेरणा ली। संसार भर के विविध राष्ट्रों के लोगों को बन्धुत्व के महत्व का ज्ञान मूलतः फ्रांस की 1789 ई0 की क्रान्ति नें ही कराया था।

16.5.6 समाजवाद

इस क्रांति नें विश्व में समाजवाद का भी प्रसार किया। क्रांतिकारियों के 'समानता' और 'बन्धुत्व' के नारों नें अपरोक्ष में समाजवादी धारणा को पुष्टी प्रदान की। उन्होंने विश्व बन्धुत्व का नारा देकर कार्लमार्क्स के लिए यह नारा लगाने की पृष्ठ भूमि तैयार कर दी- ''दुनिया भर के मजदूरों एक हो जाओ''। क्रोपोटकिन लिखता है कि ''यह क्रान्ति समस्त वर्तमान विचारधाराओं- साम्यवाद, आंतकवाद, समाजवाद आदि का मूल एवम् स्रोत थी।'' (दृष्टव्य-क्रोपोटकिनः पूर्व0 पृ0 573-81)

16.5.7 शैक्षणिक क्षेत्र में परिवर्तनः

नेपोलियन ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया था। पैरिस में विश्वाद्यालय की स्थापना की गई। इसके द्वारा शैक्षणिक एकरूपता स्थापित करने के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सका। बाद में इसी पैरिस विश्वविद्यालय के नमूने पर ही लन्दन, बर्लिन और न्यूयार्क विश्वविद्यालयों की स्थापना कर उच्च अध्ययन निमित अन्तराष्ट्रीय स्तर के संस्थान स्थापित किये गये।

16.6 समीक्षा

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि फ्रांस की सन् 1769 ई. की क्रांति विश्व इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। इसने न केवल फ्रांस के जनजीवन को ही प्रभावित किया अपितु सम्पूर्ण यूरोप तथा कुछ अर्थों में समूचा विश्व इस घटना से प्रभावित हुआ। यह क्रांति विचार, समाज एवम् राजनीति के क्षेत्रों में एक ऐसी विजय थी जिसे एक राष्ट्र ने स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन, वर्ग विशेषाधिकार, सामाजिक वैषम्य, चर्च की प्रभुत्ता, सामन्तशाही और पुरातन व्यवस्था के ऊपर प्राप्त किया था। यह पीड़ित और उपेक्षित मानवता के युगों से संचित हो रहे दुख दर्दों का भंयकर विस्फोट था। यह निर्धन, पीडित, प्रताडित और गन्त्रणात्रस्त शोषित जनता के हृदयों से उठी ज्वाला थी जो शीघ्रातिशीर्ध सम्पूर्ण यूरोप में फैल गई। क्रांति जनित स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व व प्रजातंत्र के विचारों ने यूरोप भर में एक राजनीतिक चेतना व स्फुरणा जागृत कर दी एवम् यूरोप भर में अधिकारों की मांग को लेकर आंदोलन होने लगे। इसके प्रत्युत्तर में शीघ्र ही यूरोप में क्रांतिकारी युद्धों व प्रतिक्रिया के युग का सूत्रपात होता दिखाई दिया व अन्त तोगत्वा यूरोप को 'सम्मेलनों द्वारा कूटनीति' (संयुक्त व्यवस्था) के मार्ग पर अग्रसर होने को विवश होना पडा जिसने अनजाने में ही संयुक्त राष्ट्र संघ की आधारशिला रखने का कार्य निष्पादित कर दिया। क्रांति जनित स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, राष्ट्रीयता, समाजवाद आदि के विचार तो इतने लोकोप्रिय व प्रभावी बने कि हवा के वेग से सम्पूर्ण विश्व में प्रवाहित होते दिखाई दिये जिनका परिणाम यह निकला कि विश्व भर में राष्ट्रवादी आंदोलनों की बाढ़ सी आ गई व ऐसा लगने लगा कि जैसे सर्वत्र राजनीतिक व सवैधानिक चेतना की नई हवा प्रवाहित हो गई है। कई नये स्वतन्त्र राष्ट्र इसी मुक्त हवा की देन है। जिन्होंने विश्व राजनीति व इतिहास को नये आयाम दिये। प्रो0 गुडविन का मत यहां प्रासंगिक होगा कि- "हमारे युग में 1789 की फ्रांस की क्रांति 1917 की रूसी क्रान्ति की छाया में दब गई है और इसके आदर्श नाजी व फासिस्ट क्रान्तियों से अस्थाई रूप से धुधले पड गये थे। फ्रांस के देशी आलोचकों ने क्रांति द्वारा समाज और शासन से अधिक व्यक्ति को महत्व देने का आक्षेप किया है किन्तु, विदेशी समीक्षकों ने सर्वदा यह प्रश्न पूछा है कि क्या यह सब एक त्रुटि थीं ? क्या स्वतन्त्रता व समानता प्राप्त करने के युद्ध में फ्रांस की बलि ज्यादा थी ? इस विषय में इतिहासकार 1789 की क्रांति का विश्लेषण अठारहवीं शताब्दी में हुए अनेक विप्लवों से तुलना करके करते हैं और इस तथ्य पर विशेष बल देते हैं कि इस क्रांति का आधुनिक प्रजातन्त्र की स्थापना में इतना योगदान था कि इसने सिद्धान्तों को निर्धारित किया और जनसाधारण की सर्वाधिकार सम्पन्नता को स्पष्ट कर दिया। आधुनिक तानाशाही का स्रोत भी किसी हद तक फ्रांस की क्रान्ति को ही माना जा सकता है क्योंकि 1793 की जैकोबिन तानाशाही और क्रांतिकारी सरकार, अस्थाई व्यवस्था थी जिसके आगे फ्रांस को गृह और विदेशी युद्ध, अपनी राष्ट्रीयता व उदार सिद्धान्तों की रक्षा के लिए थोड़े समय तक झुकना पड़ा था।" प्रो0 गुडविन की मान्यता से यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तुतः बहुत पहले ही सन् 1789 ई. में हुई फ्रांसिसी क्रांति नें रूसी क्रांति की आधारशिला रख दी थी। ऐसे सिद्धान्तों

का सूत्रपात कर दिया था जो आने वाले समय में विश्व इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के मार्गदर्शक सिद्धान्त बनते दिखाई दिये।

16.7 अभ्यास प्रश्न

1. "सन् 1789 ई0 की क्रांति 'आंशिया रिजीम' (पुरातन व्यवस्था) के विरूद्ध एक जबर्दस्त विस्फाट था।" इस कथन के संदर्भ में क्रांति के प्रभावों का विश्लेषण करें।

2. 1789 ई0 की फ्रांस की महान राज्य क्रान्ति नें फ्रांस के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जनजीवन को किस रूप में व कितना प्रभावित किया'

3. "फ्रांस की 1789 ई. की क्रांति का प्रथम प्रभाव फ्रांस के पश्चात इंग्लैण्ड पर दृष्टिगोचर हुआ" इस कथन की सत्यता का परीक्षण करते हुए क्रांति के इंग्लैण्ड पर पड़े प्रभावों का विश्लेषण करें।

4. फ्रांस की महान राज्य क्रान्ति के प्रभाव क्या केवल मात्र फ्रांस तक ही सीमित रहें या यूरोप भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका ? इस कथन का परीक्षण तथ्यों के बाधार पर करें।

5. फ्रांस की 1789 ई. की क्रान्ति के विश्व पर क्या स्थायी व दीर्घकालिक प्रभाव पड़े ?

6. 'फ्रांस की क्रान्ति नें विश्व इतिहास को कतिपय नूतन आयाम दिऐ।' इस संदर्भ में इसके प्रभावों की विवेवचना करें।

16.8 संदर्भ पुस्तकें

जॉन हाल स्टीवर्ट : *ए डॉक्यूमैन्ट्री सर्वे ऑफ दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन*

ईश्वरी प्रसाद : *क्रांतिकारी यूरोप तथा नेपोलियन का युग*

जे. हॉलैण्ड राज : *फ्रांस की राज्य क्रान्ति और नेपोलियन*

सी.डी.एम. कैटल्बी : *ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाईम्स*

लियो गर्शाय : *दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन*

कोबाल अल्फर : *हिस्ट्री ऑफ फ्रेन्च रिवोल्यूशन*

लार्ड एक्टन : *रिवोल्यूशनरी आईडियाज इन फ्रांस*

मादलाँ : *फ्रेन्च रिवोल्यूशन*

सी.जी.एच. हेज एण्ड वी थामस मून : *मार्डन हिस्ट्री*

सी. डी. हेजन : *माडर्न यूरोप अप टू 1945*

हर्नशा : *मेन करैन्ट्स ऑफ यूरोपियन हिस्ट्री*

डेविड थोमसन : *यूरोप सिन्स नेपोलियन*

एलन.जार्ज.एच : *फ्रेन्च रिवोल्यूशन,* वोल्युम I

साल्वेमिनी : *दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन*

हेजन : *दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन, वोल्युम I*

ग्राण्ट एण्ड टेम्परली : *यूरोप इन दि नाइन्टीथ एण्ड टवन्टीयथ सैन्चुरीज*

हैनरी लिटल फील्ड : *हिस्ट्री ऑफ यूरोप (1500-1848)*

वार्नर मार्टिन एण्ड म्यूर : *दि न्यू ग्राउण्ड वर्क ऑफ ब्रिटिश हिस्ट्री*

वर्क : *रिफ्लैक्शन्स ऑन दि फेन्च रिवोल्यूशन*

एच0ए0 डेविस : *एन आउटलाईन हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड*

हिल्येर ब्लैक : *दि फ्रेंन्च रिवोल्यूशन*

क्रोपटकिन : *दि ग्रेंट फ्रेंन्च रिवोल्यूशन*

गुडविन : *दि फ्रेन्च रिवोल्यूशन*

इकाई-17
नेपोलियन का युग

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 नेपोलियन का उत्थान (कोन्सुलशिप 1799-1804)

17.2.1 आन्तरिक समस्याएं

17.2.2 प्रशासनिक

17.2.3 वित्तीय

17.2.4 धार्मिक

17.2.5 शिक्षा प्रणाली

17.2.6 नागरिक प्रशासन

17.2.7 विदेश नीति

17.3 नेपोलियन सम्राट के रूप में

17.4 नेपोलियन का पतन

कन्टीनेन्टल सिस्टम; बर्लिन घोषणा 1806;

मिलान घोषणा 1807; फ्रोन्टेनब्लू घोषणा-1810.

पेपल राज्य का विलय-1809

पुर्तगाल से युद्ध; स्पेन के सम्राट चार्ल्स चतुर्थ का गद्दी से उतरना

प्रायद्वीप का युद्ध

आस्ट्रिया से युद्ध, 1809.

रूस पर आक्रमण 1812.

17.5 नेपोलियन के साम्राज्य का विनाश

चतुर्थ गुट

नेपोलियन की रूस और प्रशिया पर विजय;

कुलिच (Kalisch) की सन्धि 1813; लुटजेन और बाटजेन का युद्ध 1813.

आस्ट्रिया का नेपोलियन के प्रति दृष्टिकोण

लिपजिग का युद्ध 1813.

संयुक्त (Allied) देशों का फ्रांस पर आक्रमण 1814.

फ्रोन्टेन ब्लू की सन्धि 1814.

नेपोलियन को ऐल्बा से वापसी-1815

वाटरलू का युद्ध 1815.

17.6 नेपोलियन की भूलें

— और राष्ट्रीयता-जर्मनी, इटली, पालैंड; तुर्की साम्राज्य '(Ottomon Eaufrise)-

— और वैज्ञानिक प्रगति

17.7 उपसंहार

17.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

17.0 उद्देश्य

इस यूनिट में आप इन विषयों का अध्ययन करेंगें:-

1799 के संविधान (Coup d 'etat) में नेपोलियन की उपलब्धि और प्रथम कौन्सल के रूप में उसकी शक्ति का केन्द्रीयकरण।

आन्तरिक मामलों में उसने फ्रांस को योरूप का एक महान शक्तिशाली देश बनाने का प्रयत्न किया और इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उसने प्रशासनिक, आर्थिक, धार्मिक, शिक्षा संबधी इत्यादि सुधारों का सूत्रपात किया।

उसकी अद्धितीय वीरता, उच्च महत्वाकांक्षा, अभूतपूर्व सौहार्द और फ्रांस की जनता के सहयोग ने न केवल उसको फ्रांस का सम्राट बनाया परन्तु केवल अविजित ब्रिटेन को छोड़ कर समस्त योरूप का स्वामी भी बना दिया।

नेपोलियन का ब्रिटेन की आर्थिक व्यवस्था अपने कन्टीनेन्टल सिस्टम द्वारा नष्ट कर देने का प्रयत्न उसके लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ।

उसका रूस पर आक्रमण और इसकी लिपजिग में पराजय नेपोलियन के साम्राज्य के विनाश का कारण बने और अंत में उसको वाटरलू के युद्ध में पराजय का मुंह देखना पड़ा और उसको देश निकाले के रूप में सेन्ट हेलेना में 1815 में भेज दिया गया।

17.1 प्रस्तावना

नेपोलियन बोनापार्ट जो "एक क्रान्ति पुत्र" और "भाग्य का धनी" था, उसका जन्म एक छोटे से द्वीप के ग्राम अजासिओ (Ajaecio) में 15 अगस्त 1769 में उस

समय हुआ था जब इस द्वीप को फ्रांस ने जेनोआ से खरीदा था। उसने फ्रांस सरकार के खर्चे से ब्रिएन और पैरिस में उच्च सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। उसने एक इन्जीनियर और आर्टिलेरी मेन (आग्नेय शस्त्र चलाने वाला व्यक्ति) के रूप में अपना जीवन जेकोबिन्स के साथ रह कर प्रारंभ किया था और टोलोन पर सन् 1793 में पुनः विजय प्राप्त करने में अपनी योग्यता का अभूतपूर्व प्रदर्शन किया था। इसके अतिरिक्त 1795 में उसने वेन्डेमीएअर रायलिस्ट राज विद्रोहियों कि खिलाफ कन्वेन्शन की सुरक्षा की। उसने इटली के विरूद्ध युद्ध करने में विशेष श्रेय अर्जित किया और वह फ्रांस में इतना लोकप्रिय हो गया कि फ्रांस की जनता उसको फ्रांस का सर्वोच्च जेनरल (सैन्य अधिकारी) मानने लगी।

इस प्रकार, सन् 1799 में नेपोलियनव का काउन्सिलरशिप के पद पर उन्नति से लेकर सन् 1815 में उसके सेन्ट हेलेना टापू पर देश निकाले पर जाने के समय तक, उसने न केवल फ्रांस अपितु समस्त योरूप के इतिहास में अपनी प्रभुता स्थापित की, जिसके कारण इस समय को "नैपोलियन युग" की संज्ञा दी गई।

वास्तव में "नैपोलियन युग" सन् 1804 से लेकर 1814 तक कुल दस वर्ष तक रहा। सन् 1799 से लेकर 1804 तक, फ्रांस एक गणतंत्र (Republic) के रूप में नेपोलियन की कौंसुलरशिप के अधीन रहा। सन् 1804 में नेपोलियन ने स्वयं को फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया। इस कारण से उसने यह अथक प्रयत्न किया कि फ्रांस एक उपनिवेश साम्राज्य के रूप में रहे। उसने इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निरन्तर युद्धों, विजयों, साम्राज्य-विस्तार तथा संधियों का सहारा लिया और उसके इन प्रयत्नों से फ्रांस के यश, मान और समृद्धि में वृद्धि हुई। उसने फ्रांस के क्रान्तिकारी विचारों, जैसे समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृभाव और राष्ट्रवाद को समस्त योरूप में फैलाया। सी0डी0 हेजन ने सत्य ही कहा है कि "नेपोलियन की तुलना अलेग्जेन्डर (सिकन्दर), सीजर, चार्लमेगन जैसे शक्तिशाली विजेताओं और शासकों से की जाती है। इन चारों व्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन सब में नेपोलियन ही सबसे अधिक महान था।"

17.2 नेपोलियन का उत्थान (कोन्सुलरशिप) 1799-1804

नेपोलियन ने डाइरेक्टर सीयेस तथा सेना की सहायता से 19 नवम्बर 1799 को बलपूर्वक (Coup d'etat) डाइरेक्टरी को समाप्त कर दिया। सीयेस (Sieyes) ने नये संविधान (Coustitution) की रचना की, जिसको नेपोलियन ने कुछ अल्प सुधारों के साथ स्वीकार कर लिया। यह संविधान कोन्सुलर कान्सटीट्यूशन या आठवें वर्ष के कन्सटीट्यूशन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस कान्सटीट्यूशन (संविधान) की धाराओं (provisions) के अनुसार अब फ्रांस एक गणतन्त्र (Republic) देश हो गया। देश में शासन करने का अधिकार तीन

कोन्सलों को दिया गया। ये कोन्सल दस वर्ष के लिए चुने गए। इनमें से प्रथम कोन्सल के पद पर नेपोलियन बोनापार्ट के नाम का सुझाव पेश किया गया।

प्रथम कोन्सल को असीमित शक्ति प्रदान की गई। प्रशासनिक, नागरिक, सैन्य एवं विदेशी मामलों में इस असीमित शक्ति प्राप्त होने के कारण वास्तव में वह एक डिक्टेटर हो गया।

देश में कानून बनाने का अधिकार (Legislative powers) तीन विभिन्न संस्थाओं को सौंपा गया, जिनके नाम इस प्रकार थेः-

1- काउन्सिल आफ स्टेट्स।

2- ट्रिब्यून, जिसमें एक सौ सदस्य (members) थे।

3- लेजिस्लेटिव बाडी (विधान सभा), जिसमें तीन सौ डिप्टी थे।

देश के लिए समस्त कानूनों एवं बिलों को बनाने का अधिकार काउन्सिल आफ स्टेट के अधीन रहा। इन कानूनों और बिलों पर ट्रिब्यून बहस करती थी, परन्तु उसे वोट देने का अधिकार नहीं था जबकि संविधान सभा (Legislative Body) इस पर अपने वोट बगैर बहस किए देती थी।

चतुर्थ संस्था सीनेट थी, जिसमें अस्सी सदस्य होते थे। इसके अधिकार क्षेत्र में संविधान (Constitution) की व्याख्या करना, न्यायाधीशों (Judges) की नियुक्ति करना, भावी (Future) कोन्सलों का चुनाव करना और विधानसभा (Legislature) के सदस्यों को सेलेक्ट करना था।

परन्तु वास्तविक रूप में, प्रथम कोन्सल ही काउन्सिल आफ़ स्टेट्स तथा सीनेट के सदस्यों को मनोनीत (Nominate) करता था और इस प्रकार ये दोनों संस्थाएँ प्रथम कोन्सल के हाथ का खिलौना थीं। इसलिए व्यवहारिक रूप में फ्रांस एक गणतन्त्र देश के रूप में रहा परन्तु देश की समस्त शक्ति प्रथम कोन्सल अर्थात् नेपोलियन बोनापार्ट के हाथों में केन्द्रित थी।

नेपोलियन प्रथम कोन्सल के पद पर

कोन्सल के पद पर आसीन नेपोलियन को घरेलू एवं बाह्य संबधों के विषय में कई कठिन कार्य करने पड़ते थे। इसलिए उसने सर्वप्रथम फ्रांस में कानून व्यवस्था सुधारनें एवं शान्ति स्थापित करने की दिशा में अपना ध्यान केन्द्रित किया।

17.2.1 आन्तरिक समस्याएं (Domestic Affairs)

नेपोलियन ने फ्रांस की समस्त आन्तरिक शासन व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किए, जो उसकी प्रशासनिक क्षमता एवं योग्यता के परिणाम स्वरूप थे।

17.2.2 प्रशासनिक (Administrative) व्यवस्था

नेपोलियन ने यह महसूस किया कि किस प्रकार स्वतंत्रता के नाम पर देश में अराजकता पैदा की जाती है। इसलिए उसने देश में एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन

का सूत्रपात किया, जिसका बाह्य स्वरूप प्राचीन राजतंत्र प्रणाली के अनुरूप ही था। प्रत्येक विभाग एक परफेक्ट के अधीन रखा गया। यह अधिकारी एक उच्च श्रेणी का सरकारी अधिकारी था। इसकी नियुक्ति प्रथम कोन्सल द्वारा की जाती थी और अपने कार्यों के लिए वह उसी के समक्ष उत्तरदायी होता था। छोटे जिलों (Arrondissements) को सब परफेक्ट के अधीन रखा गया। कानून व्यवस्था, कर तथा कन्सक्रिप्शन इनके अधिकार क्षेत्र में थे। इन पर कम्यून्स का निरीक्षण रहता था। प्रत्येक छोटे कम्यून के मेयर की नियुक्ति परफेक्ट के द्वारा की जाती थी, परन्तु पांच हजार से अधिक जनसंख्या वाले नगर के मेयर की नियुक्ति प्रथम कोन्सल द्वारा की जाती थी।

17.2.3 वित्तीय व्यवस्था

नेपोलियन के लिए वित्त राज्य व्यवस्था चलाने के लिए एक आवश्यक अंग था। वह यह भली भांति जानता था कि देश की आर्थिक व्यवस्था के बिगड़ने के फलस्वरूप ही पिछली दो सरकारों अर्थात् लुई सोलहवां और डाइरेक्टरी का पतन हुआ था। इसलिए उसने एक सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था को जन्म दिया जो युद्धों के अतिरिक्त भार को सफलतापूर्वक वहन कर सके।

समस्त कर प्रणाली को पुनः संगठित किया गया और करों को वसूल करने के लिए अधिक सुचारू एवं शक्तिशाली व्यवस्था का सूत्रपात किया। उसने मुनाफाखोरी को एक व्यवसाय होने से रोका, ठेकेदारों तथा अन्य व्यक्तियों की अनुचित कार्य प्रणाली पर नियंत्रण स्थापित किया, स्टाक एक्सचेन्ज प्रणाली को सुव्यवस्थित किया, मुद्रा प्रणाली में सट्टे की प्रवृत्ति पर अंकुश स्थापित किया और प्रशासनिक खर्च में कमी की। उसने एक सुदृढ़ आर्थिक प्रणाली स्थापित करने हेतु सन् 1800 में बैंक आफ, फ्रान्स की स्थापना की। देश में व्यापार एवं अन्य व्यवसायों की उन्नति के लिए अनेक सुरक्षात्मक उपाय किए गए। इसी प्रकार कृषि क्षेत्र में भी उन्नति के प्रयत्न किए गए। नेपोलियन ने क्रान्ति के समय हुए भूमि सेटलमेन्ट में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया।

17.2.4 धार्मिक व्यवस्था

एक व्यक्ति जो मिस्र (Egypt) में एक मुस्लिम है तथा फ्रान्स में एक कैथोलिक (ईसाई) है, इन दोनों को राज्य की ओर से किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ। नेपोलियन ने एक कुशल राजनैतिज्ञ होने के नाते उसने धर्म को एक राजनैतिक हथियार के रूप में एक सेफ्टी वाल्व के रूप में काम में लिया। उसने सन् 1800 में पोप पायस सप्तम के साथ एक समझौता कानकोरडेट नामक किया, जिसमें उसने ईसाईयों के कैथोलिक धर्म को फ्रांस की जनता का धर्म स्वीकार किया। इसके फलस्वरूप पोप ने बिशपों की संख्या घटाने के लिए अपनी सहमति प्रकट की और चर्च की सम्पत्ति का पुर्ननिर्धारण किया गया। प्रीस्टों (पादरियों) की नियुक्ति बिशपों द्वारा की गई। फ्रांस की सरकार ने प्रार्थना व्यवस्था हेतु भवनों को उपलब्ध कराया तथा बिशपों और पीस्टों को उपयुक्त वेतन देना प्रारंभ किया। इसके अतिरिक्त नेपोलियन ने यह स्पष्ट किया कि कोई भी पोप का आदेश प्रथम कोन्सल की आज्ञा

के बगैर प्रकाशित नहीं किया जाएगा। धार्मिक झगड़ों को काउन्सिल आफ स्टेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। बिशप अपने नियुक्त स्थान (Dioces) से बगैर अनुमति के अनुपस्थिति नहीं रहेगें।

17.2.5 शिक्षा प्रणाली

नेपोलियन जो स्वयं एक बहुत बड़ा विद्वान था, उसने सर्वप्रथम देश में एक राष्ट्रीय शैक्षणिक व्यवस्था के विषय में सोचा जिसका मुख्य उद्देश्य देश में प्रतिभाओं (Tatents) की खोज और उनको देश सेवा में प्रयोग करना था, जैसे सैन्य व्यवस्था, न्याय व्यवस्था एवं अन्य देशोपयोगी कार्य। उसने अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु चार प्रकार के स्कूल खोले। जैसेः-

प्राइमरी या एलीमेन्ट्री स्कूल- जिसकी व्यवस्था प्रत्येक कम्यून द्वारा की जाती थी और ये परफेक्ट्स और सब परफेक्ट्स के निरीक्षण में कार्य करते थे।

सेकेन्ड्री स्कूल- इनमें फ्रेन्च और लैटिन भाषाओं तथा प्रारम्भिक विज्ञान की विशिष्ट शिक्षा प्रदान की जाती थी।

लाइसीज या हाई स्कूल्स- ये प्रत्येक मुख्य नगर में खोले गए। स्पेशल स्कूल्स-जैसे टेकनीकल स्कूल्स, सिविल सर्विस स्कूल्स और मिलिट्री स्कूल्स।

पूरे फ्रांस के लिए एक यूनीवर्सिटी की भी स्थापना की गई। जिसका कार्य सत्रह जिलों में स्थित शिक्षण संस्थाओं की शिक्षा पद्धति का निरीक्षण करना था।

इसी प्रकार स्त्रीशिक्षा को भी प्रोत्साहित किया गया और स्त्रियों के लिए पर्याप्त वजीफे (Scholarships) प्रदान किए गए।

17.2.6 नागरिक प्रशासन

नेपोलियन ने एक समय कहा था कि "मेरी ख्याति चालीस युद्धों में प्राप्त करना नहीं है वरन् जो सदैव स्मरण किया जाएगा और कभी नहीं भुलाया जा सकेगा वह मेरा नागरिक कानून (Civil Code) होगा।"

उसने प्राचीन, रूढ़िवादी, जंगली, असमानतापूर्ण, एवं निर्बल विधान की अपेक्षा एक उन्नतिशील, एक समान, अधिक सरल एवं आधुनिक विधान (Laws) की रचना की। इस प्रकार अधिक स्पष्ट, विशद्, एवं सिस्टेमेटिक कानून संहिता को उसने प्रचलित किया।

सन् 1804 में नेपोलियन ने नागरिक संहिता कानून (Code of Civil Procedure) बनाया। इसके पश्चात् 1807 यें व्यापार संहिता कानून (Code of Commerce) बनाया गया। सन् 1810 में दंड संहिता (Penal Code) बनाया गया। इन समस्त कानूनों का एक सामान्य नाम "नेपोलियन की कानून संहित" (Code of Napolean) दिया गया।

यह कानून संहिता फ्रांस में हुई राज्य क्रांति के फलस्वरूप प्रकाश में आई। इसमें धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समानता, विवाह पद्धति, से संबधित कानून बनाए गए। इसमें विवाह विच्छेद (Divoree) अर्थात तलाक को भी मान्यता दी गई। इस विधान के अंतर्गत पारिवारिक जीवन के मूल्यांकन को महत्व दिया गया तथा पिता के

अधिकार एवं निजी सम्पत्ति को सुरक्षा प्रदान की गई तथा अवैध सन्तानों को समृद्ध सामाजिक अधिकार से वंचित किया गया।

कई बार प्रतिभाओं को प्रोत्साहन के अभाव में नष्ट हो जाना पड़ता है। नेपोलियन ने राष्ट्रीय प्रतिभाओं को उचित प्रोत्साहन देने हेतु अनेक कार्य किए। उसने कई राजकीय अधिकारियों एवं सैन्य अधिकारियों को समाज के मध्यम वर्ग में से चुना। उसने फ्रांस की उच्च कोटि के प्रतिभा शील व्यक्तियों की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु "लीजन आफ् आनर्स" की स्थापना की।

नेपोलियन का एक मुख्य कार्य नगरों का सौंदर्यकरण करना था। उसने फ्रांस की राजधानी को एक अत्यधिक सुसज्जित नगर बनाया। उसने फ्रांस की राजधानी पैरिस को योरूप का एक अत्यंत आधुनिक नगर बनाने एवं इसकी सुन्दरता में चार चांद लगाने हेतु केवल नगरीय सीमा की वृद्धि ही नहीं की वरन् उसकी सुन्दरता एव गरिमा में वृद्धि करने हेतु उसमें विजय स्तम्भों (Towers of Victory) का निर्माण कराकर उनको युद्ध में विजित विभिन्न चित्रों एवं मूर्तियों से सुसज्जित किया, जिससे पैरिस "योरोप की रानी" (Queen of Europe) कहला सके। इसके अतिरिक्त यह नगर योरूप की समस्त राजधानीयों से सड़क मार्ग से भी जुड़ा हुआ था।

17.2.7 विदेश नीति

जिस समय नेपोलियन प्रथम कौंसल के पद पर आसीन हुआ, उस समय एक द्वितीय गुट की स्थापना, फ्रांस के विरूद्ध की गई। इस गुट में ब्रिटेन, रूस (Russia)] आस्ट्रिया, पुर्तगाल, नेपल्स और तुर्की सम्मिलित थे।

नेपोलियन ने अपने इन शत्रुओं को एक के बाद एक के सिद्धांत पर निबटना था। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसनवे आस्ट्रिया के विरूद्ध एक द्वितीय इटली युद्ध छेड़ने का संकल्प किया। वह अत्यंत तीव्र गति से अत्यंत उपजाऊ घाटी "पो" में पहुंचा और 14 जून 1800 में मारेन्गो के स्थान पर अपने शत्रु को एक भीषण पराजय दी। इसके बाद एक द्वितीय विजय दिसम्बर 1800 को दक्षिणा जर्मनी में होहेनालिन्डन के स्थान पर मोरियू के नेतृत्व में मिली।

इसी समय, फ्रांस का एक कट्टर शत्रु, जार पाल, जो राजतंत्र के सिद्धान्त का एक प्रबल समर्थक था, वह नेपोलियन का समर्थक हो गया और उसने नेपोलियन की सहायता की आश्वासन भी दिया।

इस प्रकार आस्ट्रिया एक प्रकार से सबसे अलग हो गया और इससे प्राप्त निराशा के फलस्वरूप उसने शान्ति की प्रार्थना की। इसके फलस्वरूप 9 फरवरी 1801 को लुनेविले की संधि पर हस्ताक्षर किए गए। इस संधि ने केम्पो फ्रोरमिओं की संधि की धाराओं की पुष्टि की। इसमें कुछ धाराओं को संशोधित भी किया गया जो आस्ट्रिया के हित में नहीं थीं। उसको बटेवियन, हेल्वेटिक तथा किसालपाइन गणतंत्र राज्यों को मान्यता देनी पड़ी तथा इसके साथ-साथ फ्रांस द्वारा बेल्जियम के प्रदेश पर अधिकार तथा राइन नदी के बाएं किनारे

वाले प्रदेश के अधिकार को भी स्वीकार करना पड़ा। इन समझोतों के फलस्वरूप उसे अपना प्रजा पर स अपना आधकार खोना पड़ा।

एमीन्स की सन्धि

ब्रिटेन और फ्रान्स एक समान शक्तिशाली देश थे। इनमें से एक को सामुद्रिक क्षेत्र में तथा दूसरे के भूमीय क्षेत्र में प्रधानता प्राप्त थी। इन दोनों देशों को स्वयं की शक्ति पर पूर्ण विश्वास था। पिट के पतन के पश्चात् नये बने प्रधानमंत्री एडिंगटन ने फ्रांस से युद्ध करना उचित नहीं समझा इसके फलस्वरूप 27 मार्च, 1802 में एमीन्स नामक स्थान पर एक सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। इस सन्धि के अनुसार ब्रिटेन ने युद्धों के द्वारा जो उपनिवेश विजित किए थे, उनमें से केवल लंका (Coylon) और ट्रिनिडाड को छोड़कर वह माल्टा नाइट्स आफ सेन्ट जॉन को तथा मिनोरका स्पेन को देने पर सहमत हो गया। नेपोलियन को मिश्र (Egypt) पर स्वयं का अधिकार छोड़ने पर तैयार होना पड़ा।

परन्तु एमीन्स की सन्धि एक पूर्ण शान्ति स्थापित नहीं कर सकी क्यों कि ब्रिटेन को यह आशंका थी कि फ्रांस की स्वयं भी एक औपनिवेशिक साम्राज्य बनाने की योजना है।

ऐसा कहा जाता है कि नेपोलियन ने अपना एक प्रतिनिधि मंडल भारत में डेकेइन के प्रतिनिधित्व में भारतीय राजाओं को ब्रिटेन के विरोध में भेजा। इसके पश्चात् एक अन्य प्रतिनिधिमंडल जनरल से बस्टानी के नेतृत्व में मिश्र (Egypt) में भेजा गया। इसके अतिरिक्त फ्रांस ने बेल्जियम और डच नीदरलेंन्ड्स पर स्वयं का प्रभाव बढ़ाने के अतिरिक्त राइन नदी प्रदेश तथा इटली पर भी अपना प्रभुत्व हढ़ किया। वह स्पेन से भी एक सन्धि करने में सफल हो गया। इससे ब्रिटेन की स्वयं की व्यापारिक सुविधाओं पर एक आघात लगा। इसलिए ब्रिटेन ने माल्टा प्रायद्धीप से अपनी सेना हटाने से इन्कार कर दिया। और मई 1803 में फ्रांस के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया।

17.3 नेपोलियन का सम्राट बनना- 1804

सन् 1802 में जनमत के आधार पर नेपोलियन जो दस वर्ष हेतु कोन्सल के पद पर आसीन था; उसका काल समस्त जीवन पर्यन्त कर दिया गया तथा उसको उसके उत्तराधिकारी घोषित करने का भी अधिकार दे दिया गया। परन्तु 1804 में सीनेट ने एक नए संविधान की रचना कर नेपोलियन को फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया जिसका समर्थन अप्रत्याशित संपूर्ण जनमत (Vote) द्वारा किया गया। इसके फलस्वरूप 2 दिसंम्बर 1804 को मध्यकालीन चर्च केथेड्रल आफ् नोट्रे डेम में, एक विशाल समारोह में, पोप पायस सप्तम ने नेपोलियन के मस्तक पर राजमुकुट सुशोभित करके उसको फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया।

तृतीय गुट

इसी समय अप्रैल 1804 में पिट पुनः ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बन गया। उसने नेपोलियन के विरूद्ध एक तृतीय गुट की रचना थी। इस गुट में ब्रिटेन, रूस,

आंस्ट्रिया, स्वेडन तथा नेपल्स सम्मिलित थे। जबकि प्रशिया तटस्थ (Neutral) रहा क्योंकि उसे नेंपोलियन से हनोवर प्राप्त हो गया था।

तृतीय गुट के मुख्य युद्ध

उल्म का युद्ध- 20 अक्टूबर, 1805:- फ्रांस की सेना ने आस्ट्रिया की सेना को, जो जनरल मेक के नेतृत्व में थी, वरटमबर्ग में स्थित उल्म नगर में 20 अक्टूबर, 1805 को पराजित किया। आस्ट्रिया के सेनापति ने पचास हजार सैनिकों सहित आत्मसमर्पण कर दिया।

ट्रेफाल्गर का युद्ध- 21 अक्टूबर, 1805:- यद्यपि नेपोलियन ने आस्ट्रिया के ऊपर एक बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली थी परन्तु उसकी सामुद्रिक सेना (जिसमें फ्रांसीसी तथा स्पेनी जहाज सम्मिलित थे) को 21 अक्टूबर 1805 को लार्ड नेल्सन के हाथों पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस युद्ध से समुद्र पर ब्रिटेन की प्रभुता पूर्णरूप से स्थापित हो गई और पूर्ण नेपोलियन युग में उसको इस स्थान से कोई न हटा सका।

आस्टरलिज का युद्ध-2 दिसम्बर, 1805- नेपोलियन ने बिना समय गंवाए आस्ट्रिया और रूस की सम्मिलित सेना का आस्टरलिज में सामना किया और उनको 2 दिसम्बर 1805 को भीषण पराजय दी।

अंततः आस्ट्रिया शीघ्र ही इस तृतीय गुट से पृथक हो गया।

प्रेसबर्ग की सन्धि

आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस द्वितीय ने शान्ति स्थापना का प्रस्ताव रखा। इसके फलस्वरूप 26 दिसम्बर 1805 को प्रेसबर्ग में एक सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। इस संधि के अनुसार आस्ट्रिया को वेनेशिआ, इसशिया, डालमेशिया फ्रांस को देने पड़े और उसे केवल ट्रीएटे को स्वयं के पास रखना पड़ा। फ्रांसिस द्वितीय ने नेपोलियन को इटली का सम्राट स्वीकार किया और उसे बवेरिया और वुरटेमबर्ग के प्रदेशों पर अपना अधिकार छोड़ना पड़ा। जिनको बाद में नेपोलियनव ने अलग राज्य बना। इस प्रकार आस्ट्रिया को लगभग तीन लाख उसकी प्रजा तथा उसकी इटली प्रदेश छोड़ना पड़ा जिससे उसकी आय में काफी कमी आई।

प्रशिया

अब नेपोलियन का ध्यान प्रशिया की ओर आकर्षित हुआ जिससे उसका सम्बंध उसके तृतीय गुट में सम्मिलित होने के कारण समाप्त हो गया था। परन्तु प्रशिया को नेपोलियन की हनोवर के प्रति दृष्टिकोण पर आशंका उत्पन्न हो गई थी और उसे ऐसा भय उत्पन्न हो गया था कि राइन प्रदेश के राज्यों का एक संघ (Confederation) बना दिया जाएगा। प्रशिया का राजा विलियम तृतीय एक दुर्बल प्रकृति का मनुष्य था परन्तु उसको उसकी घमंडी रानी लुई ने प्रोत्साहित किया कि उसे वीरतापूर्वक फ्रांस का सामना करना चाहिए। इसलिए प्रशिया ने जार से मिलकर सन् 1806 में फ्रांस से युद्ध छेड़ दिया।

जेना का युद्ध- 14 अक्टूबर 1806— नेपोलियनल के शीघ्र ही प्रशिया के विरूद्ध कार्य किया, जिससे रूस की सेना प्रशिया की सहायता के लिए न पहुंच सके। उसके अपने इस कार्य में सफलता मिली और उसे एक दिन में दो विजयें प्राप्त हुई। जैसे, उसने जेना में प्रिन्स हो हेन लोहे को परास्त किया और फ्रांसीसी कमान्डर डेवट ने 14 अक्टूबर 1806 को ब्रन्सविक को अबर-स्टेट नामक स्थान पर पराजित किया।

-फीडलेन्ड का युद्ध-जून 1807:- यद्यपि नेपोलियन ने प्रशिया की सेना को पूर्ण रूप से पराजित कर दिया था, परन्तु वह हढ निश्चय और वीरता के साथ आगे बढ़ता ही चला गया और रूस के प्रदेश में घुस गया। उसका सामना रूस के सम्राट जार से जून, 1807 में फ्रीडलेन्ड नामक स्थान पर हुआ। इस स्थान पर नेपोलियन नें रूस को पराजित किया।

टिलसिट की सन्धि 1807 :- रूस के जार अलेग्जेन्डर प्रथम और नेपोलियन दोनों टिलसिट नामक स्थान पर मिले। उनका मिलन नीमेन नदी के मध्य में एक नाव पर हुआ और सन्धि की शर्तों पर विचार विनिमय हुआ। दोनों व्यक्ति एक दूसरे से बहुत प्रभावित हुए। नेपोलियन ने जार से किसी प्रदेश को उसे देने के लिए नहीं कहा। अपितु उसने जार को तुर्की तथा फ़िनलेन्ड पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके फलस्वरूप रूस और ब्रिटेन के संबधों में कटुता उत्पन्न हो गई। दूसरी ओर जार ने नेपोलियन के कन्टीनेन्टल सिस्टम को मान्यता प्रदान कर दी।

इस सन्धि की धाराओं के अनुसार रूस को अपने पोलैंड के प्रदेश को छोड़ना पड़ा और फिर वारसा की ग्रान्ड डची अस्तित्व में आई। इसको नेपोलियन के एक सहायक सेक्सनी के ग्रांड डयूक के अधीन रखा गया।

दूसरे उत्तरी पश्चिमी जर्मनी के प्रदेश में से वेस्ट फोलिया राज्य का निर्माण किया गया। यह कार्य प्रशिया के विघटन के परिणाम स्वरूप हुआ। और हनोवर, ब्रन्सविक तथा हेसे जेरोम बोनापार्ट को सौंपने पड़े।

प्रशिया की सेना में कमी करके उसमें केवल बियालीस हजार सैनिक रहने दिए गए। उस पर अत्यधिक युद्ध जुर्माना लगाया गया और इस धन की प्राप्ति तक फ्रांस की सेना ने प्रशिया पर अपना अधिकार जमाए रखा।

नेपोलियन का साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर

टिलसिट की सन्धि ने नेपोलियन को योरुप का स्वामी बना दिया। उस समय वह अपनी विजयों के चरमोत्कर्ष पर था और समस्त योरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उसके अधीन था। उसके अधीन कई राज्य थे। आस्ट्रिया और प्रशिया अब एक निम्न कोटि के राज्य हो गए थे। रूस का जार नेपोलियन का प्रशासक ही नहीं वरन् उसका एक दोस्त हो गया था।

इस समय नेपोलियन उसके अधीनस्थ राज्यों के हितों की उपेक्षा करने लगा था और ये प्रदेश उसने अपने सगे संबधियों को दे दिए थे। उदाहरण के रूप में:-

नेपोलियन का ज्येष्ठ भ्राता जोसेफ बोनापार्ट (1) को नेपल्स का राजा बना दिया गया था।

जेराम बोनापार्ट वेस्टफेलिया का राजा बन गया।

नेपोलियन का लघु भ्राता लुई हालैण्ड का राजा बना।

नेपोलियन की बहन एलिस को लुक्का तथा कर्रारा की प्रिन्सेस बनाया गया।

नेपोलियन की छोटी बहन पोलीन, जिसकी शादी प्रिन्स बोरधीस से हुई थी, वह गौसदल्ला की डचेस बन गई।

जोअचिम, जिसकी शादी नेपोलियन की सबसे छोटी बहन केरोलीन से हुई थी, उसको बर्ग का ग्रान्ड ड्यूक बना दिया गया।

डयूजीन बिओहारनेस, जो नेपोलियन का सौतेला लड़का था, उसको इटली का वायसराय बना दिया गया।

राइन महासंघ (Confediration of the Rhine) की स्थापना और होली रोमन साम्राज्य का विनाश- 1806

बवेरिया, वरटेम्बर्ग तथा अन्य चौदह जर्मन राजाओं ने जर्मनी के सम्राट के प्रति अपनी अधीनता समाप्त करके नेपोलियन को अपना प्रोटेक्टर (रक्षक) स्वीकार कर लिया। इन राज्यों को "राइन महासंघ" के नाम से जाना जाने लगा। इसके साथ-साथ होली रोमन एम्पायर जिसका अस्तित्व एक हजार वर्ष पूर्व से था उसका भी विनाश हो गया। आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसीस द्वितीय को होली रोमन एम्परर के पद छोड़ने के लिए बाध्य किया गया और अब उसे केवल फ्रासीस प्रथम, आस्ट्रिया का परम्परागत सम्राट कहा जाने लगा।

17.4 नेपोलियन का पतन

कन्टीनेन्टल सिस्टम या कन्टीनेन्टल ब्लोकेड- नेपोलियन की दृष्टि में ब्रिटेन एक व्यापारिक देश था। उसकी समृद्धि और उन्नति का मूल कारण उसके उपनिवेशों से होने वाली आय तथा उसका समुद्री व्यापार था। नेपोलियन ने ठीक ही सोचा कि यदि ब्रिटेन के माल का योरूप के देशों में व्यापार करना बन्द कर दिया जाए तो उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाएगी। प्रोफेसर सी.डी.हेजन का कथन है कि "निर्माताओं को अपने कारखाने बन्द करने पड़ते। कारखानों में काम करने वाले कर्मचारीगण बेकार हो जाते और उनमें भुखमरी फैल जाती। इस प्रकार कर्मचारी, निर्माता और व्यापारी विनाश के कगार पर पहुंच जाते। ऐसी विषम परिस्थिति में ब्रिटेन की सरकार को समझौता करने के लिए बाध्य होना पड़ता।"

बर्लिन घोषणा (नवम्बर 1806)

प्रशिया की पराजय के पश्चात् नेपोलियन ने बर्लिन में प्रवेश किया और यहां से उसने अपनी प्रसिद्ध घोषणा प्रसारित की जिसमें कहा गया था कि ब्रिटेन के द्वीप की नाकाबन्दी (Blockade) कर दी जाए और फ्रांस तथा उसके अधीन देशों

के बन्दरगाह (Ports) ब्रिटेन के जहाजों (Ships) के लिए बन्द कर दिए गाए। ये जहाज ब्रिटेन के उपनिवेशों से आते थ। इस प्रकार ब्रिटेन का कोई भी माल योरुप के बाजार में नहीं बेचा जा सके।

मिलान घोषणा (दिसम्बर, 1807)

मिलान घोषणा के अनुसार किसी भी देश का कोई जहाज जो ब्रिटेन के बन्दरगाह या ब्रिटेन के अधीनस्थ देशों से आया हो उसको फ्रांसीसी समुद्री जहाजी युद्ध पोत जब्त कर लें अर्थात् पकड़ लें।

फ्रोन्टैनब्लूब घोषणा- (अक्टूबर, 1810)

इन घोषणाओं के द्वारा नेपोलियन ने ब्रिटेन में निर्मित माल का जब्त करना और नेपोलियन के साम्राज्य में पाए जाने वाले ब्रिटिश निर्मित माल को जलाने का आदेश दिया।

नेपोलियन ने अपनी समस्त घोषणाओं को, फ्रांसीसी साम्राज्य तथा इटली के प्रदेशों, राइन संघ तथा वारसा की डन्चीमें सख्ती से लागू करने का भरसक प्रयत्न किया।

सन् 1806 में पोप को उसके प्रदेश के बन्दरगाहों को ब्रिटिश जहाजों के आवागमन के लिए बन्द करने को कहा गया। जब पोप ने नेपोलियन के इस कथन को मानने में आनाकानी की तो नेपोलियन ने मई 1809 में पोप के राज्य को फ्रान्स के साम्राज्य में सम्मिलित करने का आदेश दे दिया।

पुर्तगाल ने इस "कन्टीनेन्टल सिस्टम" को मानने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसका शराब का व्यापार ब्रिटेन के द्वीपों एवं उसके उपनिवेशों में बहुत व्यापक था, जिससे उसको एक भारी हानि की आशंका थी। प्रिन्स जान में न केवल कन्टीनेटन्टल सिस्टम को मानने से ही इन्कार किया वरन् उसने ब्रिटेन से इस सबंध में उसकी सहायता भी मांगी।

नेपोलियन ने पुर्तगाल के विरूद्ध शीघ्र एक्शन लेने का निश्चय किया। इस कार्य हेतु उसके स्पेन से एक सन्धि की जिसमें स्पेन ने फ्रांसीसी जहाजों को पुर्तगाल के विरूद्ध उसके प्रदेश में जाने की अनुमति प्रदान की। इसके साथ-साथ इस बात पर भी सहमति हुई कि पुर्तगाल के भाग करके स्पेन को भी दिया जाए।

स्पेन के सम्राट चार्ल्स चतुर्थ का सिहांसन से उतारना :- फ्रांसीसी सेना ने जुनोट के नेतुत्व में स्पेन के प्रदेश में होकर पुर्तगाल पर आक्रमण किया और लिस्बन पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। पुर्तगाली राजपरिवार को अपने देश से भाग कर ब्राजील में शरण लेनी पड़ी। परन्तु फ्रांसीसी सेना स्पेन से नही हटी। इस कारण से स्पेनिश नेशलिस्ट ने क्राउन प्रिन्स फरडीनेन्ड के नेतृत्व में विद्रोह किया और चार्ल्स चतुर्थ ने अपने युवराज के पक्ष में अपने सिंहासन का त्याग कर दिया। नेपोलियन ने इन दोनों को फ्रांस के प्रदेश में स्थित बेयोन नामक स्थान पर एक कान्फ्रेन्स में आने का न्यौता दिया, जिससे उत्तराधिकार की समस्या का समाधान खोजा जा सके। परन्तु नेपोलियन के दबाव डालने पर चार्ल्स चतुर्थ को विवश होकर अपने सिंहासन

का त्याग करना पड़ा और फ्रडीनेन्ड को गिरफ्तार कर लिया गया। नेपोलियन के ज्येष्ठ भ्राता जोसेफ बोनापार्ट को जुलाई 1808 में स्पेन के सिंहासन पर बिठा दिया गया।

स्पेन का विद्रोह और प्रायद्वीप युद्ध (Peninsular War):- इस घटना से स्पेन में नेपोलियन के विरूद्ध एक रोष की भावना जागृत हुई। स्पेन के राष्ट्रीय गुरीलों ने फ्रान्स की सेना को सर्व प्रकार से परेशान करना शुरू किया। उदाहरण के तौर पर- सारागोसा में स्पेन के किसानों के एक दल ने पेलाफ़ोक्स के नेतृत्व में आन्दोलन किया और एक दूसरे स्थान बेलेन में जुलाई 1808 को एक फ्रांसीसी सेना, जिसमें तेईस हज़ार सैनिक जो जनरल डूपोन्ट के नेतृत्व में थे, उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

ब्रिटेन का हस्तक्षेप:- ब्रिटेन के विदेश मंत्री (Foreign Minister) जार्ज केनिंग ने नेपोलियन के विरूद्ध स्पेन की सहायता करने का वचन दिया। अपने वचन के अनुसार अगस्त 1808 में सर आर्थर वेलेज़ली के नेतृत्व में ब्रिटेन ने एक सेना भेजी तथा उसी समय डयूक आफ् वेलिंगडन का पुर्तगाल में आगमन हुआ और उस समय पुर्तगाल, स्पेन और ब्रिटेन ने सम्मिलित होकर फ्रांस के विरूद्ध कार्य करने का निश्चय किया। इस प्रकार यह प्रायद्वीपीय युद्ध (Peninsular War) का प्रारम्भ हुआ- जो 1813 में जाकर समाप्त हुआ।

अगस्त 1808 में वेलेज़ली ने फ्रांसीसी सेनानायक जुनोट और विमारों को पराजित किया और फ्रांसीसी सेना को स्पेन छोड़ने के लिए बाध्य किया। अक्टूबर 1808 में नेपोलियन ने स्वयं स्पेन पर आक्रमण किया और उसको राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में सफलता प्राप्त हुई। परन्तु नेपोलियन को शीघ्र ही स्पेन छोड़ना पड़ा क्योंकि इस समय आस्ट्रिया ने स्वयं को फ्रांस के चंगुल से मुक्त होने का प्रयत्न किया था।

नेपोलियन ने मसीना को 1800 में पुनः पुर्तगाल को विजित करने के लिए नियुक्त किया परन्तु उसकी योजना को वेलेज़ली की तृतीय रक्षा प्रणाली ने विफल कर दिया। इस तृतीय रक्षा प्रणाली को "लाइन आफ् टोरेस वेडरास" भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त फ्रांस को फ्यूएनटेस डी ओनोरों और अलबुरा में सन् 1801 में पराजय का मुंह देखना पड़ा।

सन् 1812 में नेपोलियसन का रूस पर आक्रमण प्रायद्वीप युद्ध में एक टर्निंग प्वांइट सिद्ध हुआ। रूस के विरूद्ध युद्ध करने हेतु सेना की एक बड़ी टुकड़ी को स्पेन से हटाना पड़ा। जिससे वह रूस से होने वाले युद्ध में भाग ले सके। नेपोलियन के इस कार्य से ब्रिटेन के जनरल लार्ड विलिंगटन को विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।

17.5 नेपोलियन के साम्राज्य का विनाशः

चतुर्थ गुट

इसी समय ब्रिटेन ने चतुर्थ गुट की रचना नेपोलियन के विरूद्ध की। इस गुट में रूस और प्रशिया भी सम्मिलित हुए।

नेपोलियन की रूस और प्रशिया पर विजय

यह सत्य है कि नेपोलियन के रूस पर आक्रमण करने से उसकी सैन्य शक्ति में कुछ शिथिलता अवश्य आई थी परन्तु फिर भी अपने शत्रुओं के लिए वह बहुत शक्तिशाली था। जनवरी 1813 में कलीचे की सन्धि के अनुसार रूस और प्रशिया में एकता हो गई थी और उन दोनों ने यह निश्चय किया था कि वे पृथक रूप से कोई सन्धि नहीं करेगें और जार ने यह वचन दिया कि प्रशिया अपने खोए हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करे और जर्मनी स्वतंत्र रूप से रहेगा और उन दोनों ने संयुक्त रूप से नेपोलियन से युद्ध करने का निश्चय किया। नेपोलियन ने अपनी योग्यता एवं वीरता का पूर्ण परियच दिया और उसनें उन देशों की संयुक्त सेना को 2 मई को लटज़ेन तथा 20-21 मई 1813 को बाट ज़ेन नामक स्थानों पर पराजित किया।

आस्ट्रिया का नेपोलियन के प्रति दृष्टिकोण

आस्ट्रिया को एक ओर तो रूस की बढ़ती हुई शक्ति से ईर्ष्या थी तथा दूसरी ओर वह नेपोलियन से भयभीत था। इसी कारण से वह नेपोलियन से संधि करना चाहता था। इस उद्देश्य हेतु आस्ट्रिया के चान्सलर मेटरनिख ने निम्नलिखित सुझाव पेश किए:-

उसने यह प्रस्ताव रखा कि जो प्रदेश प्रशिया ने 1807 में खो दिए हैं, वे प्रदेश उसको वापस दे दिए जाएं।

पोलैण्ड का रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशिया के बीच बटवारा हो जाए।

राइन संघ राज्य को समाप्त कर दिया जाए और जर्मनी के बंदरगाह जैसे हमबर्ग तथा लुबेक को मुक्त कर दिया जाए।

नेपोलियन ने इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया और आस्ट्रिया 12 अगस्त 1813 को चतुर्थ गुट में सम्मिलित हो गया। इसका प्रतिशोध लेने हेतु नेपोलियन ने आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया और उसने अपनी अंतिम विजय ड्रेसडन नामक स्थान पर प्राप्त की।

लिपज़िग का युद्ध या राष्ट्रों का युद्ध-1813

सम्मिलित गुटीय देशों ने एक साथ नेपोलियन के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और लिपज़िग के युद्ध में नेपोलियन को पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस युद्ध को राष्ट्रों का युद्ध या बेटल आफ् नेशन्स भी कहते हैं। यह युद्ध तीन दिन तक 16 से 19 अक्टूबर, 1813 तक खेला गया। इस युद्ध में संयुक्त देशों की सेना में तीन लाख तथा नेपोलियन की सेना में दो लाख सैनिक थे।

नेपोलियन युद्ध क्षेत्र से फ्रांस भाग गया परन्तु उसकी पराजय से उसका विशाल साम्राज्य ताश के पत्तों की तरह छिन्न-भिन्न हो गया। राइन संघ राज्य तथा वेस्टफ्रेलिया का राज्य समाप्त हो गया तथा हालैंड, डेनमार्क तथा इटली प्रदेशों में क्रांति का प्रारंभ हो गया।

संधि का प्रस्ताव 1813

इतना सब कुछ होने पर भी संयुक्त देशों में आस्ट्रिया के प्रभाव में आकर नैपोलियन से एक उचित एवं अच्छे सुझावों की एक सन्धि करने का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि नेपोलियन जर्मनी, इटली, हालैंड तथा स्पेन की स्वतंत्रता को मान्यता दे और उनको स्वतंत्रता दे तथा फ्रांस की सीमा केवल राइन, आल्पस और पायरेनीज़ तक सीमित रहे।

नेपोलियन नें इन प्रस्तावों को मानने से इन्कार कर दिया। केअलबे के अनुसार नेपोलियन ने मेटरनिख से ये शब्द कहेः- "मैं मृत्यु का आलंगन करने को तत्पर हूं परन्तु एक हाथ भर भूमि भी छोड़ने को तैयार नहीं हूं। तुम्हारे सम्राट बीस बार भी पराजित होने पर पुनः अपने महलों में चले जाते हैं। परन्तु में एक भाग्यशील व्यक्ति हूं। मैं ऐसा नहीं कर सकताद्वद्र.।"

संयुक्त देशों का फ्रांस पर आक्रमण 1814 चौमोन्ट की सन्धि

1 मार्च 1814 को रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने चौमोन्ट की सन्धि पर हस्ताक्षर किए और यह निश्चय किया कि वे व्यक्तिगत रूप से नेपोलियन से किसी प्रकार की सन्धि नहीं करेंगें, युद्ध करने से पीछे नहीं हटेंगें जब तक कि उनके शत्रु को पूर्णरूप से पराजित नहीं कर दिया जाए और प्रत्येक संयुक्त देश में एक लाख पचास हज़ार सैनिक देने पर सहमति व्यक्त की और ब्रिटेन ने पांच मिलियन पौंड की एक विशेष अनुग्रह राशि देने की घोषणा की।

नेपोलियन चारों ओर से अपने शत्रुओं से घिर गया। ब्लूचर जर्मनी सेना के साथ राइन की ओर से आगे बढ़ रहा था। शारज़ेनबर्रा ने आस्ट्रिया की सेना के साथ राइन नदी पार कर ली थी और वह बसेल के दक्षिण की ओर बढ़ रहा था। बरनाडोटे, जो स्वेडन का उत्तराधिकारी राजकुमार था फ्रांस के उत्तर पूर्व की ओर बढ़ रहा था। वेलिंगटन ने स्पेन में फ्रांस की सेना के ऊपर एक अभूतपूर्व एवं निर्णायक विजय प्राप्त कर ली थी।

अचानक नेपोलियन ने मारने के युद्ध में ब्लूचर को पराजित कर दिया। परन्तु अभाग्यवश संयुक्त देशों की सेना ने उस पर भीषण दबाव डाला। सीनेट ने उसको उनके पद से पदच्युत कर दिया और उसको इस पद को छोड़ना पड़ा। पैरिस को 31 मार्च, 1814 को हस्तगत कर लिया गया।

फ्रोन्टेनब्लू की संधि- 1814

अंत में नेपोलियन को 6 अप्रैल 1814 को संयुक्त देशों के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर करने पडे। यह संधि फ्रोन्टेनब्लू की संधि के नाम से प्रसिद्ध हुई। नेपोलियन को फ्रांस की राजगद्दी पर उसके तथा उसके उत्तराधिकारियों के अधिकार को छोड़ना पड़ेगा। दूसरे उसे फ्रांस छोड़कर ऐल्बा के टापू पर जाना पड़ेगा। वहां पर वह एक सम्राट की भंति जीवन व्यतीत करेगा और उसे प्रति वर्ष दो मिलियन फ्रेंन्क्स पेन्शन स्वरूप मिलेंगें। उसके परिवार को एक अन्य पेन्शन राशि ढाई मिलियन फ्रेन्क्स की मिला करेगी तथा मेरी लुईस को परमा की डची प्राप्त होगी।

नेपोलियन ऐल्बा द्वीप में चला गया और फ्रांस में उसके वास्तविक शासक सम्राट लुई सोलहवें के भाई लुई उठारहवें को उसके पैतृक सिंहासन पर विराजमान किया गया।

नेपोलियन की ऐल्बा से वापसी

26 फरवरी, 1815 को नेपोलियन अपने सात सौ साथियों सहित आश्चर्य जनक रूप से ऐल्बा टापू से भाग निकला और उसने 20 मार्च को पैरिस में प्रवेश किया फ्रांस की जनता ने उसका बड़े जोश के साथ स्वागत किया और पुनः उसे अपना सम्राट स्वीकार किया और हज़ारों सैनिक उसकी सहायता हेतु उसके पास इकट्ठे हो गए। उसने उस समय यह घोषणा की कि वह फ्रांस की जनता को विनाश से बचाने हेतु पुनः फ्रांस आया है, जिससे शत्रुओं को उनसे बदला लेने का अवसर न मिले और वह पुनः फ्रांस की जनता के अधिकारों, स्वतंत्रता तथा समानता की रक्षा कर सके।

वाटरलू का युद्ध- 1815

नेपोलियन के भागनें का समाचार बियना पहुंच गया, जहां पर कि विजयी देशो के समस्त राजनीतिज्ञ योरुप में किस प्रकार शान्ति स्थापित की जाए तथा किस प्रकार पुरानी राज्य सीमाएं निर्धारित की जाएं, किसको वास्तविक उत्तराधिकारी माना जाए और किस प्रकार युद्ध के खर्च का भुगतान निश्चित किया जाए, इन समस्त समस्याओं का समाधान खोजने के लिए इकत्र हुए थे। समस्त संयुक्त देशों ने शीघ्र ही अपनी पुरानी संधियों को पुनः सुनिश्चित किया तथा इन्होंने न केवल नेपोलियन बोनापार्ट को पुनः पदच्युत किया परन्तु इसके साथ-साथ अपनी समस्त सेनाएं लेकर फ्रांस की ओर बढ़े। वेलिंगटन ने लगभग एक लाख ब्रिटिश, डच तथा जर्मन सैनिक इकट्ठे किए और ऐसी योजना बनाई कि उसकी सहायता के लिए प्रशिया के सैनिक कमान्डर ब्लूचर एक लाख सोलह हज़ार प्रशिया के सैनिकों के साथ उससे ब्रूसेल्स के निकट आकर मिले (वाटरलू नायक स्थल ब्रुसेल्स के दक्षिण में लगभग बारह मील की दूरी पर स्थित है) शारज़ेनबर्ग के नेतृत्व में आस्ट्रिया की सेना राइन के निकट पहुंच गई। नेपोलियन मुश्किल से लगभग एक सौ दिन ही पैरिस में रहा और इसके पश्चात् अपने एक लाख अस्सी हजार सैनिकों को लेकर 12 जून 1815 को संयुक्त देशों की संयुक्त सेना से मुकाबला करने के लिए चल दिया। भाग्यवश नेपोलियन को 18 जून को वाटरलू के स्थान पर वेलिंगटन और ब्लूचर की सम्मिलित सेना के हाथों पूर्ण पराजय प्राप्त हुई। 21 जून को नेपोलियन पैरिस पहुंचा और उसने पुनः फ्रांस का सिंहासन अपने पुत्र के पक्ष में खाली कर दिया और उसने फ्रांस से भाग कर अमेरिका जाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु वह अपने इस कार्य में असफल रहा विवश होकर ब्रिटेन के नौसैनिक जहाज़ी बेड़े के कप्तान मेटलेन्ड के समख आत्म समर्पण कर दिया और उसे सेन्ट हेलेना में निर्वासित कर दिया गया, जहां पर 5 मई 1821 को उसकी मृत्यु हो गई।

17.6 नेपोलियन का भूल

नेपोलियन ने कुछ बड़ी भूलें कीं। उनका विवरण इस प्रकार है:-

नेपोलियन द्वारा प्रतिपादित "कन्टीनेन्टल सिस्टम", जिसके द्वारा ब्रिटेन की आर्थिक परिस्थिति को बिगाड़ना था, उसके लिए सबसे बड़ी भूल सिद्ध हुई। इसके परिणाम स्वरूप व्यापार में गतिरोध उत्पन्न हुआ तथा आवश्यक वस्तुओं के दाम बहुत बढ़ गए। उसने अपने इस सिद्धान्त को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए शक्ति का सहारा लिया। इसके परिणाम स्वरूप वह अधिक कठोर हो गया। इससे उसके अनेक शत्रु बन गए। नेपोलियन का कूटनीति से स्पेन के राजसिंहासन पर अधिकार करना, उसका पुर्तगाल पर आक्रमण, उसके पोप के साथ तथा रूस के साथ विचारों में भिन्नता, ये समस्त उसके कन्टीनेन्टल सिस्टम को सुचारू रूप से लागू करने के प्रयत्न स्वरूप उत्पन्न हुए थे।

प्रायद्वीप युद्ध (Peninsular War) भी नेपोलियन के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुआ। स्पेन पर उसका प्रभुत्व स्थापित करने की समस्त चेष्टाएं व्यर्थ होने में उस समय की युद्ध पद्धति, स्पेन वासियों की गुरिल्ला युद्ध प्रणाली तथा ब्रिटेन का एक महत्वपूर्ण सामुद्रिक शक्ति होना, ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। वास्तव में स्पेन के फ्रोडे ने नेपोलियन की शक्ति का ह्रास करके उसको पतन की ओर अग्रसर किया।

इसी प्रकार नेपोलियन की अवनति का दूसरा मुख्य कारण उसका रूस पर आक्रमण करना था। वह विजय पाने की आकांक्षा में मास्को तक पहुंच गया, जो इसकी एक बहुत बड़ी भूल थी।

नेपोलियन ने बगैर किसी प्रदेश के निवासियों की विचाराधारा का ख्याल करते हुए अनेक अधीन राज्यों को जन्म दिया। इन राज्यों में उसने अपने रंग संबंधियों को शासक के पद पर रखा। इस परिवर्तन से जनता के हृदय मे धृणा की लहर ने जन्म लिया।

इस प्रकार सबसे मुख्य एवं महत्वपूर्ण शिक्षा जो नेपोलियन ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से योरोपवासियों को दी वह थी राष्ट्रवादिता या राष्ट्रीयता (Nationalism)

जर्मनी– जर्मनी में नेपोलियन के हस्तक्षेप के कारण वहां के निवासियों एवं राज्य परिवार में नेपोलियन के प्रति एक क्रोध की लहर फैल गई। नेपोलियन ने आस्ट्रिया और प्रशिया में शक्ति संतुलन स्थापित करने हेतु कई छोटे राज्य जर्मनी, बवेरिया, बरटम बर्ग तथा बडेन स्थापित किए। उसने रोमन साम्राज्य को भी नष्ट कर दिया और इस प्रकार उसने 1805 में 360 राज्यों के स्थान पर केवल 80 राज्य रहने दिए।

इटली:- आस्ट्रियन चान्सलर मेटरनिख के कथानुसार इटली केवल एक भोगोलिक नाम था। परन्तु नेपोलियन ने यहां पर राष्ट्रीय चेतना जागृत की। नेपोलियन वह प्रथम शासक था जिसने इटली को एक सूत्र में बांध कर उसे राष्ट्र की संज्ञा प्रदान की और उसने स्वयं को रोम का सम्राट घोषित किया।

पोलैंड - जब पोलैण्ड का विभाजन हुए और उसका बटवारा बड़े देशों जैसे रूस, प्रशिया एवं आस्ट्रिया के बीच में हुआ, उस समय प्रत्येक देश ने पोलैंड के अस्तित्व को समाप्त करने का प्रयत्न किया। उस समय केवल नेपोलियन ही वह व्यक्ति था जिसने पोलैंड़ के एक भाग को "ग्रान्ड डची आफ् वारसा "में परिणित किया: इस प्रकार उसनें पोलेंड वासियों की सहायता करके अनके प्रथक अस्तित्व को बनाए रखा तथा उनमें राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया।

आटोमन एम्पायर– सन् 1798 में नेपोलियन ने मिस्र (Egypt) पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का मुख्य ध्येय ब्रिट्रेन के भारत से होने वाले व्यापार में गतिरोध उत्पन्न करना था। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने ज़ार एलेग्ज़ेन्डर प्रथम को तुर्की पर आक्रमण करने हेतु प्रोत्साहित किया। ग्रीस को स्तंतत्रता प्राप्ति भी केवल आटोमन एम्पायर में निरन्तर उपद्रव उत्पन्न करके ही हो सकती थी।

विज्ञान– उस समय नेपोलियन ही एक मात्र ऐसा व्यक्ति था जिसने विज्ञान की खोजों को समाज के लिए अत्यन्त हितकर मानकर उसकी प्रशंसा की थी। सन् 1799 और 1814 के मध्य में लेपलेस ने अपने ग्रंथ "मेकेनिक सेलेस्टी" के प्रथम चार भागों में कई पुरानी प्रचलित मान्यताओं को समाप्त करके न्यूटन के ग्रविटेशन (आकर्षण) के सिद्धान्त की उचित व्याख्या की थी तथा सौर्य पद्धति (Solar System) को भी पूर्ण रूप से उजागर किया था। एक नई स्थापित संस्था "इकोल पोलीटेक्नीक" के अध्यक्ष पद पर विराजमान मोन्गे ने ज्योमेट्री विज्ञान का आविष्कार करके गणित में ग्राफ़ीय पद्धति को जन्म दिया।

17.7 उपसंहार

इतिहासकारों ने नेपोलियन की अचानक उन्नति तथा उसके एक शक्तिशाली शासक बनने के अनेक कारण बताए हैं। उनके विचार में यह उस समय समय की एक आवश्यकता थी। जिसको फ्रांस में हुई राज्यक्रांति तथा उस समय व्याप्त अव्यवस्था ने जन्म दिया था।

यहां यह कहना उचित नहीं होगा कि नेपोलियन की उन्नति का कारण उसकी Dictatonal भावना स्वरूप हुई और जनमत के विरोध के बावजूद भी वह शासक बना। क्योंकि उस समय की जनता प्रजातंत्र की मांग कर रही थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महान व्यक्ति सदैव जनता जर्नादन के सहयोग के फलस्वरूप ही उस स्थान तक पहुंच सके हैं। इसी प्रकार नेपोलियन भी जनता के सहयोग के कारण ही इतनी उन्नति कर सका। उस समय जनता ने यह उचित समझा कि नेपोलियन ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उनको प्रजातंत्र की घाड़यंत्रकारी शक्तियों से अपनी अपार शक्ति द्वारा उनकी रक्षा कर सकता है।

किसी भी नेता के लिए केवल जनता की सहायता ही पर्याप्त नहीं होती। उस नेता में स्वयं में भी ऐसे गुण्ण होने चाहिएं जो उस पद की गरिमा को बनाए रखें। नेपोलियन के विषय में यह निर्विवाद सत्य है कि वह अपने गुणों, आकांक्षाओं एवं अपरिचित क्षेमता के फलस्वरूप ही इतनी उन्नति कर सका। उसका अद्धितीय साहस

अपूतपूर्व नैतृत्व, जनता को प्रसन्न रखने की क्षमता, समस्त कठिनाईयों का साहसपूर्वक सामना करना तथा अपने देश की आवश्यकतों की यथाशक्ति पूर्ति करने के फलस्वरूप ही वह उन्नति कर इतने महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त कर सका।

17.8 अभ्यासार्थ प्रश्नः

1- नेपोलियन के व्यवस्था संबधी सुधारो (Institutional Reforms) की व्याख्या कीजिए ? उनसे किस प्रकार उसकी अद्धितीय योग्यता का आभास होता है ?

2- नेपोलियन बोनापार्ट के प्रथम कोन्सल के रूप में किए गए कार्यों पर प्रकाश डालिए ?

3- नेपोलियन के "कन्टीनेन्टल सिस्टम" की व्याख्या कीजिए ? इस सिस्टम का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

4- "कन्टीनेन्टल सिस्टम" किसे कहते हैं ? नेपोलियन ने किस प्रकार इसको लागू किया ?

5- फ्रांस और रूस की संधि की असफलता के कारण बताइये ?

6- नेपोलियन की अवनत्रि के कारण बताइये ?

निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणी (Short Notes) लिखिएः-

(i) कोन्सुलर कन्सटीट्यूशन (कोन्सुलर संविधान)

(ii) कनकोरडेट

(iii) कोड आफ नैपोलियन

(iv) 1807 में हुई टिलसिट की सन्धि

(v) प्रायद्वीय युद्ध (Peninsular War)

(vi) कन्टीनेन्टल सिस्टम या अवरोध (Blocked)

(vii) 1814 में हुई फ्रोन्टेन ब्लू की सन्धि

संदर्भ ग्रंथ

1- एबट, जोसेफ. एस.सी.- *दी लाइफ आफ नेपोलियन बोनापार्ट (देहली, 1972).*

2- फिशर, एच. ए. एल- *बोनापार्ट्ज्म (आक्सफोर्ड 1914).*

3- टी. थोम्पसन, जे. एम.- *नेपोलियन बोनापार्ट, हिज़ राइज़ एन्ड फाल*

4- मरखम, एफ. एम. एच- *नेपोलियन एन्ड अवेकनिंग आफ योरुप (1954)*

5- डोज, टी.ए. - *दी बिगनिंग आफ दी, फ्रेन्च रिवोल्यूशन टू दी बेटल आफ वाटरलू- 4 भाग (1904-7)*

6- थामसन, डावड - *योरुप सिन्स नपोलियन (लन्दन 1962).*

7- ग्रान्ट, ए जे और टेम्परले, एच.- योरूप इन दी नाइनटीन्थ एन्ड ट्वन्टीएथ सेन्चुरीज़ 1789-1950 (लन्दन 1961).

8- हेज़न सी. जे. एच. ए पोलिटिकल एंन्ड कल्चरल हिस्ट्री आफ माडर्न योरूप- वोल. 1, 1500-1830 (न्यूयार्क 1947)

9- हेज़न, सी.डी. - *माडर्न योरुप अप टू 1945 (देहली 1968)*

10- केटलबी, सी.डी.एम- *ए हिस्ट्री आफ माडर्न टाइम्स फ्रांस 1789. टू प्रेज़ेन्ट डे (लन्दन 1948).*

11- बारलीन, एम. ई. - *दी फाउन्डेशन्स आफ माडर्न योरुप- 1789-1871 (लन्दन 1968).*

12- कोलिन्स, इरीन - *दी एज आफ प्रोग्रेस. ए सर्वे आफ योरो- पिअन हिस्ट्री फ्राम 1789-1870 (लन्दन 1964).*

MAHY-102

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

एम. ए. पाठ्यक्रम

(इतिहास)

खण्ड - 3

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 18	
रूस की अर्थव्यवस्था-एक पृथक संसार	3-15
इकाई 19	
अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम	16-30
इकाई 20	
अमेरिकी क्रान्ति का महत्व	31-37
इकाई 21	
अमेरिकन संविधान का निर्माण	38-47

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी. एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार,
निदेशक, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. बी. आर. ग्रोवर,
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. एस. पी. गुप्ता,
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. जे. पी. मिश्रा,
इतिहास विभाग, काशी, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

प्रो. के. एस. गुप्ता,
इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. बृजकिशोर शर्मा,
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज)

डा. कमलेश शर्मा,
इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान,
इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

प्रो. मन्सूरा हैदर,
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

डा. आर. के. पन्त,
ऐसोसियेट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

श्री एच. सी. जेन,
इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. सम्पत जैन,
प्राचार्य, एस. एस. जैन सुबोध-महाविद्यालय जयपुर (राज.)

अकादमिक प्रशासनिक व्यवस्था

- डॉ. आर. वी. व्यास, कुलपति
- श्रीमती कमलेश शर्मा
- डॉ पी.के.शर्मा, निदेशक, पा.सा.उ.एवं वि. विभाग

पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

- योगेन्द्र गोयल
  सहायक उत्पादन अधिकारी

सर्वाधिकार सुरक्षित ! इस पाठ्यक्रम का कोई भी अंश वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति प्राप्त किये बिना या मिमियोग्राफी अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करना वर्जित है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा से प्राप्त की जा सकती है।

इकाई-18
रूस की अर्थव्यवस्था-एक पृथक संसार

इकाई की रूपरेखा

18 .0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 सामन्तवादी रूस की अर्थ व्यवस्था

(क) ऐतिहासिक संदर्भ

(ख) उद्योग नगर तथा व्यापार

(ग) कृषिदासता का अन्त

18.3 रूसी अर्थव्यवस्था औद्योगिक पूंजीवाद के युग में (1861-1900)

18.4 औद्योगिक क्रान्ति समापन तथा पूंजीवादी उद्योग का उत्थान

18.5 रूस में साम्राज्यवाद

18.6 स्टालीग्रिन सुधार

18.7 क्रान्ति के युग में वित्तीय व्यवस्था

(क) राजधनी पर रेड गार्ड आक्रमण

(ख) भूमि आज्ञप्ति

18.8 वित्तीय पूंजीवारी

(क) आन्तरिक व वाह्य व्यापार में वृद्धि

(ख) इन्डस्ट्री का राष्ट्रीयकरण तथा श्रमजीवियों का नियन्त्रण

18.9 सोशलिस्ट सरकार की आर्थिक नीति

18.10 नेप अथवा नवीन वित्तीय योजना

18.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको रूस की वित्तीय व्यवस्था के संदर्भ में बहुत ही संक्षिप्त जानकारी देना है। रूस अद्भुत रूप से अपने में एक अलग संसार था जिसके नये-नये तजरबों ने विश्व में अनोखें आदर्शों तथा नवीनतम धारणाओं पर आधारित प्रशासन तथा वित्तीय व्यवस्था शुरू की।

इस इकाई के अध्ययन से आपको निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जाएगा-

रूस में विभिन्न सामन्तवादी अवस्थान तथा उन की आर्थिक स्थिति का ऐतिहासिक संदर्शन

औद्योगिक पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी रूस में वित्तीय व्यवस्था

16 वी शताब्दी के अन्त में बीसबी शताब्दी के प्रारम्भ तक हुए सुधार तथा बदलाव। समाजवादी रूस में 1917 की क्रान्ति के पश्चात वित्तीय सृष्टि का मूल्यांकन

18.1 प्रस्तावना

अन्य देशों के समान रूस में भी विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक विरचन (आदिमवाद, सामुदायिक, समान्तवाद तथा साम्राज्यवाद) की अनुवृत्ति हुई। परन्तु रूस में कुछ अद्भुत भी घटा जब साम्राज्यवादी स्थिति श्रमजीवियों के नियंत्रण में परिवर्तित होकर समाजवादी प्रथा बन गई। इस नई प्रणाली की महता इसलिये और भी उजागर हुई कि कुचला हुआ रूस शीघ्र विश्व की महान शक्ति बन गया अनुदर्शतयः सामन्तवाद को अस्त-व्यस्त कर दिया था। अन्य प्रगतिशील साम्राज्यवादी देशों की तुलना में तकनीकी तथा आर्थिक रूप से रूस के पिछड़ेपन का मुख्य कारण यही था। जार के निरंकुश शासन तथा तानाशाही व पूंजीवादी सामन्तवाद में पनपती क्रूरता ने वर्गो के पारस्परिक अन्तरविरोध को और बढ़ा दिया था। 19 वी शताब्दी के अन्त से ब्रिटिश, फ्रांसीसी, बेलजियन एवं जर्मन पूंजी रूस के मूल उद्योगों के विभिन्न क्षेत्रों पर छाने लगी। इस प्रवाह द्वारा पश्चिमी पूंजीवादीयों ने रूस को औद्योगिक बनाने में सहायता तो कम की परन्तु शोषत श्रम जीवी वर्ग को चूस डाला। युद्ध से पूर्व (1913) की तुलना में रूस 1915 से दीवालिया होने लगा। राष्ट्रीय ऋण बढ़ने लगा अन्तरिम सरकार के सभी कदम बेकार गए। दुर्भिक्ष, भुखमरी तथा "कोरनिलव" समान आर्थिक नीति मार्च जुलाई 1917 तक चलती रही तथा सितम्बर, अक्टूबर 1917 के भीतर 340 प्रतिशत खाद्य वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हुई। 1917-20 तक संपिडन, 1921-25 तक आर्थिक बहाली तथा 1916-32 तक समाजवादी आर्थिक नीति की नीव खड़ी। इसका परिणाम था एक समृद्ध तकनीकी तथा वैज्ञानिक रूप से प्रगतिशील रूस भले ही उसकी इस अनूठी प्रणाली का अस्तित्व क्षणिक सही।

18.2 सामन्तवादी रूस की आर्थिक स्थिति-ऐतिहासिक संदर्भ

क- ऐतिहासिक संदर्भ-

कृषि तथा कृषक-साधारणतः सामन्तवादी रूस में 9 से 19 वी शताब्दी तक निम्नलिखित अवस्था बताए जाते है, आदि सामन्तवादी काल (9-12) उन्नतिशील सामन्तवाद (13-14) शताब्दी, उत्तर, सामन्तवादी काल (15-17 वी शताब्दी) तथा निरंकुश सामन्तवादी एवं कृषिदासता (18-वी शताब्दी) कृषिदासता का अन्त (18 वी शताब्दी के अन्त से 19 वी शताब्दी के मध्य तक) तथा पूंजीवादी स्थिति एवं कृषिदासता की समाप्ति (1861 में)

इन सभी स्थितियों में रूस की आर्थिक व्यवस्था का मानांकन 3 प्रकार से किया जा सता है:-

1- **ज़मीनदारी के आकार तथा उसकी प्रकृति के आधार पर।**

2- फर्मिक तथा फार्म के परिपालन के आधार पर।

3- कृषिदासता जो शोषण का साधन थी तथा कृषि के श्रम द्वारा कार्यान्वित होने के आधार पर

भूमि का सामन्तवादी समाज में महत्व रहा था क्योंकि इसी के द्वारा कृषकों की आर्थिक रूप से पराश्रित स्थिति में रखा जा सकता था। 19 वी शताब्दी से प्रारम्भ यह स्थिति बड़ी जल्दी फैलने लगी सम्राटों, चर्च के पादरीगणों तथा अन्य समृद्ध लोगों को भूमि के आर्थिक महत्व ने स्मर्द (सामुदायिक भूमि) पर हाथ डालने पर मजबूर किया क्योंकि सभी उपजाऊ भूमि वे ले चुके थे। रूस में जितनी समुदायिक भूमि थी उन्हें "बोयर ने (सबसे समृद्ध तथा शक्तिशाली) लोगों ने हथिया लिया था। भूमि सम्बन्धी ओतचीना अधिकारों (जो 12 से 15 शताब्दी तक प्रचलित रहे) के अंतर्गत जमीन के मालिक उसे बेच सकते थे अथवा किसी की भी दे सकते थे। अथवा 1565 में, इवान ने ओतचीना के स्थान पर आपरीचीना अधिकारों का प्रारम्भ किया जिसके द्वारा बोयरों के विरूद्ध कार्यवाही समाप्त कर दी। अब किसी भी जमीन को हथिया कर दरबारी अथवा शाही लोग ले सकते थे तथा केन्द्रीय शासन सुदृढ रह सकता था। एक आपरीचिन सैनिक संगठन भी इसी उद्देश्य से बनाया गया। 1572-84 तक एक विभाग अलग से खोला गया कि नई बढ़ती हुई जमीनों का ब्यौरा रख सके। 18 वीं शताब्दी से औतचीना प्रणाली फिर से शुरू हो गई। 19 वी शताब्दी तक कृषकों से उनकी भूमि तेजी से छीनी जाने लगी। 1850 में कृषकों के पास जमीनदारों की जमीन का केवल 1/3 भाग रह गया।

रूस में कृषि प्रधान सुधार कम ही थे। वैसे तो सामन्तवादी युग में दो प्रकार की खेती थी बंजर या परती (जिस में कोई वस्तु कई वर्षों तक बोकर जमीन को कई वर्षों के लिए खाली छोड़ देते (दूसरी दो खेत प्रणाली जिसमें आधी भूमि एक सोचे समझे ढंग से प्रयोग में लाकर आधी छोड़ी जाती) कुछ दिनों बाद इसे त्रिकृषि (Three field system) प्रणाली पर आधारित कर दिया गया जो चलता रहा। रूस में अधिकतर राई, गेहूँ जौ, चना, फाफर इत्यादि को पैदावार होती।

कृषि प्रधान रूस में बन्धुआ मजदूर एवं ऋण तथा अनुबन्धों द्वारा जुड़े हुए निर्धन थे जो जाकुपी (बन्धुआ ऋण द्वारा) तथा रियादोविच (अनुबन्धों द्वारा बन्धुओं) कहलाते थे। इवान तृतीय ने अपने सूदेबनीक (1497) (कानूनों की पुस्तक) में कृषकों की शरत काल के 15 दिनों के अतिरिक्त (अपना काम समाप्त करके भी) खेत तथा मालिक बदलने। छोड़ने की मनाही कर दी थी। 1581 से यह 15 दिन की छूट भी समाप्त हो गई। 1592 में सभी भूमि वालों तथा कृषकों की सूची बनी तथा इस रजिस्टर द्वारा कृषकों पर उनके मालिकों को कानूनी तौर से पूर्ण अधिकार मिल गया। 1597 में सरकार ने जो मजदूरों को वापस आ जाने की चेतावनी दी तथा 1607 में दी गई 15 वर्ष की अवधि (भागे कृषकों के लिए) 1649 में स्टेट काउन्सिल के कानून से समाप्त कर दी गई। अब कृषक "बन्धुवा" हो गया तो उसने निरन्तर कीव रूस में विद्रोह किए (1024, 1068, 1031 तथा 1113)। 1606-1607 का इवान वलोत्नीकोव का विद्रोह हुआ 1667-771 का कृषिक विद्रोह स्टेपान राजिन

के नेतृत्व में हुआ। जार ने इनका दमन कड़ाई तथा क्रूरता से किया। अब कानूनी तौर पर कृषिक कोई शिकायत भी नहीं कर सकता था पर जमीनदार अवश्य उसे साइबीरिया में निकाला देने का अधिकार रखता था। 1773-75 में युगाचन के नेतृत्व में एक कृषकों का विद्रोह हुआ। उनके उद्देश्य बहुत साफ तौर पर क्रान्तिकारी भले ही न हो पर उनके असन्तुष्ट होने के द्योतक अवश्य थे।

ख-उद्योग, नगर, व्यापार-

उद्योग-धन्धे (मुख्यतः रेशमी, ऊनी, कपड़े लकडी के काम, जहाज बनाना वर्तन मिट्टी तथा चीनी के, धातु लोहे, चांदी सोने तांबे की वस्तुये) 16 वीं 17 वीं शताब्दी में बहुत प्रगति पर थे यद्यिप उन्हें मंगोल काल (1236-1480) में कुछ झटका लगा था। 1700 में 30 फैक्ट्रियां थी जो 1725 में 191 तथा 1769 में 655 हो गई। 1770 से 1861 के सुधारों तक संख्या 15388 हो गई।

धीरे-धीरे नगर बढ़ने लगे 9 वी 10 वी शताब्दी के 24 नगर 11वीं में 64, 12 वी शताब्दी में 135 हो गए जिन में कीव, नवगोरद् रोस्तव, स्मालेन्स्क, पलोत्सकव मुख्य थे। तातार मंगोल आक्रमण से कुछ धक्का लगा पर 13 वी। शताब्दी में 300 नगर थे 15-17 शताब्दी में मास्को (1147 में बसा) राजनैतिक, धार्मिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र हो गया। 18 वी शताब्दी में पीटर प्रथम ने फिनलैन्ड की खाड़ी पर स्वीडन से छीन कर नवीन नगर सेन्ट पीटर्ज वर्ग बनाया। 18 वीं तथा 19वी शताब्दी में कई नए नगर बसे।

कीव तथा नवगोरद में व्यापार बढ़ा जहां देशी तथा विदेशी सभी माल मिलता था। रूस के एकीकरण (1653) से आन्तरिक रूकावटें तथा कस्टम समाप्त हो गया। 17 वी शताब्दी से व्यापार इतना बढ़ा कि 18 वीं शताब्दी के मध्य का 18 मिलियन रूबल हो गया। 1860 में विदेशी व्यापार 2103 मिलियन से 19 वी में 126 9 मि. रूबल तथा 1856-60 में 431,5 मि. रूबल हो गया। व्यापार की यह उन्नति इस तथ्य की पुष्टि करंती है कि बेगार समाप्त हो रहा था टेकनालोजी बेहतर हो रही थी।

ग- सर्फडम (कृषिदासता) का अन्तः

रूस की आर्थिक उन्नति में पूंजीवाद निहित था। अब सामन्तवादी कृषिदासता नहीं चल सकती थी। 1853-56 के कीमियन युद्ध ने रूस की पिछड़ी स्थिति से उसे अवगत करा दिया। जार एजेक्सेंडर II ने बन्धुवा कृषिदासों को छुटकारा देने के लिए सुधार किए। अब जमीनदार कृषिकों को बेच खरीद नहीं सकता था। कृषक अब स्वाधीन थे। उस्तावनीय ग्रामती (title-deeds) द्वारा सब कानूनी तौर पर सम्पन्न हुआ धीरे-धीरे नाना प्रकार के कृषि प्रधान सुधारों से रूस में दूसरे विभागों में भी सुधार हुए। 1861 के सुधारों में सीमित आकांक्षाओं की पूर्ति शोषण तथा क्रूरता अवश्य छाई दिखाई देती है फिर भी इससे कुछ प्रगतिशीलता का आभास भी होता है। औद्योगिक पूंजीवाद तथा अर्थव्यवस्था की उन्नति हुई जेम्स्तवा (गांवों की लोकल सरकारों) के सुधार के बाद 1864 में न्याय प्रणाली में 1870 में नागरिक लोकल सरकार में तथा 1874 में सेना सम्बन्धी सुधार हुए।

रूस का इस तीव्र उन्नति से औद्योगिक प्रगति हुई तथा एक श्रमजावा वर्ग उभरा जिसने पूंजीवाद को समाप्त करके एक स्वाधीन जीवन की ओर अग्रसर होने में सहायता की।

18.3 रूसी अर्थव्यवस्था औद्योगिक पूंजीवाद के युग में (1861-1900)

18 वीं शताब्दी में सामन्तवाद तथा कृषिदासता समाप्त होने के पश्चात 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से प्रगतिशील उत्पादन शक्तियों तथा पिछड़े हुए उत्पादन के सम्बन्धों के मध्य एक युद्ध सा छिड गया। यद्यपि अभी पुराने तत्व विद्यमान थे, 1861 के सुधारों ने रूस को उन्नति को पूंजीवादी धाराओं पर लाडाला। अब अक्रियता का अंत होने लगा। भ्रान्तिपूर्ण नारोदनिकों का विचार था कि रूस में न कभी पूंजीवाद था (न होगा), न कोई श्रमजीवी वर्ग उठेगा न उभरेगा अतएव केवल कृषक ही क्रान्ति ला सकेंगे या यह कि रूस की उन्नति का आधार उस के कुटीर उद्योग धन्धों पर आधारित था। यह कभी उन्होंने नहीं सोचा कि रूस में सभी तत्व ऐसे विद्यमान थे जो पूंजीवादी उत्पादन में सहायक हो सकते थे। यह सत्य है कि औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि में (19 वीं शताब्दी के उत्तर्राद्ध से) रूस ने ब्रिटेन, फ्रांस को पीछे छोड़ दिया था। 18 वीं शताब्दी में रूस में पूंजी का संचयन (भूमि द्वारा) का अभाव भी न था। ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियाँ (1861 में 272 मि0 रूबल, 1873 में 373-117 मि0 रूबल, तथा 1874-81 में 272 कम्पनियां 805, 6 मि0 रूबल) थी। इस प्रकार से पूंजीवाद की एकाग्रता से 2 मुख्य वर्ग श्रमजीवी मजदूर तथा औद्योगिक बूर्ज्वा उभर आये। 19 वीं शताब्दी के अंत तक 10 मिलियन मजदूर थे जो केवल संख्या में नहीं बढ़े थे अपितु, वह अपनी शक्ति को भी समझ चुके थे। लेनिन ने समय को सामाजिक रूप से 3 भागों में बाटा था।

1. अमीर वर्ग जिन की सत्ता 1825 से 1861 तक थी

2. राजनोचिन्त सी अन्य शिक्षित 1861 से 1895 तक जो क्रान्ति की आत्मा थे।

3. प्रालीतैरियत युग जो 1895 से प्रारंभ हुआ।

लेनिन के विचार में रूसी कृषि में पूंजीवाद की प्रगति उसे समकालीन प्रचलित 2 रूप (प्रशा या अमेरिका का) दे सकती थी। दोनों ही स्थितियों में सर्फडम (कृषिदासता) के साथ कैपिटलिज्म अनिवार्य था। रूस में कृषक अभी भी भूमिवानों पर निर्भर था। इन्डस्ट्री के समान भूमि भी गिने, चुने समूह के पास एकत्रित हो गई। फार्मिश मशीनें तथा पशु भी कुलक (जमीदारों) के ही साथ में थे। इस प्रकार कृषक वर्ग भी टूट कर बिखरने लगा। धीरे-धीरे इस समाज का पुराना अस्तित्व एक नया आकार लेकर उभरा। अब दो वर्ग थे समृद्ध कुलक तथा निर्धन कृषक मजदूर। 1861 से 1900 तक बहुत कृषक नगरों में बस गये जहां आय काम द्वारा बढ़ सकती थी। फिर भी नवीन मशीनों द्वारा कृषि उत्पादन में बढ़ोत्री रही। कारण था खेतिहर भूमि तथा करों में बृद्धि। इस प्रकार कृषक भले ही बरबार हुआ हो जमीनदार कुलक की अमीरी बढ़ती गई।

18.4 औद्योगिक क्रान्ति समापन तथा पूंजीवादी उद्योग (कैपिटलिस्ट इन्डस्ट्री) का उत्थान

19 वीं शताब्दी के अंत से इन्डस्ट्री में विभिन्न प्रकार की उत्पादन प्रणाली प्रचलित थी जिसमें कुटीर उद्योग से लेकर बड़े पैमाने के इन्डस्ट्रीयल उत्पादन विद्यमान थे। इन्जीनियरिंग इन्डस्ट्री के द्वारा मशीनों से मशीनों की उत्पत्ति इत्यादि। प्राईवेट इन्टरप्राईजेज तथा पूंजीवादी उत्पादन ने एक ओर कुटीर धन्धे समाप्त किये तो दूसरी ओर उत्पादन की एकाग्रता तथा बढ़ोत्री ने बड़े-2 पूंजीवादियों, बैंकिग तथा ट्रांसपोर्ट कम्पनियों को मनोपोली ऐसोसियेशन बनाने तथा उत्पादन कन्ट्रोल करने की ओर आकर्षित किया जो बढ़ता गया। उत्पादन के सभी क्षेत्रों में विदेशी पूंजी और विदेशी ज्वाइन्ट स्टाक (बेलजियन, फ्रेन्च, जर्मन, ब्रिटिश, तथा अमरीका) पूंजी छाने लगी। यद्यपि इस से आर्थिक गतिविधियों देश में बढ़ी।

19 वीं शताब्दी के अंत से रूस के आयात में परिवर्तन हुआ। इन्डस्ट्री की उन्नति से मशीनों का निर्यात बढ़ा। पहले की महत्वपूर्ण कपास अब दूसरे नम्बर पर और धातु तीसरे स्थान पर पहुंच गया। रूस के सेन्टपीर्टजबर्ग की औद्योगिक उद्यम कार्यों के लिए रूस ने कोयले का आयात बढ़ाया तथा चाय, ऊन, फल, शराब इत्यादि की खरीद तेज कर दी। पहले 1857 तथा 1868 के अबाद्य व्यापार फिर 1891 में संरक्षात्मक शुल्क (प्रोटेक्टिव टैरिफ) शुरू हुआ जिस से कस्टम 33% प्रतिशत (वस्तुओं के मूल्य पर) लगाया गया। साथ ही सिक्कों के प्रचलन तथा प्रसार सम्बन्धी सुधार, हुए जिसके अंतर्गत सोने चांदी के सिक्कों को बैंक के नोटों से बदला गया। शराब, तम्बाकू, शक्कर इत्यादि पर उत्पाद शुल्क लगा। परन्तु गर्वनमेंट के टैक्स का भुगतान करने वाले केवल श्रम जीवी थे। स्टेट वजट उतना ही घृणा का पात्र थे जितनी कर प्रणाली थी। सरकार ने 1895 से 1897 के मध्य एक मुद्रा सम्बन्धी सुधार किया जिसके अन्तर्गत कागज के रूबल को 66 2/3 सोने के कोपेक के बराबर कर दिया गया। 1867 में स्टेट बैंक को नोटों की आवश्यकतानुसार छापने तथा प्रचलित करने के आदेश से आर्थिक रूप से राहत मिली, अर्थव्यवस्था में प्रगति देश में पूंजीदार सम्बन्धों की वृद्धि साख की बढोतरी तथा विदेशी पूंजी का अन्तर्वाद हुआ।

18.5 रूस में साम्राज्यवाद

रूस के साम्राज्यवादी युग की प्रमुख विशेषता थी आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में इजारेदारी। लेनिन का प्रसिद्ध कथन था कि "साम्राज्यवाद की अत्यंत उचित परिभाषा यही है कि वह पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था है इसकी 5 मुख्य विशेषतायें हैं। (1) पूंजी तथा उत्पादन का केन्द्रीकरण (2) बैंक पूंजी का औद्योगिक पूंजी में सम्मिश्रण तथा परिणाम स्वरूप उनका वित्त पूंजी तथा वितीय अल्पतंत्र में परिवर्तन (3) वस्तुओं के स्थान पर पूंजी के निर्यात का महत्व बढ़ जाना, (4) अर्न्तराष्ट्रीय स्तर की मनोपोलिस्ट पूंजीवादी संस्थाएं जिन्होंने लाभ हेतु संसार को आपस में बांट लिया था (5) समस्त संसार का महान पूंजीवादों के बीच क्षेत्रींय वितरण। इस प्रकार सभी पांचों चिन्ह रूस में दृष्टिगोचर होते हैं अतएवं अन्य देशों के समान रूस भी 19 वी शताब्दी के अन्त तथा 20 वी शताब्दी के प्रारंभ में साम्राज्यवादी हो चुका

था परन्तु रूस में अन्य देशों के मुकाबले कहीं अधिक उत्पादन का केन्द्रीकरण था और किसी भी देश में रूस के समान बड़े-बड़े औद्योगिक इन्टरप्राईजेज में इतने अधिक मजदूर न थे। उत्पादन के केन्द्रीयकरण से शक्तिशाली मनोपोली की बढ़ोत्तरी हुई बैंको के इन्डस्ट्री पर प्रभाव के परिणामतयः वित्तीय पूंजी व (फाइनेन्स कैपिटल) तथा अल्पतंत्र बढ़ा। यद्यपि पिछडे पन तथा आर्थिक दशा के कारण रूसी पूंजी ने भी अंतराष्ट्रीय मनोपोली संस्था तथा वितरण में भाग लिया रूस जापान युद्ध रूस की साम्राज्यवादिता का खुला परिणाम था।

रूसी समाज में पूंजीवाद की परजीविता तथा क्षीणता की भी अपनी मुख्य विशेषतायें थी। शोषण द्वारा एकत्रित धन से पनपता छोटा सा वर्ग एक बड़े समाज के लिए किसी भी प्रकार से लाभप्रद न था। स्वार्थ के लिये मूल्यों में वृद्धि, तथा मुनाफाखोरों द्वारा तेल, लोहा, कोयला जैसी आवश्यक सामग्री की उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध, तकनीकी प्रगति पर रोक, देश की प्राकृतिक उपज का शोषण और उस पर विदेशी धन का देश में प्रवाह ऐसी स्थितियां थी जो रूस जापान युद्ध की पराजय की शक्ल में उभरी परन्तु यह जनता की नहीं जार की हार थी। 1600 से 1907 तक के कई प्रदर्शनों ने क्रान्ति का वातावरण बना दिया परन्तु रूस की यह क्रान्ति अन्य देशों में हुई क्रान्ति से अपने परिणामों के कारण भिन्न थी।

क्रांति तथा विश्व युद्ध के रूस को प्रारंभ में धक्का, लगा। रूस के जर्मनी से शीत युद्ध तुर्की ईरान मध्य पूर्वी देशों के संदर्भ में चल ही रहा था। 1900-03 तथा 1908-09 की आर्थिक संकटावस्था 1910-14 के मध्य समाप्त होने लगी। परन्तु रूस के मनोपलिस्ट के धन हथियाने की प्रवृत्ति से प्रतियोगिता के अभाव तथा विदेशी धन के प्रवाह से एक ओर तो तकनीकी पतन तथा उत्पादन प्रवृत्ति का शिकार हुए तो दूसरी ओर मुट्ठी भर मनोपोलिस्ट रूस की सरकार को अपने आर्थिक लाभ का एक जरिया समझने लगे। सरकार ने सेनाओं के हितों पर अर्थव्यवस्था के नियम बनाए कुछ विशेष संस्थायें इन्डस्ट्री की विभिन्न शाखाओं की देख रेख को नियुक्त कर दी गई।

18.6 स्टालीपिन सुधार

1905-7 की क्रांति में कृषकों के विद्रोह प्रदर्शन तथा 1901 की 7 फसल की खराबी से 1906 में सरकार ने राहत कार्यों की ओर ध्यान दिया पर जार की सरकार फिर भी समृद्ध किसानों के हितों की रक्षा में अधिक सक्रिय थी तथा उन्हें अपनी सत्ता का आधार समझती थी। पूंजीवादी आधार पर स्टालीपिन (जो एक चरम पन्थी प्रतिक्रियात्मक व्यक्ति था तथा सरकार से भूतपूर्व अमीर तथा गवर्नर फिर मंत्री इत्यादि होने के नाते जुड़ा था) सुधार हुए तथा जार का उकाज (आर्डर) 09 नवम्बर 1906 में किया हुआ जून 14, 1910 में कानून बन गया। इसके अंतर्गत जमींदार अधिकतर भूमि खरीदकर अपने फार्म बनाने तथा निर्धन कृषक भूमि बेच कर नगर में नौकरी की खोज को उतावले हो उठे। कृषकों की भूमि बैंकों के (जो 1880 में बना था) कानून नई दशानुसार ढाले गये जिसने 1906-15 तक 465 मिलियन रूबल की जायदाद के ठिकाने लगाने में सहायता दी। कृषकों को कहीं भी बस जाने की

अनुमति तथा यूरोपी भागों से निकलकर मध्य ऐशियाई भागों में बसाने की प्रथा प्रारम्भ हुई।

स्टालिपिन सुधारों ने रूस को बूर्ज्वा राजतंत्र में ढाल दिया। कृषि दासता की प्रथा की बुराईयों को समाप्त कर के भी इस सुधारने समृद्ध तथा निर्धन कृषकों के मध्य के फास्ले को और भी बढ़ा दिया।

18.7 क्रांति के युग में वित्तीय व्यवस्था

क. राजधानी पर रेड गार्ड आक्रमणः-

लेनिन ने क्रांति के पश्चात के प्रथम 4 महीनों (25 अक्टूबर से फरवरी 1918 तक) को "राजधानी पर रेडगार्ड के आक्रमण" का युग कहा है जो आवश्यक क्या अनिवार्य हो गया था शोषण से श्रम जीवियों को मुक्त कराने के लिए बूर्ज्वा क्रान्ति के विपरीत समाजवादी क्रान्ति सत्ता को सम्पूर्ण उद्देय नहीं समझती बल्कि अपनी मन्जिल की ओर प्रथम चरण मानती है। राष्ट्रीयकरण सहसा नहीं हो सकता। आर्थिक स्थिति का पूर्ण रूप से बदलाव नई धाराओं तथा धारणाओं के आधार पर और भी पैचीदा काम है। अक्टूबर क्रान्ति के फौरन बाद लेनिन ने एक पाण्डुलेख श्रमजीवियों के नियंत्रण के पाण्डुलिपित अधिनियम लिखा जिसमें उद्योग, खेतीबाड़ी, बैकिंग तथा अन्य मुद्दों का कार्यान्वित करने की जिस्मेदारी श्रमजीवियों की बताई। यद्यपि मेनशविक इस के विरूद्ध थे। परन्तु 14 नवम्बर 1917 में आल रशा सेन्ट्रल एक्जेकेटिव कमीटी ने इस कन्ट्गोल को मान्यता देकर श्रमजीवी नियंत्रण आज्ञिप्त, द्वारा सारे उद्योग, इण्डस्ट्री पर काबू पाया। नए सामाजिक रिश्ते बनाए गए उत्पादन बल्कि उसके संगठन का भी उत्तरदायित्व ले बैठा। इस आज्ञप्ति को ट्रेड यूनियनों तथा फैक्ट्री कमीटियों ने बाध्य किया। एक नए समाज की नींव पड़ी। प्रथम आल रशा कांग्रेस आफ ट्रेड यूनियन (पेट्रोगाड, जनवरी 1918) ने सोवियत सरकार को बिना अनुबन्धों के अनुलम्ब देने का प्रण किया। फैक्ट्री कमीटियों को ट्रेडयूनियनों में मिला दिया गया जिससे श्रम जीवियों पर उन के अधिकार भी बढ़े तथा समानान्तरवाद भी न रहे। यद्यपि अराल तथा कुछ दूसरे मध्यस्थ प्रान्तों में विरोधी तत्व तथा विदेशी पूंजीवादी (जिनकी रूस से फैक्ट्रीया थी) जैसे अमरीकन तथा स्वीडिश कन्सल्ज ने मास्को कांतिकारी सैनिक संस्था से प्रतिरोध किया परन्तु 1918 तक वर्करों का कन्ट्रोल सम्पूर्ण रूस में हो गया। अक्टूबर 26, 1917 में लेनिन ने एक राज्य सभा की स्थापना का (जो अर्थव्यवस्था का संगठन कर सके) विचार दिया।

1918 में बेलोरूस, लैटविया, स्टोनिया की उद्यम संस्थानों का राष्ट्रीयकरण हो गया। मार्च 1918 में तुकिस्तान की काटन, खनन उद्योग तथा कोयले ईधन का राष्ट्रीयकरण हुआ। सभी कुछ नया था पर कुछ भी प्रारंभ में सुसंगठित न थां लेनिन ने कहा।

"यह बदलाव का समय (पुरानी पद्धति से नई की ओर) एक नवीन उपज थी तथा विकास के युग में राष्ट्रीयकरण के आवेग में बैंकिग को भी धक्का लगा जनवरी 1917 में विदेशी पूंजीवादी 47 प्रतिशत पूंजी (रूस के 8 बैंकों में) के मालिक थे। पार्टी की पैरिस कम्यून द्वारा की गई बूर्ज्वा हाथों में बैंक छोड देने की भूल याद

था। उन्होने शीघ्र ही बाल्शाविक पार्टी के मेम्बरों के बैंकों के विभिन्न विभागों की सत्ता सोंप दी। 14 दिसम्बर को रेडगार्डो का यूनिट पेट्रोग्राड तथा स्मोलनी से बैंक कन्ट्रोल करने चला। कुछ ही घण्टों में सभी चाबियां सोवियत कमीसार के हाथ में थीं। उसी शाम आल रशा सेन्ट्रल एक्जेकेटिव कमिटी ने बैंकिग को स्टेट मनोपोली करार दिया। इस बैंकिग के राष्ट्रीयकरण के रूस पर विदेशी आर्थिक सत्ता की समाप्ति होने लगी तथा इन्डस्ट्री के राष्ट्रीयकरण में भी इससे सहायता मिली। जितने पुराने ऋण थे। उनकी रद्द करने की आज्ञप्ति 21 जनवरी 1918 को पास हुई। अब रूस के श्रमजीवी पैरिस लन्दल बर्लिन न्यूयार्क तथा अन्य पूंजीवादी केंद्रों के बैंकरों को शुल्क देने पर विवश न थे। सभी शिकायत इस संदर्भ में रूस द्वारा रद्द कर दी गई। अप्रैल 22, 1918 को काउन्सिल आफ पीप्ल्जि कमीसार ने विदेशी व्यापार को स्टेट की मनोपोली करार दिया। तथा एक्तसपोर्ट, इम्पोर्ट केवल स्टेट द्वारा ही सम्भव हो गया। सितम्बर 1918 तथा समुद्री तथा अन्य सभी आवागमन के साधनों (रेलवे, जल द्वारा) पर स्टेट कन्ट्रोल हो गया। शीघ्र ही सोवियत गर्वनमेंट ने कपड़ा तथा खेती बाड़ी मशीनरी इत्यादि के उत्पादन पर अपना अधिकार जमा लिया। शहरी उपभोक्ता तक खाद्य सामग्री का वितरण भी अब स्टेट द्वारा होने लगा। लेनिन के अनुसार शताब्दियों के शोषण तथा दूसरों के लिए काम में जुटे रहने के पश्चात श्रमजीवी अब स्वयं अपने लिये काम करने का अवसर पा गए तथा आधुनिक टेकनालोजी सहित राष्ट्र निर्माण में लग गए। 29 अक्टूबर श्रमजीवियां के हित में 8 घण्टे प्रतिदिन तथा 48 घण्टे प्रत्येक सप्ताह कार्य के लिए निर्धारित किए गए। 11 दिसम्बर 1917 से अस्वस्थ के लिए लाभ की शुरूआत हुई जिससे दवा इलाज मुफ्त होने लगा। औरतों को मुफ्त इलाज के अतिरिक्त प्रसूति के लिए छुट्टी भी दी जाने लगी। समृद्ध लोगों के बडे बडे घरों को स्टेट ने विश्राम गृह, सैनिटोरियम, बाल जगत क्लब तथा पुस्तकालय इत्यादि के लिए जब्त कर लिया। जो लोग काम नहीं करते थे उनका राशन कार्ड भी नहीं बनता। अब तो सोवियत कानून था "जो काम नहीं करेगा वह रोटी भी नहीं खाएगा।"

ख. भूमि आज्ञप्तिः

नगरों से क्रान्ति गांव में फैली। कृषकों ने द्वितीय आल रशा कांग्रेस आफ सोवियत्स" के फैसलों को गृहण करने की उत्सुकता दिखाई जिसके द्वारा वे अपना शोषण तथा कृषिदासता समाप्त करना चाहते थे। यद्यपि यह कार्य अलग-अलग भूमि संस्था तथा कृषकों के उपपतियों को सोंपा गया पर बड़े-बड़े भूमिदार इस में रोड़े अटकाते रहे। लेनिन स्वय कृषकों के मध्य बैठ उन्हें उनकी निहितशक्ति से अवगत कराता। सभी निर्धन भूमिहीन तथा समृद्ध कृषक जमीनदारों के विरूद्ध एक हो गए क्योंकि दोनों ही इस में अपना लाभ देख रहे थे एक को जमीन दूसरे को श्रम शक्ति चाहिए थी। इस प्रकार 13 दिसम्बरा 1917 को एक नया अधिनियम बनाया गया भूमि संस्थाओं तथा भूमि कमीटियों व खेती सम्बन्धी कानूनों की नई सुबह उजागर हुई। धीर-धीरे बोलस्त ने सभी भूमि सम्पत्ति जब्त कर लीं फरवरी 1918 तक 75% प्रतिशत भूमि जब्त हो चुकी थी।

गावों में 3 ग्रुप (कुलक जमीनदार, मध्यवर्गीय कृषक वर्ग तथा निर्धन श्रमिक) वर्ग हुए अपने उद्देश्य (पूंजीवादी साम्राज्यवादी बूर्ज्वा तथा श्रमजीवी) सहित एक

असमजस में पड़ गए। सोवियत बाल्शाविक पाट्री ने देहाती निर्धन को ही सहारा दिया। लेनिन ने भाषण जनवरी 1918 में कहा "यह कोई पुस्तक द्वारा दी गई सहायता नही बल्कि तजरबों तथा क्रांति में भाग लेकर समझे बूझे ढंग से अपनाई पालिसी है। हमने जमीनदारों से भूमि हतियाई है तो कुलांक तथा समृंद्ध कृषकों के लिए नहीं।" इस प्रकार सोवियत कृषि सम्बन्धी सुधार स्वयं अपने में एक अनोखी नीवन प्रणाली पर आधारित थे। तुर्किस्तान में 152 मिलियन एकड़ भूमि जो जमीनदारों तथा शाही खानदानों के पास थी लेकर भूमिहीन कृषकों को दे दी गई। यूरोपी रूस में 100 मिलयन भूमि कृषकों को मिली।

18.8 वित्तीय पूंजीवारी तथा आन्तरकि व वाह्य व्यापार में वृद्धि

रूस में विदेशी पूंजी के आकर्षित होने के कई कारण थे जैसे ऋणों पर सूद तथा छूट की ऊंची दर, सस्ती भूमि (पश्चिमी देशों के मुकाबले); मजदूरी अन्य देशों से कहीं कम तथा विदेशियों द्वारा वस्तुओं के स्थान पर मुद्रा का निर्यात सारा वजट सेना, रेलवे, औद्योगिक प्रगति, ऋणों की अदायगी पर केन्द्रित था। शिक्षा पर केवल 6.6% प्रतिशत ही विनियोजित था। प्रालीतैरियत ने इस महाविपत्ति को समझ लिया था। लेनिन ने अपनी थेसिस, "सन्निकट महाविपत्ति "तथा" क्या उपय हो कैसे लड़ें मैं" इस पर टिप्पणी भी की। 26 जुलाई से 3 अगस्त 1917 में आयोजित पार्टी की छठी कांग्रेस ने मुख्य रूप से देश को एक आर्थिक रूप से आपत्तिजनक स्थिति में पाया।

इन्डस्ट्री का राष्ट्रीयकरण तथा प्रौलीतैरियत को कन्ट्रोलः देश की प्रमुख वित्तीय संस्थाओं, स्टेट तथा ज्वाइन्ट स्टाक कामर्शियल बैंकों ने नए ढंग से राष्ट्र के पुर्ननिर्माण तथा अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता का कार्य शुरू किया। 14 दिसम्बर 1917 को प्राइवेट ज्वाइन्ट स्टेट बैंको का राष्ट्रीयकरण हुआ। 29 जनवरी 1918 को सोवियत सरकार ने सभी रूसी सरकार के विदेशी ऋणों की समाप्ति की घोषणा कर दी। 28 जून 1918 को बड़ी-बड़ी इन्डस्ट्रीज का राष्ट्रीयकरण हुआ। अक्टूबर 1, 1919 तक समस्त इन्डस्टईीज का राष्ट्रीयकरण पूर्ण हो गया।

ख- बीसबी शताब्दी के प्रारंभ से रूसी सरकार की विदेशी व्यापार की नीति वित्त मंत्री विशनेगरो रस्की द्वारा प्रचारित "कम खाओ अधिक निर्यात करो" के अनुसार 19 वी शताब्दी के अन्त से प्रथम विश्व युद्ध तक चलती रही थी युद्ध ने रूसी व्यापार को आघात पहुंचाया व खाद्य पदार्थो तथा औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन में कमी तथा मूल्यों में वृद्धि हुई

1919 के प्रारम्भ में सरकार द्वारा मूल्यों का निर्धारण मजदूरों को संगठित करना तथा उत्पादन बढ़ाने का प्रयास शुरू हुआ। नई सोशिलिस्ट अभिवृत्ति के अनुसार 12 अप्रैल 1919 की रात्रि से मुब्बोतनीक (शनिवार के) नामक श्रमदान की प्रथा आरम्भ की गई। गोएलरों (Goelro) स्कीम सरकार द्वारा नियुक्त एक स्पेशल कमीशन के प्रस्ताव पर आठवी प्लान में (दिसम्बर 1920 में) पास हुई जिसके अंतर्गत रूस को पूर्ण रूप से विद्युतिकरण हुआ 30 पावर स्टेशन 10-15 वर्ष के बीच बने। केन्द्र का कन्ट्रोल उत्पादन, वितरण तथा बेचने पर बढ़ता गया। लेनिन की चेयरमैनशिप में 1918 के अन्त में एक "अंतर्राष्ट्रीय रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति ने एक सुरक्षा

परिषद (मजदूरी कृषकों के हितों की रक्षा के लिए बनाई जो सबसे शक्तिशाली कमेटी थी। सभी भूमि जब्त कर ली गई तथा कृषकों में वितरति की गई। बरोनेज कुर्स्क, कलूगा चर्योनगिव इत्यादि स्थानों पर कृषकों ने अपनी सशस्त्र टुकड़ियां जमीदारों से लड़ने के लिए कटिबद्ध कर लीं। दिसम्बर 1917 जनवरी 1918 में एक कृषि सहकारी संघ नवगोरद में स्थापित हुआ इस में अधिकतर भूमिहीन मजदूर तथा निर्धन कृषक वर्ग था। दिसम्बर 1918 तक 975 कृषि समुदायों तथा 604 सहकारी समितियों ने 98916 लोगों को सुसंगठित कर दिया। नगरों गांवों के मध्य आर्थिक बन्धन बढ़े। 19वें अधिनियमानुसार खाद्य पदार्थों का व्यापार सरकार की मनोपोली थी चाहें अन्न आयात का क्यों न हो। 1918-21 तक अस्सी हजार मजदूरों को 2700 खाद्य पदार्थों के वितरण की टुकड़ियों गांवों में गई सुरक्षा नीति की आवश्यकता से सेना को स्पेशल राशन मिलता था। मजदूरों को कभी-कभी केवल 50 ग्राम पर ही सन्तुष्ट होना पड़ता।

18.9 सोशलिस्ट सरकार की आर्थिक नीतिः

इस संदर्भ में अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त लेनिन द्वारा मार्च अप्रैल 1918 में तैयार की गई पुस्तक "सोवियत सरकार के तत्कालीन कार्य" में इस समाजी ढांचे का अच्छा ब्यौरा मिलता है।" बाल्शविक पार्टी ने रूस को अमीरों तथा शोषणाकारियों से निर्धनों तथा शोषित वर्ग के लिए जीत लिया है और अब उसका प्रबन्धन पहले राष्ट्रीयकरण तथा लेखा व कन्ट्रोल द्वारा और अब राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन में वृद्धि द्वारा होगा। सर्वप्रथम या जनतावादी केन्द्रीयता तथा एकत्व व सहेयोगिता, यद्यपि केन्द्रीय समाजवाद के शत्रु उस क्रांति की विफलता के प्रबन्ध कर रहे थे पर उनकी चेष्टा असफल रही। सोवियत वित्त व्यवस्था ने बार कम्यूनिज्म" (युद्ध कम्यूनिज्म) नामक योजना के अंतर्गत कुछ आर्थिक उपाय किये। 1- नवम्बर 20, 1920 को 10 मजदूरों से उपर नियुक्त करने वाले कारखाने तथा सभी ऐसी दुकानें जिसमें एक मेकेनिकल इंजन तथा 5 या अधिक कार्यकर्ता हो उनका राष्ट्रीयकरण किया गया।

2- खाद्य योजना जिसके अंतर्गत खाद्य पदार्थों अन्य इत्यादि की मांग वर्गाधार पर अर्थात समृद्ध कृषकों से सब से अधिक, मंझोले कृषकों से केवल नाम मात्र तथा निर्धन कृषकों से कुछ न लेने का प्रबन्ध हुआ। यद्यपि इसमें कोई आर्थिक प्रेरक उत्पादन की वृद्धि के लिए नहीं था फिर भी यही एक मार्ग शत्रुओं को असफल बनाने का था जिससे जमींनदारी बढ़ी।

3- वित्तीय व्यवस्था के पूर्ण निर्यात की स्थिति में बाजार के सम्बन्ध समाप्त करके काम करने वाले लोगों को मुफ्त सभी सुविधायें राशन ट्रांसपोर्ट अस्पताल शिक्षा इत्यादि उपलब्ध कराई जाने लगीं।

4- सब काम करेंगे जो नहीं काम करेगा वह नहीं खायेगा।

इस प्रकार के सुधार जो बार कम्युनिज्म के अंतर्गत हुये वे युद्ध तथा बरबादी के परिणाम स्वरूप हुये जो प्रौलीतेरियत की वित्तीय योजना नहीं बल्कि आवश्यकतानुसार काम चलाऊ योजना मात्र थी।

1921 से 1925 का समय आर्थिक बहालों का था जिसमें शान्तिपूर्ण ढग से पुर्ननिर्माण तथा "नवीन वित्तीय योजना" जो नये कहलाई शुरू हुई। अभी तक पांच प्रकार की अर्थ व्यवस्था थी। (पेतृीय, छोटे समग्री ,वाले, प्राइवेट पूंजीवादी सरकारी पूंजीवादी, सोशलिस्ट जिसमें आखरी सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली था। मार्च 1921 में दसबी पार्टी कांग्रेस ने नेप ग्रहण करने का एलान कर दिया। असफल बनाने का था इससे अन्न तथा खाद्य पदार्थों के स्टाक जमा होने लगे।

18.1 नेप अथवा नवीन वित्तीय योजनाः

नेप के संदर्भ में लेनिन ने अपने 1917-21 के मध्य लिखें निबन्धों मुख्यतः टैक्स इन काईन्ड" में विस्तृत जानकारी दी है। जिसमें मुख्य भूमिका छोटे उत्पादकों तथा सहकारी समितियों ने निभाई है। नेप का मुख्य उद्देश्य कृषकों तथा मजदूरों के मध्य आर्थिक तथा राजनैतिक सन्धि थीं खेती में बढ़ोत्री हुई एवं कलेक्टिव फार्म तथा कृषण क्षेत्र बढ़ा। 1925 में सभी प्रकार की कृषि सहकारी समितियां एकत्रित हो गई तथा उत्पादकों की सहकारी समितियां तथा समूह व संस्थायें बनीं।

इन्डस्ट्री समाजवाद का आर्थिक आधार थी अतएवं सरकार तथा जनता दोनों ही का ध्यान इस पर केन्द्रित था। 1920-25 के मध्य 41 प्रतिशत वृद्धि हुई। श्रमदान (शनिवार, इतवार को) सहायक सिद्ध हुआ। हेवी इन्डस्ट्री की प्रगति तथा उत्पादन व श्रमजीवियों की संख्या में वृद्धि हुई। कारखाने को प्राइवेट लोगों को पटटे पर देने से नगरों में निर्मित वस्तुओं के ढेर लग गए। लेनिन के विचार में व्यापार ही वह कड़ी था जिससे ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमचक्र में तालमेल हो सकता था। आन्तरिक तथा वाहय दोनों संस्थाओं का पुर्नसंगठन हुआ। समस्त व्यापार को देश में सुप्रीम एकोनिमिक काउन्सिल तथा पीप्लज कमीसारियत फार फूडकन्ट्रोल कर रही थी। 1921 में ट्रेड बोर्डो का पुर्नसंगठन हुआ। 1922 तत्पश्चात 1924 में एक स्पेशल कमीशन अर्न्तरदेशीय व्यापार के सुसंगठन के लिए बना। 1925 में कमीसारियत फ़ार फॉरन ट्रेड ने लगभग सभी यूरोपीय देशों से ट्रेड एग्रीमेंट कर लिए। 1930 से प्राईवेट पूंजी ट्रेड से पूर्ण रूप से वहिष्कृत हो गई। सिक्कों में सुधार हुआ। अक्टूबर 1922 से चेरवोन्तसी (10 रूबल के नोट) निकाले गये जिनसे बजट की क्षतिपूर्ति का उद्देश्य नहीं था बल्कि साधारण रूप से उपयोगी वस्तुओं का प्रचार था। 1926-32 के बीच समाजवादी वित्तीय व्यवस्था की नींव पड़ी जिन्हें प्रथम पंचवर्षीय योजना (1928-30) में एक नया रूप मिला और सोवियत यूनियन एक कृषि प्रधान देश से औद्योगिक शक्ति में ढल गया। 1933 से 1937 तक समाज वादी रंग पर वित्तीय व्यवस्था का निर्माण सम्पन्न हो गया।

18.11 अभ्यासार्थ प्रश्नः

(i) सामन्वादी रूस की अर्थ-व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।

(ii) रूस में पूंजीवाद का उदय किस प्रकार हुआ।

(iii) रूस में साम्राज्यवाद के बारे में आप क्या जानते हैं।

(iv) रूस में वित्तीय पूंजीवाद पर प्रकाश डालिये।

(v) **समाजवादी सरकार की आर्थिक नीति क्या थी।**

(vi) नये आर्थिक नीति क्या थी।

इकाई-19
अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 अमेरिकाः खोज व उपनिवेशन

19.3 उपनिवेशन के कारण

19.4 उपनिवेशों की प्रकृति

19.5 वाणिज्यवाद

19.6 अमेरिका में वाणिज्यवाद

19.7 ब्रिटिश नीति में परिवर्तन

19.8 अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम

19.9 स्वतन्त्रता संग्राम का परिणाम

19.10 सारांश

10.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.12 संदर्भ ग्रन्थ

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेगें

किस प्रकार से अमेरिका की खोज हुई।

अमेरीका में उपनिवेशन के क्या कारण थे और अमेरिका में बसने वालों की प्रकृति क्या थी।

योरोप में प्रचलित आर्थिक सिद्धांत वाणिज्यवाद क्या था और उसकी नीतियों क अनुपालन अमेरीका में किस प्रकार से किया गया।

इग्लैण्ड की नीतियों में परिवर्तन ने किस प्रकार अमेरिका को उत्तेजित किय जिसके फलस्वरूप अमेरिका उपनिवेश ब्रिटेन के विरूद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई आरम्भ करने लगें।

अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के स्वरूप व उसके परिणाम की चर्चा करेगें।

19.1 प्रस्तावना

अमेरिकी स्तन्त्रता संग्राम 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में घटित एक महत्वपूर्ण घटना थी यह कालान्तर में होने 'वाली' क्रांतियों की प्रेरणा स्रोत के रूप में रहा वहीं अपनी प्रवृत्ति में संग्राम, जिसे अमेरिकी क्रांति के रूप में भी सम्बोधित किया जाता है, एक विशिष्ट घटना थी। क्योंकि यह क्रांति या संग्राम न गरीबी के कारण उत्पन्न असंतोष का परिणाम था और न ही यहां के लोग सामन्ती व्यवस्था से पीड़ित थे। इग्लैण्ड की आर्थिक नीति के विरूद्ध संघर्ष कर अमेरिकी उपनिवेशों का जन्म एक ऐसे राष्ट्र के रूप में हुआ जो आज विश्व की सबसे बड़ी शक्ति बना है।

19.2 अमेरीकाः खोज व उपनिवेशनः

भारत समझते हुए क्रिस्टोफर कोलम्बस ने 1492 में अमेरिका की खोज की, लेकिन इस महाद्वीप का नामकरण इतावली नाविक एमेरिगो वेसपूची पर हुआ, जिसने 1501 में एक नए महाद्वीप खोजने का दावा किया था।

वस्तुतः अमेरिका की खोज व उपनिवेशन योरोपीय इतिहास की घटनाओं का एक परिणाम था। 15 वीं शताब्दी और 16 वीं शताब्दी का आरम्भ योरोप में जिज्ञासा व प्राचीन व्यवस्था के प्रति असंतुष्टि के युग-पुनः जागरण- का चरम बिन्दु था। सामन्तवाद के मग्नावशेष पर आधुनिक राज्य की नींव रखी जा रही थी, राष्ट्र-राज्य की स्थापना के साथ-साथ व्यक्तिगत युद्ध समाप्त हो रहे थे, व्यापारियों व सार्थवाहों को न्यूनतम चुंगी और अधिक सुरक्षा मिलने लगी थी। अपेक्षाकृत सुधरा आर्थिक जीवन नई खोजों व अनुसंधन को प्रेरित कर रहा था, जिसे छापेखानों के प्रयोग से सुलभ हुए परिष्कृत चार्टों, नक्शों व पञ्चागों तथा कम्पास के प्रयोग ने सम्भव बना दिया था। ये परिस्थितियाँ व्यापारिक पूंजीवाद के विकास का मार्ग तैयार कर रहीं थीं। पूरब के साथ हो रहे लाभकारी व्यापार में हिस्सा लेने हेतु नए व्यापारिक मार्ग को खोजने का प्रयास अनेक देश कर रहे थे। स्पेन के राजा ने इतावली नाविक कोलम्बस को मौका दिया, जो 'पृथ्वी गोल है'- इस वैज्ञानिक तथ्य को स्वीकार करते हुए पश्चिम की ओर चला। उसका विचार गलत नहीं था, गलत तो था उसका पृथ्वी को इतनी छोटी मानने का अनुमान।

भारत के स्थान पर अमेरिकी महाद्वीप की खोज का योरोप ने स्वागत ही किया। राजनीतिज्ञों ने इसमें नए साम्राज्य बनाने का स्वप्न देखा, अपनी सम्पत्ति बढ़ाने वाले एक स्रोत के रूप में कुलीनों व व्यापारियों ने इसकी लालसा की, तो जनसाधारण को यह एक नया घर लगा जहाँ वे पुरानी दुनिया के धार्मिक, राजनीतिक व आर्थिक अत्याचारों से मुक्ति पाने की आशा कर सकते थे। फलतः अमेरिका में बस्तियां बसने लगीं। सर्वप्रथम स्पेन, फिर फ्रांस व हालैण्ड यहां उपनिवेशन करने लगे। इग्लैण्ड इसमें देरी से शामिल हुआ। स्टुअर्ट राजा जेम्स प्रथम ने 1606 में लन्दन और प्लीमथ कम्पनियों को अमेरिका में व्यापार करने के लिए बस्ती बनाने की अनुमति दी। 1607 में कप्तान क्रिस्टोफर न्यूपोर्ट के नेतृत्व में 120 अंग्रेजों ने वर्जिनिया क्षेत्र की जेम्स नदी के तट पर 'जेम्स टाउन' की बस्ती बसाई। आरम्भिक कठिनाईयों के बाद तम्बाकू और कपास की खेती से प्राप्त सम्पन्नता ने अन्य बस्तियाँ बसाने का रास्ता सुझाया और इंग्लैण्ड के कुल 13 उपनिवेश उत्तरी अमेरिका में बन गए। ये उपनिवेश

थ- (1) जम्स टाउन (2) मैरीलैण्ड (3) न्यूयार्क (4) हैम्पशायर (5) मैसाचूसेट्स (6 रोडस् आइलैण्ड (7) उत्तरी कैरोलीना (8) दक्षिण कैरोलीना (9) कनेक्टिकट (10, पेन्सिलवोनिया (11) न्यूजर्सी (12) देलावियर और (13) जार्जिया।

19.3: उपनिवेशन के कारण

अमेरिका जाना और जाकर बसना कोई आसान काम न था। अपर्याप्त भोजन के साथ बिमारी व तूफानों से भरी 2-3 माह की समुद्री यात्रा के बाद अमेरिकी मूल निवासियों, घने जंगलों व लम्बी घास के मैदानों के साथ संघर्ष कर अपना अस्तित्व कायम रखना बड़े जीवट का काम था। स्पष्टतः यहां आने वाले किसी न किसी विवशतावश यहां आए थे। आइए उन कारणों को जाने जो अमेरिका में लोगों को लाए थे, ताकि हम अमेरिका बसने वालों की मानसिकता को समझ सकें।

अमेरिका में बसाने के लिए व्यावसायिक कम्पनीयों नें अपने प्रचार पत्रों में उपनिवेशों का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया था ताकि समाज का सभी तब का इस ओर आकर्षित हो सके। प्रचार-पत्रों का एक ही सार था- आर्थिक उन्नति। समृद्धशाली और लाभ पाएगें तो गरीबों को मिलेगा नया जीवन आरम्भ करने का अवसर। कारीगर सरकारी श्रेणी के नियमों के आर्थिक बन्धन से बचने की इच्छा से अमेरिका जाना चाहते थे तो मेहनत की कमाई को सामन्ती चुगंल से बचाने के लिए किसान तैयार था। सामन्तों के युवा बेटे, दरिद्र हो रहे मध्यमवर्ग की अभिलाषा अमेरिका में नया जीवन शुरू करने की थी। व्यापारिक कम्पनियों के लिए अमेरिका सोना, फर, चीनी, तम्बाकू, कोका व अन्य उत्पाद का स्रोत ही नहीं कालांतर में उनके तैयार माल के खपत हेतु बाजार भी था।

फिर 16 वीं व 17 वीं सदी में यह विश्वास, कि इग्लैण्ड की जनसंख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है, नतीजन बेरोजगारी भी बढ़ रही है, घर कर रहा था। इग्लैण्ड ही नहीं योरोप में काम करने वाले तो काफी थे, पर उन्हें खपाने के स्रोत कम थे, जबकि अमेरिका में इसके विपरीत था। नर्तजन बेरोजगारी की समाप्ति व बढ़ती जनसंख्या की खपत अमेरिका द्वारा ही सम्भव थी।

उपनिवेशन के राजनीतिक कारण भी थे। हर देश अमेरिका में अधिक से अधिक क्षेत्र हड़पना चाहता था। दूसरी ओर राजनीतिक अस्थिरता व दण्ड का भय भी लोगों को अमेरिका में बसने के लिए उकसा रहा था। इग्लैण्ड के चार्ल्स प्रथम के स्वेच्छाकारी शासन से तंग आकर लोग उपनिवेशों में बसे, तो क्रामवेल के शासन में राजा के सहायक सरदार व अनुयायी भाग्य आजमाने अमेरिका बसे।

धार्मिक उथल-पुथल ने भी बहुत से लोगों को अपना देश छोड़ने को विवश किया। धार्मिक स्वतन्त्रता पाने हेतु अलगावादी व प्यूरिटनों ने न्यू-इग्लैण्ड की स्थापना की। विलियम पेन और उसके साथी क्वेकरों ने धार्मिक दृष्टि से ही पेन्सिलवेनिया बसाया और केथोलिकों ने मेरीलैण्ड को आबाद किया।

बसने वालों में अपराधी भी थे, जिन्हें न्यायालय ने अमेरिका बसने का मौका दिया। ये "सात वर्ष के सरकार यात्री" कहलाते थे। सात वर्ष पश्चात् वे स्वतन्त्र थे- पर यह स्वतन्त्रता दासों को न थी, जो एक धब्बे के रूप में अमेरीकी समाज

में थे। 1619 में डच द्वारा जेम्स टाउन में पहला निग्रो दास बेचा गया उसके बाद दासों की संख्या में वृद्धि ही हुई। बेनक्रोफ्ट के अनुसार 1714 में 59,000 और 1754 में 263,000 दास थे। 1790 की पहली जनगणना में इनकी संख्या 6907,000 से अधिक ही थी।

19.4: उपनिवेशों की प्रकृतिः

इस प्रकार अमेरिका आकर बसने वालों की मानसिकता अतीत से बेहतर जीवन जीने की ललक से प्रेरित थी, वे साहसी व पराक्रमी थे, क्योंकि तभी वे जी सकते थे। फिर, अमेरिका में उपनिवेशों का विकास किसी निश्चित परम्परा या निर्देश के अन्तर्गत नहीं हुआ। उपनिवेशन करने वाली कम्पनियों या व्यक्तियों के समक्ष प्रशासन की कोई निश्चित रूपरेखा न थी और न ही अंग्रेज सरकार ने इनके संगठन हेतु कोई व्यापक निर्देश दिए थे। कम्पनिया अपनी इच्छानुसार प्रशासन चलाती थीं। पर प्रशासन में स्वतन्त्र नागरिकों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का सहयोग व सहमति परम्परा बन चली थी, हालांकि सम्राट गर्वनर व उसकी कार्यकारिणी समिति नियुक्त करता था। स्वशासन की भावना ही नहीं, अपने चरित्र में भी अमेरिका बसने वाले अंग्रेज इग्लैण्ड के अग्रेंजों से भिन्न थे, जैसा इतिहासकार ट्रेवेलियन बताता है कि यहां आकर उन्होंने अपनी सारी पूर्व धारणाओं और रीति-रिवाजों को त्याग कर नया जीवन अपनाया था और अब वे 'अमेरिकी' बन गए थे। अमेरिका में सामंती अभिजात्य व्यवस्था नहीं थी, वे उपाधियों व पारिवारिक विशेषाधिकारों का मखोल उड़ाते थे। पश्चिमी योरोप की तुलना में अमेरिका धार्मिक स्वतन्त्रता और सहिष्णुता का कल्पना लोक था। हांलाकि, यहां भी 'डायनों' पर मुकदमें चलाए जाते थे। फिर भी विभिन्न धर्मों के अनुयायी अपनी अलग-अलग जिन्दगी बिताते थे और प्राय ही धर्माध्यक्षों तथा धार्मिक कर्मकाण्डों की क्रूर निरकुंशता से त्रस्त रहते थे। उन्होंने स्वंय ही शिक्षा पर जोर दिया। 1683 में पेन्सिलवेनिया में बच्चों के लिए शिक्षण संस्थाएं स्थापित कीं। 1686 में हारवर्ड कॉलेज बना। स्त्रियों के लिए ललित कलाओं की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गई। फ्रेकलिन द्वारा स्थापित विचार केन्द्र कालान्तर में अमेरिकन फिलोसोफिकल सोसायटी के नाम से विख्यात हुआ। कैम्ब्रिज शहर में पहला छापा खाना स्थापित हुआ और 1704 से बोस्टन से पहला समाचार-पत्र प्रकाशित होना आरम्भ हुआ।

इस प्रकार आरम्भ से ही परिस्थितियों के अनुरूप अपना विकास करने में स्वतन्त्र उपनिवेशों में इग्लैण्ड का प्रभाव व नियंत्रण का अभाव था। पहले अंग्रेज के बसने के 150 वर्ष बाद तो इग्लैण्ड के प्रति प्रेम कम होना ही था। जैसे न्यू इंग्लैण्ड, जहां बहुसंख्यक अंग्रेज ही थे, के निवासी, समकालीन इतिहासकार डेविड रैमसे के शब्दों में "मातृ-देश (इग्लैण्ड) के बारे में कम ही जानते थे, जो जानते थे वह यह था कि यह एक सुदूर देश है जहां के राजा ने उनके पूर्वजों को प्रताड़ित किया और अमेरिका के जंगलों में मरने-खपने को भेज दिया"। बिना बाहरी सहायता या हस्तक्षेप के अपना भाग्य स्वयं बनाने वाले अमेरिकी ने 1776 में इग्लैण्ड के विरूद्ध स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। ऐसा क्यों किया यह जानने के लिए हमें उस आर्थिक

नीति को समझना होगा जिसकी वजह से उपनिवेशन हुआ था। यह आर्थिक नीति थी वाणिज्यवाद।

19.5: वाणिज्यवाद

वाणिज्यवाद सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक प्रचलित एक सामान्य आर्थिक सिद्धांत था। इसका लक्ष्य शक्तिशाली, सम्पन्न व स्वतन्त्र राज्य-राष्ट्र का निर्माण करना था, जो अनुकूल व्यापार संतुलन व आर्थिक स्वतन्त्रता को प्रोन्नत कर पाया जा सकता है। इसके लिए स्वयं की जहाजरानी हो, ताकि उत्पादों को ले जाने हेतु विदेशी जहाजों पर निर्भरता न हो। अपनी जहाजरानी जहां व्यापार के सचांलन में होने वाले लाभ को संचित करेगा वहीं युद्ध काल में योग्य नौ सेना व प्रशिक्षित नौ सैनिकों का योगदान भी देगी। दूसरा, वाणिज्यवादी चाहते थे गृह उद्योगों का सरंक्षण व संवर्धन ताकि औद्योगिक रूप में आत्म निर्भरता रहे साथ ही नागरिकों को रोजगार मिल सके। तीसरा, उत्पादकों को पर्याप्त कच्चामाल व खाद्य सामग्री की आपूर्ति ताकि घरेलू कृषि को सहायता व सुरक्षा मिल सके। और अन्त में, वाणिज्यवादी आशा करते थे कि वे लाभदायक व्यापारिक संतुलन बना सकेंगें ताकि राष्ट्र में अधिक से अधिक मुद्रा रह सके। उनका विश्वास था वही राष्ट्र सबसे योग्य व सुदृढ़ स्थिति पर रहता है जिसके पास अधिक से अधिक सोना व चांदी हो।

19.6 अमेरीका में वाणिज्यवाद

स्पष्ट है वाणिज्यवाद की नीति का मुख्य लक्ष्य मातृ देश की भलाई है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उपनिवेशन हुआ था। इसी को ध्यान रखकर 1651 में इग्लैण्ड ने अपना प्रसिद्ध जहाजरानी अधिनियम पारित किया था, जिसके अनुसार (1) उपनिवेशवासी केवल इग्लैण्ड के जहाज से ही माल मंगा व भेज सकते हैं, (2) वे अन्य देशों से अत्वल तो माल आयात नहीं कर सकते हैं, लेकिन यदि वे ऐसा करते हैं तो केवल इग्लैण्ड के जहाजों से ही करें, इन जहाजों के नाविक भी अंग्रेज हों। इस अधिनियम को 1660 और 1663 में और मजबूती प्रदान की गई ताकि आयात पर नियंत्रण रखा जाए। योरोपीय माल पर भारी चुगियां लगाई गई। इसी प्रकार निर्यात पर नियंत्रण हेतु 1651 में ही व्यापारिक नियम पारित किए गए जिसके तहत अमेरिका, एशिया व अफ्रीका में अंग्रेज बागानों में उत्पन्न या निर्मित होने वाली चीनी, तम्बाकू, कपास, नील, अदरक, पाण्डुद् (पीला रंग देने वाली लकड़ी) और रंग देने वाली अन्य बनस्पति इग्लैण्ड के अलावा और कहीं नहीं भेजे जा सकते हैं। 1706 में इस सूची में राल, अलकतरा, तारपीन, सन, शहतीर और सूत; 1721 में ताम्र अयस्क, ऊद-बिलाव व अन्य जानवरों के फर; 1733 में शीरा, 1764 में व्हेल के पंख, लोहा, इमारती लकड़ी व कच्चा रेशम जोड़ दिया गया।

न सिर्फ आयात व निर्यात बल्कि इग्लैण्ड की रूचि उत्पादक संस्थानों पर नियंत्रण रखने की थी ताकि उपनिवेशों के उद्योग इग्लैण्ड से स्पर्द्धा योग्य न बन सके। गर्वनरों को निर्देश था कि वे "सभी औद्योगिक निर्माण को हतोत्साहित करें और इस तरह के कोई भी लक्षण दिखने पर सूचित करें।" हांलाकि ऐसा करना नितांत असम्भव था, फलतः लघु उद्योग पनपते रहे साथ ही इग्लैण्ड द्वारा नियंत्रण रखने

की एक याचिका के आधार पर ब्रिटिश संसद ने जांच में पाया कि न्यू इंग्लैण्ड व न्यूयार्क में प्रतिवर्ष 10,000 हैट निर्मित हो रहे हैं, तो तुरंत भी कानून पारित किया गयाः (1) 1732 से कोई भी हैट इंग्लैण्ड या एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश को नहीं भेजा जाएगा। (2) सात वर्ष की प्रशिक्षुता के बिना कोई व्यक्ति हैट नहीं बनाएगा। किसी भी उस्ताद के पास दो से ज्यादा प्रशिक्षु नहीं हो सकते हैं, जो सात वर्ष से कम समय तक सेवा नहीं कर सकते हैं। निग्रो प्रशिक्षु नहीं हो सकता है। जो भी इस कानून को तोड़ेगा उसे 500 पौण्ड का जुर्माना देना होगा।

इस प्रकार के नियंत्रण से अमेरिकी आर्थिक जीवन कितना प्रभावित हुआ यह तो हम आगे देखेगें ही पर इस तथ्य से अमेरिकी अनजान न रहे कि इंग्लैण्ड उनकी बानिस्पत अपनी प्रजा के हितों की रक्षा हेतु अधिक तत्पर रहता है। उन्होंने इस बात पर अपना रोष जाहिर किया। 29 अप्रैल 1765 का 'बोस्टेन गज़ट' अखबार शिकायत करता है "उपनिवेश का निवासी बटन, घोड़े की नाल या पेंच तक नहीं बना सकता है, लेकिन ब्रिटेन का कोई भी कालीख लगा लोहार या सम्मानित बटन बनाने वाला इस बात पर झल्लाएगा व चीखेगा कि धूर्त अमेरिकी रिपब्लिकन द्वारा उसके महान काम को अत्यन्त भयानक तरीके से क्षतिग्रस्त व लूटा गया है।" अमेरिकी इस बात पर क्षुब्ध थे कि ब्रिटिश सरकार इस झल्लाहट व चीत्कम को गम्भीरता से लेती है।

असामान्य व्यापार सतुंलन के कारण अमेरिका में जो कुछ भी धातु मुद्रा चलती थी- अंग्रेजी, पुर्तगाली था स्पेनी- वह इंग्लैण्ड चली जाती थी। व्यापार की मांग देखते हुए मैसाचूसेट्स ने कागजी मुद्रा का चलन 1690 में आरम्भ किया, 1711 में कनेक्टिकट, हैम्पशायर, रोड्स आइलैण्ड, न्यूयार्क, न्यूजर्सी और बाद में अन्य उपनिवेशों में कागजी मुद्रा का चलन आरम्भ हुआ। सोने के आधार से अधिक मुद्रा की छपाई से अवमूल्यन होना ही था, नतीजन 1751 में ब्रिटिश संसद ने न्यू इंग्लैण्ड, बाद में 1764 में बचे हुए उपनिवेशों को मुद्रा छापने के अधिकार से वंचित कर दिया। इंग्लैण्ड का यह कदम अंग्रेज ऋणदाताओं की सुरक्षा के लिए उठा था, लेकिन यह मुद्रा स्फीति अमेरिका के छोटे-छोटे कर्जदार किसानों व दक्षिण के बागान मालिकों को उनके संकट से उबारने में मदद देती। स्पष्ट है, इंग्लैण्ड की कार्यवाही ने छोटे किसानों व बागान मालिकों को रूष्ट किया।

यह ध्यान में रखने वाली बात है कि इंग्लैण्ड की स्वार्थी आर्थिक नीति अमेरिका के लिए घातक सिद्ध न हुई बल्कि 18 वीं शताब्दी में अमेरिकी असामान्य आर्थिक समृद्धि व राजनीतिक स्वतन्त्रता भोग रहे थे। एडम स्मिथ के शब्दों में "अन्य योरोपीय देशों की तुलना में ब्रिटिश शासन कम कठोर व आक्रमक था।" यह समृद्धि मुख्यतः तीन कारणों से थीः (1) उपनिवेशों के हित मातृदेश के समानान्तर थे, (2) कुछ उत्पादों पर इंग्लैण्ड द्वारा पेश की गई आर्थिक सहायता उनके तार्किक विरास तथा उपनिवेश-वासियों के लिए सम्पति का स्रोत थे, और (3) सबसे महत्वपूर्ण कारण था अधिक हानिकारक नियम या तो टाल दिए गए या फिर लागू ही नहीं किए गए। 18 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैण्ड रॉबर्ट वेलपोल की नीति, "क्वाइटा नॉन मोवेरे" (Let sleeping dogs lie, सोने वालों को सोने दो) का अनुसरण कर रहा

था। "हितकारी उपेक्षा" के इस काल में अमेरिका का वेस्टइण्डीज़ से व्यापार बढ़ रहा था। एक अनुमान है कि 1700 में बोस्टेन का आधा व्यापार गैर कानूनी था।

19.7 ब्रिटिश नीति में परिवर्तन

ब्रिटेन की नीति में 1763 से परिवर्तन आना आरम्भ हुआ, जब वह फ्रांस के विरूद्ध सप्तवर्षीय युद्ध (1756-63) में विजयी हुआ। इस युद्ध की शुरूआत योरोप में हुई थी पर अमेरिका में भी यह उतनी ही भंयकरता से लड़ा गया। इग्लैण्ड को जीत के बाद उत्तरी अमेरिका का विस्तृत फ्रांसिसी साम्राज्य अधिकार में मिला। नवविजित क्षेत्र पर इग्लैण्ड की नीति पूर्ववर्ती नीति से अलग थी। पहले बस्तियां बसाने में प्रोत्साहन हेतु बसने वालों को छोटे-छोटे प्लाट तथा सट्टेबाज व्यापारियों को विशाल भूमि इसी शर्त पर दी जाती थी कि वे अधिक से अधिक संख्या में परिवार बसाएगें। फ्रांसीसी व स्पेनी खतरे से सुरक्षा करने व फर के व्यापार की तरक्की के लिए सीमा पर बसावट को प्रोत्साहन दिया जाता था। 1763 में फ्रांस की हार के बाद उपनिवेशी विशाल विजित क्षेत्र पर अपना अधिकार करना चाहते थे जबकि अंग्रेज अपना फायदा ध्यान में रख रहे थे। यहां रहने वाले फ्रांसीसी नागरिकों व रेड इण्डियनों को अपने आधीन रखना व उनकी सुरक्षा करना एक मुख्य समस्या थी। इसलिए 1763 में शाही घोषणा द्वारा ऐलेगनीज, फ्लेरिडा, मिसिसिपी और क्यूबेक के बीच का समूचा क्षेत्र रेड इण्डियनों के लिए सुरक्षित कर दिया गया। इससे उपनिवेशयों का पश्चिम की ओर प्रसार रूक गया, पर वे अंग्रेज सरकार के प्रति रूष्ट भी हो गए।

सप्तवर्षीय युद्ध के बाद नए प्रधानमंत्री ग्रेनाविल तथा बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष टॉन्ड्रशेण्ड ने, जार्ज तृतीय के समर्थन पर "हितकारी उपेक्षा" की नीति को त्यागने का निश्चय किया, ताकि युद्ध से हुए भारी कर्जे की उदायगी हो सके साथ ही उपनिवेशों की सुरक्षा की जा सके। जार्ज तृतीय टोरी विचारधारा का था और उसके विचार से व्हिग दल ने उपनिवेशों को पर्याप्त ढील दे रखी है। इग्लैण्ड की नीति अब नियमों को कठोरता से लागू करने की थी।

इस सम्बन्ध में **चीनी अधिनियम** (1764) पहला कदम था, इसने 1733 के **शीरा अधिनियम** द्वारा लगी चुंगी को आधा कर दिया, याने प्रति गैलन 6 पेन्स के स्थान पर 3 पेन्स। यह उम्मीद की गई कि इससे व्यापारी अधिक ईमानदार बनेगा और यह कदम राजस्व बढ़ाने में सहायक होगा। यहां यह याद रखने की बात है कि औपनिवेशिक व्यापार में चीनी प्रमुख स्थान रखती थी। 1760 तक अंग्रेज व्यापारियों ने करीबन 6 करोड़ पौण्ड की पूंजी चीनी पर लगा रखी थी, यह अन्य व्यय का 6 गुणा थी। ब्रिटिश संसद में 70 चीनी लार्डस् बैठा करते थे जो अपने हितों की रक्षा करते थे। लेकिन उपनिवेश फ्रांस की तुलना में उनकी चीनी व शीरा 25 से 40 प्रतिशत कम खरीद रहे थे। यह बात ब्रिटिश सरकार को पंसद न थी। चीनी अधिनियम द्वारा इंग्लैण्ड ने उपनिवेशों पर आने वाली चीनी पर चुंगी लगा दी। चुंगी लेने का कार्य अंग्रेज नौसेना अधिकारी करेगें तथा तस्करी के मामलों की सुनवाई नौ सैनिक कोर्ट में होगी। **खोज-वारण्ट अधिनियम** के द्वारा राजस्व अधिकारियों को किसी भी मकान की तलाशी लेने का अधिकार मिल गया ताकि तस्करी को रोका

जा सके। चीनी के साथ-साथ नील, कॉफी, शराब व रशम पर चुगा लगा दा गइ ताकि दूसरे देशों से आयात न हो सके। अमेरिकी उपनिवेशों में इन अधिनियम की प्रतिक्रियाएं आरम्भ होने लगीं।

1765 में स्टाम्प अधिनियम आया, जिसके द्वारा लाइसेन्स, समझौते, करारनामा, क्रय-विक्रय पत्रों, वसीयत-नामा, अखबार, पञ्चांग, पत्र व अन्य कागजों पर आधे पेन्स से लेकर 10 पौण्ड तक का स्टाम्प (टिकट) लगाना अनिवार्य हो गया। इस अधिनियम के दायरे में व्यापारी, बुद्धिजीवी व जनसाधारण सभी आते थे नतीज़न इसका विरोध किया गया। जब याचिकाओं व लोकावेदनों का कोई असर न हुआ तब अंग्रेजी माल का बहिष्कार किया गया। वर्जीनिया, जहां इस अधिनियम का सर्वप्रथम विरोध किया गया था, की प्रतिनिधि सभा में पैट्रिक हैनरी ने जार्ज तृतीय को एक निरंकुश शासक बताया प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं नारा बुलन्द हुआ। टैक्स बसूलने वाला के पुतले जलाए गए। कई उपनिवेशों में "सन्स ऑफ लिबर्टी" (स्वतन्त्रता पुत्रों) नाम के संगठन बनाए गए। पैट्रिक हैनरी ने जेम्स ओटिस के सहयोग से न्यूयार्क में अक्टूबर 1765 में नौ उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने इन अधिनियमों का विरोध किया। विरोध व बहिष्कार के आगे ब्रिटिश सरकार झुक गई। 1766 में स्टाम्प अधिनियम वापस ले लिया गया और चीनी अधिनियम में संशोधन किया गया।

सम्भावतया मामला यहीं समाप्त हो जाता पर 1765 ही में क्वार्टरिंग अधिनियम पारित किया था, जिसके अन्तर्गत विशेष जिलों में रखी गई अंग्रेज़ सेना के रहने, खाने का इंतजाम उपनिवेशों को करना था। 1767 में चार्ल्स टाउनशेण्ड ने संसद को टाउनशेण्ड अधिनियम पारित करने को बाध्य किया जिसके अन्तर्गत कांच, कागज, रंग, सीसा (सफेद व लाल), व चाय पर कर लगाने का प्रावधान रखा गया। कर अधिक न थे पर ये वस्तुएं सामान्य उपयोग की थीं, अतः इससे सभी को प्रभावित होना था। इसी के साथ टाउनशेण्ड ने तटकर अधिकरी मण्डल की स्थापना की, जो तस्करी को समाप्त करने के लिए था। इस मण्डल का प्रधान कार्यालय बोस्टन में था। टाउनशेण्ड ने एक और कानून पारित कराया जिसके अन्तर्गत अमेरिका में काम करने वाले ब्रिटिश अधिकारियों पर कोई अपराध करने पर अभियोग केवल इग्लैण्ड में ही चलाया जा सकता है। उपनिवेश वासियों के लिए इस कानून का अर्थ ब्रिटेन द्वारा अपने अपराधी अधिकारियों को इग्लैण्ड में आश्रय देना था।

क्वार्टरिंग अधिनियम का मैसाचूसैट्स की एसमेम्बली ने कड़ा विरोध किया। न्यूयार्क की एसेम्बली ने इसका अनुसरण किया तो टाउनशेण्ड ने न्यूयार्क एसेम्बली को भंग कर दिया। इससे पूरे अमेरिका में क्रोध की अग्नि भभक उठी। अंग्रेज़ी माल का आयात 1,363,000 पौण्ड था वहीं बहिष्कार 1769 में 504,000 पौण्ड रह गया। इसने इग्लैण्ड व अमेरिका दोनों में आर्थिक अस्थिरता को जन्म दिया नतीजन 1770 में टाउनशेण्ड अधिनियम वापस ले लिए गए।

लेकिन उपनिवेशों पर सत्ता दर्शाने और इग्लैण्ड को कर लगाने का अधिकार है इस सिद्धांत के पालन हेतु चाय पर प्रति पौण्ड 3 पैन्स का कर बरकरार रखा गया। हालांकि इग्लैण्ड से आने वाली चाय पर प्रति पौण्ड 12 पैन्स की छूट दी गई याने

इग्लण्ड से सस्ती चाय अमेरिका को दी जाने लगी। इग्लैण्ड व अमेरिका के मध्य व्यापारिक गतिविधियां फिर से चलने लगीं 1770 में जो आयात 1,604,000 पौण्ड था वह 1771 में 4,200,000 पौण्ड हो गया। व्यापारियों ने क्रान्तिकारी नेताओं और जन समूह, जिनका उपयोग वे अंग्रेजों के विरूद्ध करते थे, से मुंह मोड़ लिया।

ब्रिटिश सरकार व उपनिवेशों के मध्य तनाव फिर भी कम न हुआ, इसे क्रान्तिकारी नेताओं पुरानी औपनिवेशिक नीति को बरकरार रखने वाले इंग्लैण्ड व उसके एजेन्टों ने खत्म नं होने दिया। मैसाचूसेट्स में सेम्युअल एडम्स ने क्रांतिकारी भावना खत्म न होने दी। समान विचारधारा वाले पेट्रिक हैनरी और थॉमस जेफरसन जैसे व्यक्तियों के साथ मिलकर क्रांतिकारी विचार अमेरिका के कौने-कोने में पहुंचाया जाने लगा। इधर ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी, जिसके साथ कई ब्रिटिश राजनीतिज्ञ व पूंजीपति थे, को दीवालिए से बचाने के प्रयास द्वारा अमेरिका के साथ तनाव समाप्त करने का मौका खत्म कर दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास। करोड़ 70 लाख पौण्ड चाय थी, जिसे बेच कर दीवालां हटाया जा सकता था। इसके कम्पनी को बाजार और उपनिवेशवासियों को सस्ती चाय मिल सकती थी। इग्लैण्ड ने यह किया। 1773 के चाय अधिनियम के पहले उपनिवेशवासी चाय को लाभ देते थे- ईस्ट इण्डिया कम्पनी को, अंग्रेज़ बिचौलिए को, अमेरिका बिचोलिए को और स्थानीय व्यापारी को कम्पनी को सीधे आयात करने की आज्ञा देने का अर्थ हुआ दो बिचौलियों को व्यापार से हटा देना। इसका अर्थ यह भी हुआ कम्पनी को चाय का एकाधिकार देना, याने किसी भी कम्पनी को किसी भी माल का एकाधिकार दिया जा सकता है। स्पष्ट है कर के अतिरिक्त अन्य मामले भी महत्वपूर्ण बन गए थे। तटवर्ती नगरों का शक्तिशाली वर्ग विरोध में उठ खड़ा हुआ। हैनाकॉक जैसे व्यापारी, जो चाय के बड़े आयातक ये, चाय अधिनियम के विरोधी हो गए।

चाय विरोध की प्रसिद्ध घटना 16 दिसम्बर 1773 में बोस्टन बंदरगाह में घटित हुई जो 'बोस्टन टी पार्टी' के नाम से विख्यात है। इस दिन सैम्युअल एडम्स और उसके सहयोगी रेड-इण्डियनों की पौशाक में बंदरगाह पर खड़े चाय के जहाजों पर चढ़ गए और चाय 342 पेटियां समुद्र में फैंक दी। 'बोस्टन टी पार्टी' ब्रिटिश सत्ता पर सीधे प्रहार थी और संसद ने इसके जबाब में चाय अनुशासनात्मक उपाय, जो "असहनीय अधिनियम" कहलाते हैं, पारित किएः बोस्टन बंदरगाह को तब तक के लिए बंद कर दिया गया जब तक नष्ट नाय के हर्जाना नहीं मिलता। मैसाचूसैट्स के चार्टर के उदारवादी स्वरूप को बदल दिया गया। वहां चुने हुए प्रतिनिधियों के स्थान पर सरकार द्वारा परामर्शदाता नियुक्त किए गए। सभाओं पर रोक लगा दी गई। तीसरा, मैसाचूसैट्स में सैनिकों को रखने के उद्देश्य से 1765 को क्वार्टरिंग अधिनियम में संशोधन करना। और चौथा डयूटी न कर पाने वाले उपनिवेश के एजेन्टों पर इंग्लैण्ड में मुकदमा। दूसरे शब्दों में, संसद अपनी शक्ति के प्रदर्शन पर तुली हुई थी। वास्तव में इसके पीछे जार्ज तृतीय का भी हाथ था।

अभी बोस्टन की घटना की उत्तेजना बढ़ ही रही थी कि एक और कानून पारित किया गया, 'क्यूबेक कानून', इसका बोस्टन से कुछ लेना देना न था। इस कानून द्वारा ओहियों तथा ग्रेट लेक के मध्य का क्षेत्र क्यूबेक प्रांत को सौंप दिया गया।

इसने वर्जीनिया, न्यूयार्क, कनेक्टिकट, और मैसाचूसैट्स के दावों को खत्म कर दिया। क्रांतिकारियों के लिए यह कानून भी विरोध का हथियार बन गया। तुरत अंग्रेज़ी माल का तीसरा बहिष्कार हुआ। 1774 में 2,590,000 पौण्ड का आयात 1775 में 201,000 पौण्ड हो गया। यह गिरावट अंग्रेजी अर्थव्यवस्था को धक्के देने वाली थी। संसद में एक के बाद एक याचिकाएं भेजी जाने लगी, पर राजा व उसके मंत्री झुके नहीं। मार्च 1775 में मैसाचूसैट्स को विद्रोही करार कर दिया गया। न्यू इंग्लैण्ड के मछुआरों को ग्रेट बैंक में जाने से मना कर दिया गया। इग्लैण्ड ने उपनिवेशों के साथ हो रहे तनाव को खत्म करने का कोई प्रयास न किया। दूसरी तरफ उपनिवेशों ने इग्लैण्ड के प्रति अपना विरोध बरकरार रखा।

19.8: अमेरीका स्वतन्त्रता संग्रामः

प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेज अधिवेशन

बोस्टन बंदरगाह की घेराबन्दी और क्यूबेट एक्ट के प्रश्न को लेकर 5 सितम्बर 1774 को फिलाडेल्फिया में उपनिवेशो का पहला सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में जोर्जिया को छोड़कर 12 उपनिवेशों की विधान सभा ने अपने प्रतिनिधि भेजे। सम्मेलन में यद्यपि इग्लैण्ड के प्रति विरोध बढ़ता दिखाई दे रहा था लेकिन कोई भी उपनिवेश इंग्लैण्ड से सम्बन्ध विच्छेद करने को तैयार नहीं था। ब्रिटिश संसद की भर्त्सना करने के साथ-साथ जार्ज तृतीय को एक याचना-पत्र भेजा गया, जिसमें उपनिवेशों पर लगाए प्रतिबन्धों को हटाने की याचना की गई थी। लेकिन इसका इग्लैण्ड पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जार्ज ने इसे ठुकरा दिया फलतः क्रान्तिकारी और शक्तिशाली हो गए। इग्लैण्ड के प्रति भक्ति रखने वाले अमेरिकी टोरी भी क्रान्तिकारियों का साथ देने को बाध्य हो गए। जगह-जगह स्वयं सेवकों की सुरक्षा समितियां स्थापित की गई और व्यापार बहिष्कार किया जाने लगा।

18 अप्रैल 1775 को क्रांतिकारियों व अंग्रेज सेना के मध्य पहली बार आमना-सामना हुआ। मैसाचूसैट्स के स्वंय सेवकों ने कनकार्ड में गोला-बारूद्ध इकट्ठा कर रखा था। ब्रिटिश सेना के जनरल गेज ने इस युद्ध सामग्री को जब्त करने और जॉन हैन कॉक सैम्युअिल एडम्स को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। स्वंय सेवकों की एक छोटी टुकड़ी ने लेक्सिंगटन गांव के पास ब्रिटिश सेना का मार्ग रोकने का विफल प्रयास किया। आठ स्वंय सेवक मारे गए। यह खबर सभी उपनिवेशों में फैल गई। कनकार्ड से वापस लौटती अंग्रेज सेना को हजारों स्वंय सेवकों से टक्कर लेनी पड़ी और 2500 सैनिक मारे गए। इसके बाद सशस्त्र विद्रोह की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। जगह-जगह स्वंय सेवक सैन्य प्रशिक्षण पाने लगे।

द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेसः

लेक्सिंगटन और कनकार्ड की घटनाओं के बाद 10 मई 1775 को फिलाडेल्फिया में द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस की बैठक हुई। जॉन हैनकॉक इसके अध्यक्ष बने और इसमें थोमस जेफरसन, बेन्जामिन फैकलिन जैसे नेता उपस्थित थे। काफी वाद-विवाद के बाद यह स्पष्ट किया गया कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु शस्त्र उठाया जा सकता है, कि दास होने की अपेक्षा स्वतन्त्र होकर मरना अधिक श्रेयकर है। कर्नल जार्ज वाशिंगटन को विद्रोही सेना का मुख्य सेनापति बनाया गया। इधर 23 अगस्त 1775

में जार्ज तृतीय ने अमेरिका उपनिवेशों का विद्रोह घोषित कर दिया। इसी समय टामस पेन की पुस्तक 'कामनसेन्स' बाजार में आई, जिसमें इग्लैण्ड की कठोर शब्दों में आलोचना थी तथा उपनिवेशों के प्रति कठोर व्यवहार के लिए संसद की अपेक्षा जार्ज तृतीय के कुटिल व्यक्तित्व को उत्तरदायी ठहराया। 50 पृष्ठ की इस पुस्तिका की लगभग 5 लाख प्रतियां हाथों-हाथ बिक गई। इसके प्रकाशन के बाद इग्लैण्ड से युद्ध करने में संकोच करने वाले भी अपने विचारों को बदलने को बाध्य हो गए।

तृतीय महाद्वीपीय सम्मेलनः

जून 1776 में उपनिवेशों का तीसरा सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें 4 जुलाई को न्यूयार्क को छोड़कर सभी उपनिवेशों की सहमति से स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई। न्यूयार्क इस घोषणा में 15 जुलाई को शामिल हुआ। स्वतन्त्रता की घोषणा में कहा गया कि मुक्ति और स्वतन्त्रता उपनिवेशों का अधिकार है। सत्ताईस शीर्षकों में अमेरिकी स्वतन्त्रता के हनन की कहानी कहते हुए दार्शनिक जॉन लॉक के ''प्राकृतिक अधिकार'' सिद्धांत को स्वतन्त्रता की घोषणा का आधार बताया। इस घोषणा-पत्र के अनुसार''द्रढ़ जन्म से सभी मनुष्य समान हैं और सृष्टिकर्त्ता ने उन्हें कुछ अहरणीय अधिकार दिए हैं, जिनमें प्रमुख हैं- जीवन, स्वाधीनता और सुख का अनुभव। इन्हीं अधिकारों की प्राप्ति के लक्ष्य से जन समूहों में शासन की योजना बनाई जाती है तथा शासकों को शासितों की ही अनुमति से अधिकार प्रदान होते हैं।'' घोषणा पत्र में उन सभी घटनाओं व परिस्थितियों का विवरण दिया गया जो जार्ज तृतीय की नीति को अंवाछनीय सिद्ध करे। ईश्वर द्वारा प्रदत्त जीवन स्वतन्त्रता और सुख के स्थायी अधिकारों का हनन करने वाली सरकार को समाप्त करना या बदलना लाजमी है, इस बात की घोषणा के साथ अमेरिका का इग्लैण्ड से सम्बन्ध विच्छेद हो गया और स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ हो गया।

युद्ध का स्वरूप

उपनिवेशों को सैन्य शक्ति से दबा देने के निश्चत से जार्ज तृतीय ने नई सेना की भर्ती की। जब इसके लिए उसे अधिक व्यक्ति न मिले तो उसने हैस, अलहाट और ब्रंसविक से 20,000 जर्मन सैनिक भाड़े में लिए। संसार की सबसे बड़ी ताकत इंग्लैण्ड का अनुभवहीन अमेरिकी सेनापति और अल्प-प्रशिक्षित सैनिकों से युद्ध आरम्भ हुआ, जो 6 वर्ष तक चला।

आरम्भ में वाशिंगटन ने अंग्रेज सेना को बोस्टन से भगा दिया, पर जब वह न्यूयार्क के महत्वपूर्ण स्थान पर अधिकार करने पुनः अग्रेजी सेना का मुकाबले आया तो उसकी हार पर हार होने लगी और उसे अंग्रेज सेना ने न्यूजर्सी की और भगा दिया। 1776 के अन्त में अपूर्व युद्ध कौशल का परिचय देते हुए वाशिंगटन ने ट्रेण्टन के युद्ध में ब्रिटिश सेना को परास्त किया। इसके बाद प्रिन्सटन के युद्ध में अंग्रेज फिर हारे। लेकिन 1777 के आरम्भ में फिर अमेरिकीयों की स्थिति संकटमय हो गई। अंग्रेज जनरल 'हो' की सेनाएं न्यूयार्क से समुद्र के रास्ते फिलाडेलिफिया पहुंच कर अमेरिका की नई राजधानी पर कब्जा कर लिया। कांग्रेस के सदस्य भाग खड़े हुए। वाशिंगटन व उसके सैनिकों को शहर के बाहर जंगल में जाड़े में दिन गुजारने पड़े। यह माना जाता है कि जनरल हो की राजनीतिक सहानुभूति अमेरिकी

लोगों के साथ था अन्यथा वह इस समय अपना आक्रमण जारी रखते हुए अमेरिका को पूरी तरह से कुचल सकता था।

1777 का अक्टूबर माह अमेरिका के लिए शुभ साबित हुआ। इग्लैण्ड ने न्यूयार्क पर कब्जा जमाकर अमेरिका को दो भागों में बांटने की योजना बनाई, जिसके लिए न्यूयार्क पर एक साथ तीन दिशाओं से आक्रमण करना था- जनरल जॉन-बरगोइन को कनाड़ा से दक्षिण को, जनरल हो को न्यूयार्क से उत्तर को और जनरल सैन्ट लेजर को पूर्व को बढ़ना था और न्यूयार्क से 150 मील दूर उत्तर को हड़सन नदी की घाटी में अल्बोनी नामक स्थान पर तीनों को मिलना था। लेकिन यह योजना बुरी तरह से असफल हुई। सैन्ट लेजर की सेना को पश्चिमी वनों में अमेरिकनों ने रोके रखना, हो की सेना पहुंची ही नहीं। जनरल बरगोइन अपने 6000 सैनिकों के साथ सितम्बर मध्य तक अन्य सैनाओं की प्रतीक्षा करता रहा। बेनेर्डक्ट आर्नल्ड के नेतृत्व में लगभग 20,000 अमेरिकी किसानों व सैनिकों ने बरगोइन को सारा टोगा की ओर खदेड़ कर घेर लिया। 17 अक्टूबर 1777 को मजबूरन बरगोइन को आत्मसर्म करना पड़ा। सारा टोगा की हार ने इग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। अमेरिका के पक्ष में फ्रांस व स्पेन हो गए। इसके पहले भी बेंजामिन फ्रैंकलिन की अपील पर इन देशों ने अमेरिका को युद्ध सामग्री भेजी थी ओर फ्रांस के माकुई-द-लफायत, जर्मनी के बैरन फान स्टम यूबन और बैरन फान कल्ब तथा पोलैण्ड के काम-काम फलास्की जैसे दक्ष सैन्य अधिकारियों ने अपनी सेनाएं भेट की थी। सारा टोगा के युद्ध बाद 6 फरवरी को फ्रांस व स्पेन दोनों ने अमेरिका से सन्धि कर ली। इससे युद्ध में तेजी आ गई। इधर नवम्बर 1777 में इग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लॉर्डनार्थ ने यह निश्चय कर चुका था कि वह कर समाप्त करके अमेरिकों को सन्तुष्ट करने के लिए कानून पास करगएगा। परन्तु 17 फरवरी 1778 तक संसद का अधिवेशन न हो सकने के कारण दुर्भाग्य से उसके विचार फलीभूत न हो सके।

फ्रांस व स्पेन द्वारा अमेरिका का साथ देने से पश्चिमी द्वीप समूह युद्ध का दूसरा क्षेम बन गया। अन्तिम लड़ाई वर्जिनिया के यार्क टाउन के स्थान पर हुई। फ्रांसीसी बेड़े की सहायता से वाशिंगटन के 15,000 सैनिकों ने लार्ड कार्नवालिस के 8,000 सैनिकों को चारों तरफ से घेर लिया। घेरे तोड़ने के जब सभी प्रयत्न निष्फल रहे तो उसने 18 अक्टूबर 1781 में आत्म-समर्पण कर दिया। मार्च 1782 में अंग्रेजी संसद ने युद्ध रोकने का प्रस्ताव पारित कर लार्ड नार्थ को इसकी विफलता का उत्तरदायी ठहराया।

पैरिस की सन्धिः

युद्ध समाप्ति के बाद इग्लैण्ड व अमेरिका दोनों शान्ति वार्ता हेतु उत्सुक थे लेकिन फ्रांस व स्पेन इसके निरूद्ध थे, वे इग्लैण्ड से कुछ और भूमि हथियाना चाहते थे। 1782 तक अमेरिका प्रतिक्षा करते रहा। दरअसल फ्रांस न्यूफाउन्डलैण्ड के समीप मछली पकड़ने का अधिकार चाहता था और स्पेन को अल्घेनी पर्वत मालाओं और मिसिसीपी के मध्य का प्रदेश दिलाना चाहता था। यह बात न ही अमेरिका और न इग्लैण्ड चाहते थे, नतीजन दोनों ने सीधे वार्तालाप करना आरम्भ किया। इससे घबराते हुए फ्रांस ने अप्रैल 1782 में शान्ति वार्ता की स्वीकृति प्रदान की। अमेरिका

का प्रतिनिधि था बेन्जार्मन फ्रेंकार्लन और इग्लैण्ड का प्रतिनिधि रिचर्ड ओस्वाल्ड। लम्बी वार्तालाप के बाद 3 दिसम्बर 1782 में पैरिस की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। इस सन्धि द्वारा इग्लैण्ड ने अमेरिका की स्वतन्त्रता स्वीकार ली और उसकी सीमाएं स्पष्ट कर दी गई। इग्लैण्ड ने फ्रांस को सेनेगल और टोबेगो लौटा दिया, न्यूफाउण्डलैण्ड के निकट मछली पकड़ने का अधिकार भी दे दिया। स्पेन को भूमध्य सागर में मिनोर्का टापू और अमेरिका में फ्लोरिडा प्रायः द्वीप दे दिया गया। अमेरिका ने इस बात को स्वीकारा कि वह इग्लैण्ड के व्यापारियों को वहां से अपने रूपए वसूलने से कानूनन हीं रोकेगा और जब्तकरी सम्पत्ति वापस लौटा देगा।

अंग्रेजों की पराजय के कारण

अंग्रेजों की पराजय के कई कारण थे। यह बात जरूर है कि इग्लैण्ड सामुद्रिक शक्ति में संसार में श्रेष्ठ था, लेकिन प्रशांत महासागर पार कर समय पर पर्याप्त सेना व सारा समान पहुंचाना कठिन कार्य था। फिर, उपनिवेशों में अग्रेंज़ी सेना मे जो ढाई लाख सैनिक थे उनमें एक लाख से अधिक कभी उपस्थित नहीं हुए दरअसल, इग्लैण्ड ने कभी भी युद्ध की व्यापकता को समुचित महत्व नहीं दिया सैन्य संख्या की दृष्टि में अमेरिका की 1/3 जनसंख्या लड़ रही थी तो क्षेत्र मे अमेरिका का विशाल तट था जहां अग्रेजी नौसेना प्रभावहीन हो गई थी। अग्रेज़ी सेना स्थलयुद्ध में बहुत कुशल नहीं थी। अनुभवी होने के बावजूद अग्रेज़ी सेनापतियो में परस्पर फूट व ईर्ष्या हार का कारण थी। इस युद्ध के पक्ष में व्हिग दल नही था अतः व्हिग सेनापति पूरे उत्साह से नहीं लड़ रहे थे। अन्त में, इग्लैण्ड के व्यापारी अपने व्यापार हेतु सरकार पर सन्धि के लिए निरंतर दबाव डाल रहे थे। वे जानते थे कि अमेरीकी स्वतन्त्र होकर भी इंगलैण्ड के साथ व्यापार करते रहेगें तो उन्हे हानि नहीं होगी। ये सब वो कारण थे जिनकी वजह से इग्लैण्ड को पराजय का सामना करना पड़ा।

19.9 स्वतंन्त्रता संग्राम का परिणामः-

अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम न सिर्फ प्रशान्त महासागरीय जगत वरन् सम्पूर्ण जगत की महत्वपूर्ण घटना थी। उसके महत्वपूर्ण परिणाम हुए।

सर्वप्रथम, अमेरिका एक स्वतन्त्रता राष्ट्र बना, जो योरोपीय शक्तियों के चंगुल से पूर्णतयः स्वतन्त्र बन गया। पहले ही 1763 में सप्त वर्षीय युद्ध के उपरांत फ्रांस अमेरिका से दूर हो गया था। इस संग्राम में इग्लैण्ड और कालांतर में 1780 में अमेरिकावासियों ने स्पेन के विरूद्ध विद्रोह कर स्पेन के प्रभुत्वा वाले उपनिवेशों को भी स्वतन्त्र करा लिया।

यूं स्वतन्त्रता संग्राम की समाप्ति होने पर अमेरिकी राज्यों के आपसी मतभेद उभरने लगे थे। सभी तेरह उपनिवेशों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर अपने-अपने संविधान बना लिए थे। 1707 मई में सभी राज्यों का सम्मेलन आयोजित किया गया ताकि संघीय संविधान बनाया जाए। जॉर्ज वाशिंग्टन इसके अध्यक्ष बने। अधिकांश विषयों पर विवाद होने के कारण 17 सितम्बर 1787 में एक छोटा सा संविधान बना- जिसे लागू होने के लिए 9 राज्यों की सहमति आवश्यक थी। नागरिकों के मौलिक अधिकार, धर्म, भाषा, प्रेस की स्वतन्त्रता, मिलिशिया रखने का अधिकार,

न्यायालय में जूरा द्वारा सुनवाई के अधिकार और बिना नाम के वारंट आदि से सम्बद्ध 10 संशोधन जोड़ने के बाद सभी राज्य संविधान पर सहमत हो गए। फलतः मार्च 1789 को नयी सरकार स्थापित हुई जिसका प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंग्टन बना।

अमेरिका पहला प्रजातान्त्रिक राज्य था जिसने धर्म को राज्य से सर्वथा अलग रखा और धर्म को मनुष्य का व्यक्तिगत कार्य समझा। धर्म का प्रशासन व राज्य से तनिक भी सम्बन्ध नहीं रखा गया। स्वतन्त्र होते ही अमेरिका के गृह उद्योग धन्धों में विकास होना आरम्भ हुआ और अमेरिका औद्योगिक विकास में विश्व का एक महान राष्ट्र बन गया।

इग्लैण्ड के हाथों अमेरिकी उपनिवेशों के निकल जाने से जहां एक साम्राज्यवादी देश के रूप में इग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को धक्का लगा वहीं सिद्धांत के रूप में वाणिज्यवाद पर भी लोगों की आस्था न रही। इग्लैण्ड ने इस नीति को त्याग दिया और अन्य बस्तियों को बचाने हेतु अपनी उपनिवेशीय नीति में परिवर्तन किया। 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल' (ब्रिटिश कामनवैल्थ ऑफ नेशन) नई नीति थी जो अधिक उदार तथा उपनिवेशवासियों के लिए हितकर थी।

स्वतन्त्रता संधर्ष के परिणामस्वरूप इग्लैण्ड में जार्ज तृतीय के व्यक्तिगत शासन का अन्त हो गया। प्रधानमन्त्री लॉर्ड नार्थ को अपना पद छोड़ना पड़ा। राजा की शक्तियों पर अकुंश लग गया, 'केबिनेट' की शक्ति पुनः स्थापित हुई और ब्रिटिश संविधाऩव की रक्षा हुई।

इस संग्राम से सबसे अधिक फ्रांस प्रभावित हुआ। फ्रांस के सैनिकों व स्वयंसेवकों ने अमेरिका की आजादी की लड़ाई जीत कर वापस अपने देश में क्रांति के अवसर पर क्रांति को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम ने फ्रांसीसी क्रांति का मार्ग प्रशस्त किया।

9.10 सारांश

अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम विश्व की एक महान घटना थी। अक्सर इसे अमेरिकी क्रांति के नाम से भी संबोधित किया जाता है। कई विद्वानों को इसमें क्रांति के सभी लक्षण दिखाई देते हैं। जैसे रिचर्ड बी मोरिस को लें, उनके अनुसार वर्तमान के सभी उदीयमान राष्ट्र संस्कारवश या रूप में अमेरिकी क्रांति को नमन करते हैं क्योंकि अमेरिकी क्रांति ने उन्हें स्वतन्त्रता का रास्ता दिखाया। अमेरिकी क्रांति पहला "राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम" था, सारागोटा व यार्क टाउन जैसे युद्ध के अलावा इस क्रांति में गुरिल्ला युद्ध पद्धति के समान अमेरिकी क्रांति भी एक जन आन्दोलन था। दरअसल, स्वतन्त्रता संग्राम के स्वरूप पर विभिन्न मत हमें मिलते हैं। इसे परिवर्तन विरोधी तथा निवारक आन्दोलन मात्र ही माना गया। सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति के बाद यह युद्ध स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए किया गया था। इसी प्रकार जार्ज बानकोफ्ट के अनुसार यह एक ऐसी क्रांति थी जिसकी सफलता इतनी सुखद शान्ति के साथ पा ली गई कि रूढ़िवादी भी इसकी निन्दा करने में हिचकते हैं।

देखा जाय तो इग्लैण्ड के आधिपत्य से मुक्ति हेतु अमेरिकी उपनिवशों का संघर्ष इतिहास के अन्य संघर्षों से भिन्न था। न यह गरीबी के कारण उत्पन्नस असंतोष का परिणाम था न यहां के लोग सामन्ती व्यवस्था से पीड़ित थे। उपनिवेशों ने तो जैसा फ्रेडरिक जेन्टे ने बताया, केवल अंग्रेजों द्वारा उने स्वीकृत अधिकारों पर किए जाने वाले अतिक्रमण के विरूद्ध संघर्ष ही किया।

अक्सर स्वतन्त्रता संग्राम को सम्राट जार्ज तृतीय का निजी युद्ध कहा जाता है। "प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं" को भी एक प्रमुख कारण गिनाया गया है। इस सम्बन्ध में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ब्रिटिश संसद ने बिना प्रतिनिधित्व के उपनिवेशन के आरम्भ से ही कर लगाए हैं। फिर 1763 के बाद जो भी नए कर लगाए गए थे, वे वापस ले लिए गए थे, सिवा चाय के। इसी सम्बन्ध में कालैण्डर का निष्कर्ष महत्वपूर्ण है, जिसके अनुसार अमेरिका को किसी भी तरह के कर पर-औपनिवेशिक व साम्राज्य-मनोवैज्ञानिक चिढ़ थी। यह मानसिकता महत्वपूर्ण है। अमेरिका का इग्लैण्ड के प्रति कोई प्रेम या लगाव न था। अमेरिका में बसने वालों ने बिना किसी बाहरी सहायता या हस्तक्षेप के अपना भाग्य खुद बनाया था, वे यह स्थिति बरकरार रखना चाहते थे। जहां तक जार्ज तृतीय के निजी युद्ध या कर सम्बन्धी विचार है इस पर बियर्ड से सहमत होना आवश्यक है "जार्ज तृतीय की गद्दी में बैठने और ग्रिनवेल के सत्ता सम्हालने के काफी पहले से ही हजारों अमेरिकी का ब्रिटिश आर्थिक साम्राज्यवाद के साथ संघर्ष हुआ था और 18 वीं शताब्दी के मध्य तक फ्रैंकलिन जैसे दूरदर्शी ने संघर्ष का सार खोज लिया था।" स्वतन्त्रता को वांछनीय बनाने वाली मानसिकता का विकास एक लम्बी प्रक्रिया थी, जैसा जॉन एडम्स ने कहा, "युद्ध आरम्भ होने के पूर्व ही क्रान्ति आरम्भ हो गई, जनता के दिलो-दिमाग में"

19.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

(i) अमेरिका की खोज एवं अमेरिका के उपनिवेशन पर प्रकाश डालते हुए उपनिवेशन की प्रकृति का विश्लेषण कीजिए।

(ii) वाणिज्यवाद की व्याख्या करते हुए अमेरिका में वाणिज्यवाद के स्वरूप की व्याख्या कीजिये।

(iii) अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का विवरण दीजिये।

(iv) अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के परिणामों की व्याख्या कीजिये।

19.12 संदर्भ ग्रन्थः

1. बनारसी दास सक्सेनाः **अमेरिका का इतिहास**

2. हैरोल्ड अंडरउउ फॉडल व नेर : **अमेरिकन इकोनोमिक हिस्ट्री**

3. सी0 एण्ड एम0 बियर्ड : **राईज ऑफ अमेरिका सिविलाईजेशन**

4. जी0 एस0 कालेण्डर : **सेलेक्शन्स फ्रांम द इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ द यूनाईटेड स्टेट्स**

5. रिचर्ड बी0 मोरिस : **द इमर्जिंग नेशन्स एण्ड द्र अमेरिकन रिवोल्यूशन**

इकाई-20
अमेरिकी क्रान्ति का महत्व

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 अमेरिका के इतिहास के सन्दर्भ में महत्व

- 20.2.1 राजनीतिक क्षेत्र में
- 20.2.2 आर्थिक क्षेत्र में
- 20.2.3 कृषि क्षेत्र में
- 20.2.4 नौ परिवहन क्षेत्र में
- 20.2.5 सामाजिक क्षेत्र में

20.3 विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में महत्व

- 20.3.1 विचारधारा के रूप में
- 20.3.2 इंग्लैण्ड पर प्रभाव
- 20.3.3 फ्रांस पर प्रभाव
- 20.3.4 आयरलैण्ड पर प्रभाव
- 20.3.5 भारत पर प्रभाव

20.4 सारांश

20.5 शब्दावली

20.6 बोध प्रश्न

20.7 सन्दर्भ ग्रंथ

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको अमेरिका की क्रांति के महत्व से अवगत कराया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

एक राष्ट्र के रूप में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के आविर्भाव के महत्व को जान सकेंगे;

इस घटना का विश्लेषण खण्डों में विभक्त करके नहीं समग्र रूप में करने के महत्व से परिचित हो सकेंगे;

इग्लैण्ड को भारी वाणिज्यिक क्षति, फ्रांस में लोकतन्त्र का शुभारम्भ जैसे तथ्यों से परिचित हो सकेंगे; और

संविधानवाद, संघवाद एवं गणतन्त्रवाद के राजनीतिक विचारों को शक्ति प्राप्त करने सम्बन्धी तथ्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

1492 ई0 में कोलम्बस द्वारा एक अज्ञात संसार की खोज स्वयं में ही एक अभूतपूर्व घटना थी। अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में इस देश की स्थिति में परिवर्तन आ गया और वह इंग्लैण्ड की अधीनता से मुक्त होकर एक नव राष्ट्र के रूप में दुनिया के सामने उभर कर आया। 1775 से 1783 के मध्य घटित घटनाओं और जन्मे विचारों ने अमेरिकन क्रांति को विशिष्ट दर्जा प्रदान किया। वस्तुतः यह संघर्ष न तो घोर गरीबी के कारण उत्पन्न असंतोष का परिणाम था और न सामन्ती व्यवस्था से उत्पन्न अत्याचारों के विरूद्ध एकजुट होने का परिणाम था। वस्तुतः यह शानदार संघष अमेरिकी उपनिवेशों द्वारा इंग्लैण्ड की इच्छा के विरूद्ध स्वतन्त्रता कायम करने के लिए तथा इंग्लैण्ड द्वारा अपनाई गई कठोर औपनिवेशिक नीति के विरूद्ध था। इस प्रकार अमेरिका का स्वातन्त्र्य संघर्ष अनूठा था।

निःसन्देह 'वंशानुगत कुलीनतन्त्र को समाप्त करके गणतन्त्र की स्थापना करने वाला संयुक्त राज्य अमेरिका प्रथम देश था।' अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम ने दुनिया के सामने यह विचार प्रस्तुत किया कि राष्ट्रीय जागरण हो जाने के उपरान्त उपनिवेशों को कोई भी सरकार अपने अधीन नहीं रख सकती। इस स्वातन्त्र्य संग्राम को 'बीसवीं शताब्दी में भी विश्व में महान् परिवर्तन लाने वाला माना जाता है।'

20.2 अमेरिका के इतिहास के सन्दर्भ में महत्व-

स्वतन्त्रता की उद्घोषणा के समाचार पर फिलाडेल्फिया, बोस्टन तथा अन्य स्थानों पर आनन्द व्यक्त करने, बन्दूक तथा तोपें दागने और गिरिजाघरों में घण्टियाँ बजाने के लिए भीड़ एकत्र हुई किंतु अमेरिका में अनेक लोग थे जिन्होंने खुशियाँ नहीं मनाईं। इस कथन के बावजूद अमेरिका के इतिहास में अमेरिकन क्रांति का महत्व कम नहीं हो जाता है। कतिपय विद्वानों ने क्रान्ति को माँगों के सन्दर्भ मे रूढ़िवादी एवं सुरक्षात्मक बताया। इसके अतिरिक्त जार्ज बानफोस्ट की यह टिप्पणी, जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ् द यूनाइटेड स्टेट्स में की है, स्वीकार्य नहीं होने के बावजूद विचारणीय है; यह तो एक ऐसी क्रांति थी जिसकी सफलता इतनी सुखद-शान्ति के साथ प्राप्त कर ली गई कि परिवर्तन विरोधी भी इसकी निन्दा करने में हिचके।' जे0 एफ0 जेमसन, फ्रेडरिक जेनटेन जैसे प्रभृत विद्वानों के विचारों से यह आभास मिलता है कि अमेरिका के क्राति से अमेरिका में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु अमेरिकन क्रान्ति में तेरह अमेरिकन उपनिवेशों में जो संघर्ष का बिगुल बजाया उसका प्रभाव अमेरिका सहित विश्व भर में दूरगामी रहा। इस संघर्ष ने एक स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना की तथा अमेरिका की औद्योगिक एवं आर्थिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त

किया। इतना ही नहीं इस संघर्ष के फलस्वरूप लक्षित हुए सामाजिक प्रभावों को देखकर ही तो कतिपय इतिहासकारों ने इसे सामाजिक आन्दोलन ही माना है।

20.2.1 राजनीतिक क्षेत्रः-

क्रान्ति ने संयुक्त राज्य अमेरिका के राजनीतिक जीवन में नया मोड़ दिया। इस संघर्ष का महत्व इस तथ्य में निहित है कि अमेरिका एक स्वतन्त्र एवं सम्प्रभु राष्ट्र बन गया। इंग्लैण्ड की सरकार ने उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान कर दी। क्रांति के द्वारा वंशानुगत कुलीनतन्त्र को समाप्त करके गणतन्त्र की स्थापना करने वाला देश बन गया। यह कहना गलत न होगा कि यदि इंग्लैण्ड की क्रान्ति ने प्रतिनिधि सत्तात्मक प्रथा को जन्म दिया, तो अमेरिकी क्रांति ने जन्तन्त्रात्मक प्रथा को जन्म दिया, जिसमें पहली बार सर्वसाधारण को मताधिकार प्राप्त हुआ। संघीय शासन व्यवस्था, लिखित संविधान एवं धर्मनिरपेक्षता का प्रयोग अमेरिका की भूमि रूपी प्रयोगशाला में जिस सफलता के साथ हुआ उसने अमेरिका की क्रान्ति के महत्व में पर्याप्त इज़ाफा किया।

20.2.2 आर्थिक क्षेत्र-

अमेरिकन क्रान्ति के आर्थिक परिणाम भी इसके राजनीतिक परिणामों की भाँति अत्यधिक महत्वपूर्ण रहे। आर्थिक क्षेत्र में क्रान्ति ने मूलतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के मार्ग की सभी बाधाओं को समाप्त करके इसके विकास को प्रोत्साहित किया। पुरातन व्यवस्था तथा इससे सम्बन्धित रीति-रिवाज की समाप्ति से अमेरिकी उपनिवेशों में पूँजीवाद के विकास को बल मिला। क्रान्ति से अमेरिका के उद्योग दो तरह से लाभान्वित हुए- प्रथम, अमेरिकी उद्योग अंग्रेजों द्वारा लगाये गये व्यापारवादी प्रतिबन्धों से मुकत हो गयें, द्वितीय युद्धकाल में इंग्लैण्ड की वस्तुओं का आयात बन्द हो जाने के कारण उपनिवेशों के उद्योग को विकास का अवसर मिला। ब्रिटेन से ऊनी वस्त्र के आयात बन्द हो जाने से देशी वस्त्रों की माँग बहुत बढ़ गयी। सूत कातने और वस्त्र बुनने का कार्य राष्ट्रीय स्तर पर घर-घर किया जाने लगा। औद्योगिक विकास ने अमेरिका की आर्थिक दशा में सुधार कर आज उसे पिरामिडनुमा संरचना में उच्चतम शिखर पर आसीन कर दिया हैं।

20.2.3 कृषि के क्षेत्र में

अमेरिकी क्रान्ति का उसकी कृषि दशा पर बहुत प्रभाव पड़ा। क्रान्तिकाल में बड़े-बड़े भूमिपति उपनिवेशों को छोड़कर कनाडा आदि देशों को चले गये जिससे उनकी बड़ी-बड़ी भू-सम्पदाओं को तोड़कर छोटे-छोटे टुकड़ों में इनका वितरण निम्न एवं मध्यम वर्गों के हाथों में किया गया। क्रान्ति के सन्दर्भ में एक विद्वान की टिप्पणी है कि, "यदि समग्र रूप से देखा जाये तो अद्यतन अमेरिका की कृषि को लाभ ही हुआ हानि नहीं। साथ ही युद्ध काल में आये विदेशियों से यूरोप में कृषि सुधारों के सम्बन्ध में अमेरिका को नई जानकारी प्राप्त हुई।"

20.2.4 नौ परिवहन क्षेत्र में-

क्रान्ति ने अमेरिकन नौ-परिवहन को एक सशकत आधार प्रदान किया। शेष संसार के लिए अमेरिका के बन्दरगाह खोल दिये गये; इससे फ्रांस, स्पेन तथा हॉलैण्ड आदि के साथ अमेरिका के व्यापार में काफ़ी वृद्धि हुई। इन देशों से विलासिता की

वस्तुओं का आयात किया जाने लगा। इसके अतिरिक्त क्रान्ति का महत्व नौ-परिवहन व्यवस्था में सुधार के सन्दर्भ में गौर-तलब है। व्यक्तिगत कम्पनियाँ आगे आयीं और विश्व नौ-परिवहन से जुड़कर संसार में अमेरिका का नाम करने लगी।

20.2.5 सामाजिक क्षेत्र में-

अमेरिका के इस संग्राम से अमेरिकन समाज उद्वेलित हुआ। इस संघर्ष में स्त्रियों अपना महान् योगदान दिया। संघर्ष के समय उन्होंने गुप्तचरों का काम किया, शस्त्र के निर्माण में सहयोग दिया, युद्ध के समय अपने सम्बन्धियों को रसद पहुँचाने का कार्य उन्होंने किया। इसीलिए अमेरिका की औरतों की इस भागीदारी की ओर यदि अंग्रेज सेनानायक कार्नवालिस का ध्यान आकृष्ट हुआ तो इसमें आश्चर्य नहीं है। उसकी टिप्पणी है कि 'यदि हम लोग उत्तरी अमेरिका के सभी पुरुषों को खत्म भी कर दें तो औरतों को जीतने के लिए हमें काफी लड़ना पड़ेगा।' इस संघर्ष की सफलता के उपरांत के उत्तराधिकार नियम में भी परिवर्तन किया गया। इस परिवर्तन के फलस्वरूप मृत जमींदार की सम्पत्ति अब केवल ज्येष्ठ पुत्र को ही न दी जाकर उसके समस्त परिवार के सदस्यों में विभकत की जाने लगी। भागीदारों में जमींदार की पुत्रियां भी सम्मिलित होती थीं।

यह सोचना तथ्यों से परे होगा कि सर्वसाधारण ने संग्राम को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। किंतु यह भी सत्य है कि जनसाधारण को मताधिकार, से वंचित रखा गया। स्त्रियों, नीग्रो तथा बहुत से श्वेतों को भी मताधिकार नहीं मिला। यह बात भी विचारणीय है कि संग्राम का पथ प्रदर्शन जनसाधारण ने नहीं अपितु मध्यम वर्ग ने किया था। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि स्वतन्त्रता के घोषणा पत्र पर जितने लोगों ने हस्ताक्षर किये थे, उनमें अधिकांश लोग मध्यम वर्ग के थे। परन्तु इस सबके बावजूद अमेरिका की 1776 की क्रांति का महत्व सामाजिक क्षेत्र में कम नहीं हो जाता। इसने जन-साधारण को सुखमय जीवन का लक्ष्य बोध प्राप्त करने की प्रेरणा देकर इतिहास में स्वर्णिम अध्याय जोड़ दिया।

अब पहले से अधिक शिक्षा का महत्व अमेरिकन समाज ने समझा। यह तत्काल अनुभव किया गया कि प्रजातन्त्रीय स्वराज्य में शिक्षित मतदाताओं का होना आवश्यक है। जैफ़रसन ने लिखा, "मैं आशा करता हूँ कि सब चीज़ों से अधिक प्राथमिकता जनसाधारण की शिक्षा को दी जायेगी क्योंकि यह सिद्ध है कि जनता की सुबुद्धि पर ही स्वाधीनता के उचित स्तर को सुरक्षित रखना निर्भर है।" अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा कहे गये ये वाक्य आज भी प्रांसगिक हैं और भारत को अपनी स्वाधीनता को अक्षुण्ण बनाने के लिए देशवासियों को सुरक्षित करने में कोई कसर बाकी नहीं रखनी चाहिए।

20.3 विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में महत्व-

अमेरिका की क्रान्ति की सफलता ने अपना विश्वव्यापी प्रभाव स्थापित किया। अमेरिका स्वातन्त्र्य युद्ध की वास्तविक महत्ता न तो स्पेन या फ्रांस के प्रादेशिक लाभों, न हॉलैण्ड की व्यापारिक क्षतियों तथा इंग्लैण्ड के साम्राज्य की अवनति में ही थी, वरन् इसकी वास्तविक महत्ता अमेरिकी क्रान्ति के सफल सम्पादन में पाई जाती है। आधुनिक मानव प्रगति में अमेरिका की क्रान्ति एक महत्वपूर्ण मोड़ माना जा

सकता है। नव युग का प्रभाव नव युग का सन्देश आदि नामों से इस क्रान्ति को अभीहित किया गया है। परन्तु कुछ विद्वानों ने इसके महत्व को बढ़-चढ़कर आंकने से आगाह किया है। इतिहासकार चार्ल्स एबियर्ड, फ्रेडरिक जेनटेन, जार्ज बानफ्रोस्ट तथा इंग्लैण्ड का महान् राजनेता तथा वक्ता एडमंड बर्क इनमें शामिल हैं। यह तथ्य स्मरणीय है कि 1787 में संविधान के निर्माण हेतु फिलाडेल्फिया सम्मेलन में एकत्र 45 सदस्यों में से अधिकांश सदस्य केवल सरकार की सुरक्षा, गुलामों के व्यापार एवं भूमि में अभिरूचि रखते थे। उन्हें स्वतन्त्रता से विशेष प्रयोज्य नहीं था। परन्तु यह महत्वपूर्ण नहीं है कि लोग क्या सोच रहे थे; महत्वपूर्ण तो यह है कि परिणाम ही घटना को महत्व की आधारशिला प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से अमेरिका क्रान्ति विश्व इतिहास की एक अत्यंत ही उल्लेखनीय घटना थी।

20.3.1 विचारधारा के रूप में-

इस क्रान्ति की गौरवपूर्ण सफलता ने राजतन्त्र के दैवी अधिकार सिद्धान्त तथा कुलीन वर्गों के विशेषाधिकारों को गहरा आघात पहुँचाया। अमेरिकी क्रान्ति ने रक्तहीन क्रांति को न्यायसंगत रूप से गौरवान्वित किया और इन सिद्धान्तों की उत्कृष्टता को प्रमाणित कर दिया। इसने संसदीय लोकतान्त्रिक प्रणाली की महिमा को प्रतिष्ठित किया तथा लोकप्रिय प्रभुसत्ता तथा राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्तों की पुष्टि की। इस क्रांति ने स्वतन्त्रता व समानता के विचारों के लिए नये दायरे खोल दिये। स्वतन्त्रता संग्राम की सफलता के उपरान्त 'अमेरिका मानवता की आशा तथा स्वतन्त्रता का आश्रय-स्थल' बन गया। अमेरिका के घोषणा-पत्र ने जब यह स्पष्ट कर दिया कि सब मनुष्य समान हैं, सरकार उनकी अनुमति से ही निर्मित होनी चाहिए तो विश्व के समकालीन एवं भावी दार्शनिकों, विचारकों एवं राजनीतिज्ञों ने धर्म व्यवस्था एवं दैवी-सिद्धान्त पर आधारित सरकार की आलोचना को अपनी लेखनी का अभिन्न अंग बना लिया। यहाँ यह लिखने की अधिक आवश्यकता नहीं है कि विश्व भर में उपनिवेशवादी विरोधी विचारधारा को इस क्रान्ति की सफलता ने बल दिया। इस क्रान्ति ने यह भी प्रमाणित कर दिया कि वाणिज्यवादी नीति से उपनिवेशों के सिवाय आर्थिक शोषण के और कुछ नहीं हो सकता है।

20.3.2 इंग्लैण्ड पर प्रभाव-

अमेरिकी क्रान्ति का महत्व इस संदर्भ में भी है इसके पश्चात् इंग्लैण्ड ने वाणिज्यवादी नीति का परित्याग कर दिया। उपनिवेशों की स्वतन्त्रता से पूर्व बहुत से लोगों ने सोचा था कि इंग्लैण्ड के व्यापार-वाणिज्य को जबरदस्त धक्का लगेगा, किन्तु जब कुछ ही वर्षों बाद इंग्लैण्ड का व्यापार अधिक होने लगा तो अधिकांश देशों की वाणिज्यवादी नीतियों से आस्था जाती रही।

इंग्लैण्ड में इस क्रान्ति की महत्वपूर्ण प्रतिक्रियाएँ हुई। असन्तुष्ट राजनीतिज्ञों तथा उदारवादी नेताओं ने प्रशासनिक व्यवस्था एवं नीतियों की कटु आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया तथा समुचित समयानुकूल सुधारों की माँग करने लगे। उपनिवेशों के छीन जाने से इंग्लैण्ड को अपनी अन्य बस्तियों को बचाने की चिन्ता सताने लगी। अतः इंग्लैण्ड को उपनिवेशों के प्रति उदासीन नीति का त्याग करना पड़ा। ब्रिटिश संसद ने भारत स्थित ब्रिटिश सरकार के कार्यों के निरीक्षण तथा नियन्त्रण के लिए एक मंडल का प्रावधान किया जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने विशेषाधिकारों का

दुरूपयोग नहीं कर सके। चार्ल्स जेम्स फॉक्स तथा कनिष्ठ युवापिट जैसे आमूल सुधारों के समर्थकों ने ब्रिटिश संसद के पूर्ण लोकतन्त्रीकरण पर विशेष बल दिया।

20.3.3 फ्रांस पर प्रभाव-

फ्रांस भी क्रान्ति के प्रभाव में आ गया। लाफायत ने अमेरिकी क्रान्ति की भावना फ्रांसीसी जनमानस तक पहुँचाई। फ्रांसीसी सैनिकों ने लौटकर देशवासियों को अपने अनुभव सुनाये। अमेरिकी क्रांति की सफलता ने फ्रांसीसी जनता में आत्मविश्वास जागृत किया। अमेरिका की क्रान्ति की फ्रांस की क्रान्ति में भूमिका दिदरों, रूसो, वाल्तेयर जैसे विचारकों से कम नहीं थी। इतिहासकार हेज़ भी इस कथन से सहमत हैं। फ्रांसीसी क्रान्ति के मुख्य सिद्धान्त- स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व का मूल अमेरिकी संघर्ष में निहित है।

20.3.4 आयरलैण्ड पर प्रभाव-

आयरलैण्ड, जो सदियों से पीसता आ रहा था, ने अमेरिकी क्रान्ति के परिणामों का स्वागत किया। होरेस वालपोल ने इंग्लैण्ड की संसद मे कहा- 'आयरलैण्ड अमेरिका के लिए पागल हो रहा था।' उस समय आयरलैण्ड की जनता भी अपनी आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए इंग्लैण्ड के विरूद्ध संघर्ष कर रही थी। वे व्यापारिक प्रतिबन्धों का अन्त और स्वतन्त्र पार्लियामेंट की स्थापना करना चाहते थे। अमेरिकी उपनिवेशों की इस मांग ने, 'टैक्स लगाने का अधिकार हमें स्वयं है,' आयरलैण्ड के निवासियों को बहुत अधिक प्रभावित किया।

20.3.5 भारत पर प्रभाव-

भारत पर अमेरिका की क्रान्ति का तत्कालीन प्रभाव 'प्रतिगामी रहा। अमेरिकी क्रान्ति के दौरान -फ्रांसीसियों में युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न हो गई जिससे लाभ उठाकर अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों की शक्ति को भारत में क्षति पहुँचाई तथा अपने साम्राज्य विस्तार के मार्ग को सुलभ बना लिया। किन्तु यह भी सत्य है कि भारत सहित अनेक पराधीन राष्ट्रों की बेड़िया खोलने का मार्ग अमेरिकन क्रान्ति ने प्रशस्त किया।

20.4 सारांश

अमेरिकी क्रान्ति ने नये संसार में नये युग को जन्म दिया और पुराने संसार के लिए भी एक नये युग का मार्ग प्रशस्त किया। प्रजातन्त्र का विकास, दैवी अधिकारों का अन्त, वाणिज्यवादी सिद्धान्तों का पतन, फ्रांसीसी क्रान्ति का शीघ्र अवक्षेपण, शेष दुनिया में आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित करने तथा अमेरिका के एक स्वतन्त्र एवं मजबूत राष्ट्र के रूप में उभरने के सन्दर्भ में अमेरिकी क्रान्ति के महत्व का मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है। क्रान्ति का महत्व 4 जुलाई, 1776 की घोषणा में निहित है, जिसमें कहा गया था कि 'विश्व का प्रत्येक मानव पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है एवं समान है तथा उसे अपनी स्वतन्त्रता, अधिकारों की सुरक्षा के लिए संघर्ष का अधिकार प्राप्त है।' इन्हीं धारणाओं को मूर्तरूप देने में तब से आज तक विश्व प्रयत्नशील है, बाधाएँ तब भी थीं, आज भी हैं और कल भी होंगी, किंतु यह विचारधारा जगत् की हवा में आज भी जीवन्त है।

20.5 शब्दावली

वाणिज्यवाद- यह उस विचारधारा का नाम है जो पश्चिमी यूरोप में सोलहवीं, सत्रहवीं एवं अठारहवीं सदी में विद्यमान थी। वाणिज्यवाद ऐसी विचारधारा है जिसका प्रयोग उन नीतियों, सिद्धान्तों एवं व्यवहारों के लिए किया गया जिनके अन्तर्गत राष्ट्र अधिकाधिक सोना-चांदी प्राप्त कर सकें। इस विचारधारा के अन्तर्गत बहुमूल्य धातुओं के अपने देश में आगमन को प्रोत्साहित करने तथा निर्गमन को निरूत्साहित करने, आयातित वस्तुओं की अपेक्षा निर्यातित वस्तुओं के मूल्यों का अधिक निर्धारण आदि का प्रयत्न किया जाता था।

20.6 बोध प्रश्न-

1. अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम का महत्त्व स्पष्ट कीजिये।

2. 'अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम ने अमेरिका के साथ यूरोप का भी रूपान्तरण किया'। टिप्पणी कीजिये।

3. 'अमेरिका' के सन्दर्भ में क्रांतिजनित परिणामों का विवेचन कीजिये।

20.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जार्ज बानफ्रोस्टः हिस्ट्री आफ् द यूनाइटेड स्टेट्स
2. डा. बनारसी प्रसाद सक्सेनाः अमेरिका का इतिहास
3. डा. वी. एस. माथुर : अमेरिका का इतिहास
4. डा. मथुरालाल लाल शर्मा : नवीन अमेरिका का इतिहास
5. एच0 जी0 वेल्स : वर्ल्ड हिस्ट्री

इकाई-21
अमेरिकन संविधान का निर्माण

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना

21.2 उपनिवेशों की स्थापना

21.3 असंतोष की लहर

21.4 स्वतंत्रता की ओर

21.5 संविधान निर्माण प्रक्रिया

21.6 वर्तमान संविधान की रचना

21.7 संविधान का अनुमोदन

21.8 अभ्यास के प्रश्न

21.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

21.1 प्रस्तावना:

संयुक्त राज्य अमेरिका आधुनिक विश्व का एक महान देश है। यह शक्ति एवं सम्पन्नता- दोनों दृष्टियों से अग्रणी है। इसका इतिहास अधिक पुराना नहीं है, किन्तु यहां का संविधान वर्तमान विश्व के लिखित संविधानों में सबसे पुराना माना जाता है। इस संविधान के अंतर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका ने न केवल अपनी विविधताओं को समरसता और एकजूटता में बदला अपितु वह विश्व की एक महाशक्ति के रूप में उदित हुआ। आधुनिक विश्व पर जहां संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन व्यवस्था की छाप सर्वत्र अंकित है, वहाँ उसके साहसिक कार्यो तथा प्रगति के अद्‌भुत कीर्तिमानों से समूची सभ्यता प्रभावित है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की खोज का श्रेय स्पेन निवासी कोलम्बस को दिया जाता है, जिसने अपने अदम्य साहस का परिचय देते हुए दुर्गम समुद्री यात्राएं कर सन् 1492 ई. में पहली बार पश्चिमी हिन्द द्वीपों (West Indies Island) का स्पर्श किया और इस प्रकार अमेरिका के द्वार योरोप के लिये खोल दिये।

21.2 उपनिवेशों की स्थापना:-

एक नये महाद्वीप की खोज के साथ ही योरोप की विभिन्न जातियों ने यहां आकर धीरे-धीरे अपने उपनिवेश बसाना प्रारम्भ कर दिया। इंग्लैण्ड के सम्राट हेनरी सप्तम के आदेश से जान केबट ने सन् 1496 ई. में अमेरिका के पूर्वी तट और उत्तर में न्यूफाउण्डलैण्ड की खोज की। स्पेनवासियों ने दक्षिणी अमेरिका तथा पश्चिमी अमेरिका की खोज कर अपनी बस्तियां बसाने की शुरूआत कर दी। फ्रांस के

निवासियों ने नोवा स्कोशिया, सेण्ट लारेंस नदी, मिसिसिपी नदी, मैक्सिको की खाड़ी आदि की खोज कर वहाँ बस्तियों बसाना प्रारम्भ कर दिया। हालैण्ड के निवासियों ने हडसन तथा डैलबेरा नदी-घाटियों की खोज कर वहां अपने उपनिवेश बसाने प्रारम्भ कर दिये। अंग्रेजों ने अपना पहला उपनिवेश सन् 1607 ई. में जेम्स टाउन (बर्जिनिया) में स्थापित किया। इसके पश्चात् सन् 1620 ई. में धार्मिक नेताओं ने प्लाइमोथ तथा मैसाच्यूसेट्स नामक उपनिवेश बसाये। सन 1732 ई. तक योरोपीय प्रजातियों द्वारा अमेरिका में विभिन्न उपनिवेश स्थापित करने का क्रम चलता रहा। इन प्रजातियों के संघर्ष अमेरिका के मूल निवासी रेड इण्डियन से तथा आपस में भी हुए, परन्तु इनमें अंग्रेज विजयी हुए और उन्होंने सन् 1763 ई. तक फैंच तथा अन्य योरोपीय प्रजातियों को पराजित करके कनाडा तथा उत्तरी अमेंरिका में अपना प्रभुत्व या अधिकार स्थापित कर लिया। संक्षेप में, सन् 1776 ई. तक अमेरिका में अलग-अलग 13 उपनिवेश अस्तित्व में आ गये, जिनको तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- (1) सम्राट के उपनिवेश (Royal Colonies) (2) स्वामियों के निजि उपनिवेश (Proprietory Colonies) और (3) अधिकार-पत्र द्वारा प्राप्त उपनिवेश (Charter Colonies)।

प्रायः सभी उपनिवेश आंतरिक मामलों में स्वशासित होते हुए भी इंग्लैण्ड के आधिपत्य में थे। इनकी शासन प्रणाली के स्वरूप की चर्चा करते हुए बर्न्स तथा पैल्टेसन लिखते हैं- "अमेरिका सरकार के आधारभूत तत्वों जिनसे हम आज भी परिचित हैं, की स्थापना औपनिवेशिक काल में की जा चुकी थी। इंग्लैण्ड तथा उपनिवेशों के सम्बंधों ने अमेरिकनों को केन्द्रीय तथा इकाईयों की सरकारों में शक्ति विभाजन के सिद्धान्त से परिचित करवायां और संघवाद को एक प्राकृतिक विकास बनाया। प्रिवी कौंसिल द्वारा अंग्रेजी कानूनों की औपनिवेशिक कानूनों पर प्राथमिकता की स्थापना ने सुप्रीम कोर्ट के उस सिद्धान्त को जन्म दिया जिससे यह निश्चय किया जाता है कि राज्य कार्यों से संविधान अथवा राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन होता है या नहीं। इस काल में शक्ति विभाजन के सिद्धान्त तथा द्विसदनीय विधानमण्डलों का विकास हुआ और आधुनिक अमेरिकन सरकार की जड़े इतनी मजबूत हुई।"

21.3 असंतोष की लहरः-

प्रारम्भ में जब योरोप की विभिन्न प्रजातियां अमेरिकन महाद्वीप के निर्जन भू-भाग पर आकर बसने लगी तो उन्हें अपने अस्तित्व, स्थायित्व, भरण-पोषण, सुरक्षा और नव समाज की संरचना के लिये अनेक कष्ट झेलने पड़े। भावात्मक एकता, भाषा और रहन-सहन की एकरूपता के अभाव में उन्हें हर समय आपसी संघर्ष के लिये तैयार रहना पड़ता था। फिर भी असुरक्षा और संघर्ष के वातावरण के बीच वे निर्माण और विकास में जुटे रहे। फलस्वरूप उपनिवेशों के निवासियों में शनैः शनै सामाजिक संबंध प्रगाढ़ होने लगे और उनमें राजनीतिक चेतना भी अंकुरित होने लगी। इसका परिणाम यह निकला कि इन उपनिवेशों पर इग्लैण्ड का आधिपत्य स्थापित होने के बावजूद उन्हें पर्याप्त स्वायतता प्रदान की गई। फिर भी वे ऐसा कोई कानून नहीं बना सकते थे जो इग्लैण्ड के कानून के विपरीत हो। इनके गवर्नरों की नियुक्ति ब्रिटिश काउन द्वारा होती थी। इसके अतिरिक्त उपनिवेशों की विदेश नीति, सेवा

और युद्ध तथा आयात-निर्यात करों के विषयों का संचालन भी पूर्णतया ब्रिटिश क्राउन के आधीन था।

18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पहुंचने तक प्रायः सभी उपनिवेश काफी सुदृढ़ बन गये थे। उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधर गई थी। उपनिवेशों के बीच व्यापार सम्बंध भी स्थापित हो गये थे, उनमें समान मुद्रा का भी प्रचलन हो गया था तथा आर्थिक दृष्टि से वे ऐसी स्थिति में आ गये थे कि विदेशी आघातों से वे अपनी रक्षा स्वयं कर सकते थे। ऐसी परिस्थिति में अब उन्हें इंग्लैण्ड के छोटे-मोटे प्रतिबंध अखरने लग गये। एक ओर अंग्रेज अधिकारियों के विवेकहीन आचरणों से उपनिवेशवासियों की भावनाओं को निरंतर ठेस पहुंचने लगी, दूसरी ओर इंग्लैण्ड की व्यापार और कर सम्बंधी नीति ने उपनिवेशवासियों के असंतोष को चरम सीमा पर पहुंचा दिया।

सन 1756 से 1763 ई. तक इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच चले सप्तवर्षीय युद्ध में इंग्लैण्ड की निर्णायक विजय हुई। इस युद्ध में इंग्लैण्ड की अत्याधिक धनराशि व्यय हुई और उसकी आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो गई। इंग्लैण्ड की सरकार ने यह निश्चय किया कि युद्ध का व्यय वहन करने में अमेरिका के उपनिवेशों को भी भागीदार बनाया जाये। अतः इंग्लैण्ड की सरकार ने अमेरिकन उपनिवेशों की जनता पर अनेक नये कर लगाये तथा ऐसे कानून पारित करना शुरू किया, जिनसे इंग्लैण्ड को आर्थिक लाभ पहुंचे। इंग्लैण्ड के इन तौर तरीकों से उपनिवेशों में असंतोष की लहर फैल गई और ऐसे कदमों का घोर विरोध किया जाने लगा। उपनिवेशी जनता ने करों की अदायगी से स्पष्ट इंकार कर दिया और नारा लगाया कि "ब्रिटिश संसद में उनके प्रतिनिधित्व के बिना कोई कर उन पर नहीं लगाया जा सकता है। (No Taxation without representation) इस प्रकार अमेरिका महाद्वीप में एक नये आन्दोलन का जन्म हुआ, जिसमें टामस जैफरसन, जार्ज वाशिंगटन, जान एडम्स, पैट्रिक हेनरी, साम जैसे क्रांतिकारी नेताओं का भी उदय हुआ। इन नेताओं ने जनता की सरकार विरोधी आवाज को बुलन्द बनाया। सरकारी आज्ञाओं का उल्लंघन खुले आम होने लगा। इस बीच सन् 1773 ई. में बोस्टन चाय पार्टी की घटना हुई। चाय के आयात पर ब्रिटिश संसद ने कर लगाया था तथा अमेरिका में चाय आपूर्ति का एकाधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दिया गया था क्योंकि इसकी आर्थिक स्थिति दयनीय थी। 16 दिसम्बर, 1773 ई. को जब कम्पनी के चाय से लदे हुए तीन जहाज बोस्टन (मैसाच्यूसेट्स) पहुंचे तो वहां के लोगों का एक गिरोह कुलियों का वेश बनाकर उन पर चढ़ गया और उन्होंने चिढ़ उत्पन्न करने वाली ब्रिटिश चाय की पत्तियों को पानी में फैंक दिया। इस घटना से ब्रिटिश सरकार क्रोधित हो उठी और उसने 1774 ई. में 'मैसाच्यूसेट्स शासन अधिनियम' नामक घोर दमनकारी कानून बनाया। इस कानून से अमेरिकन उपनिवेशों की जनता में रोष का सागर उमड़ पड़ा। वे मैसाच्यूसेट्स की जनता की सहायता के लिये उठ खड़े हुए। इसके साथ ही उपनिवेशों में एक नई क्रांति की शुरूआत हो गई।

21.4 स्वतंत्रता की ओर-

मैसाच्यूसेट्स शासन अधिनियम" से उत्पीड़ित 12 उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन 5 सितम्बर, 1774 ई. को फिलाडेलफिया नगर में हुआ। इस सम्मेलन को "महाद्वीप की प्रथम कांग्रेस" (First Continental Congress) कहा गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य उपनिवेशों की शोचनीय अवस्था पर विचार करना था तथा जनता के कष्टों को दूर करने के उपाय सुझाना था। इस कांग्रेस ने ब्रिटिश सम्राट के पास दमनकारी कानूनों को रद्द करवाने के लिये एक याचिका (Petition) भेजी तथा "एक महाद्वीपीय परिषद्" (Continental Association) की स्थापना की गई, जिसका मुख्य कार्य यह देखना था कि विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय और दमनकारी कानूनों के विरूद्ध भावना तीव्र की जाय। ब्रिटिश सम्राट जार्ज तृतीय ने इस याचिका को ठुकरा दिया। उपनिवेशों में इसकी घोर प्रतिक्रिया हुई तथा लोगों में विद्रोह की भावना भड़क उठी। इससे 12 मई, 1775 ई. को फिलाडेलफिया में "द्वितीय" महाद्वीपीय कांग्रेस" हुई, जिसमें सभी 13 उपनिवेशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए।

द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस के अधिवेशन में इस बात पर चिंता प्रकट की गई कि बेंजामिन फेंकलिन द्वारा उपनिवेशों की ओर से इंग्लैण्ड से समझौतों करने के सभी प्रयास असफल हो गये हैं तथा यह प्रस्ताव पेश किया गया कि इंग्लैण्ड से युद्ध किया जाए। जान डिकिन्सन तथा टामस जैफरसन ने मिलकर युद्ध की घोषणा का निम्नलिखित प्रस्ताव रखा था-

"हमारा पक्ष न्यायपूर्ण है, हमारी एकता पूर्ण है, हमारे आन्तरिक साधन बहुत हैं और यदि आवश्यकता हुई तो निस्संदेह वैदेशिक सहायता भी हमें मिल जायेगीद्रद्रद्रद्र. हमारे शत्रुओं ने जो शस्त्र उठाने के लिए हमें विवश किया है, उन्हें हम द्रद्र अपनी स्वतंत्रता के लिये प्रयुक्त करेंगे। हम उनके दास बनकर जीने की अपेक्षा मिटने का संकल्प कर चुके हैं।" इस प्रस्ताव की स्वीकृति के साथ ही कांग्रेस ने जार्ज वाशिंगटन को अमेरिका की नागरिक सेना का प्रधान सेनापति घोषित कर दिया। इस घटनाक्रम के बावजूद इंग्लैण्ड ने अमेरिका के उपनिवेशों के साथ सम्बंध सामान्य बनाने की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया बल्कि सम्राट की ओर से 23 अगस्त, 1775 ई. को यह घोषणा कर दी गई कि उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया है। इंग्लैण्ड की ओर से पूर्णतः निरूतसाहित होकर अन्ततः 4 जुलाई 1776 ई. को अमेरिकी उपनिवेशों ने ब्रिटिश सम्राट के प्रति अपनी निष्ठा समाप्त कर दी और अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस घोषणा में कहा गया-

"हम इन सत्यों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सभी व्यक्ति समान उत्पन्न हुए हैं, उन्हें स्त्रष्टा ने कुछ ऐसे अधिकार दिये हैं जो उनसे पृथक नहीं किये जा सकते. इनमें जीवन, स्वतंत्रता और प्रसन्नता की खोज सम्मिलित हैं। इन अधिकारों को सुरक्षित करने के लिये ही मनुष्यों में सरकारों की स्थापना होती है और उनको शासन करने के अधिकार भी जनता की अनुमति से प्राप्त होते हैं--जब कभी कोई शासन इन उद्देश्यों का नाशक बन जायें, तब लोगों को अधिकार होता है कि वे उसे बदल दें या समाप्त कर दें और नये शासन की स्थापना करके उसका आधार

ऐसे सिद्धान्तों को रखे और उसके अधिकारों का संगठन ऐसे रूप में करें जिनसे उनको अपनी सुरक्षा और सुख-समृद्धि स्थायी रहने की सबसे अधिक आशा हों।''

घोषणा के अंत में कहा गया- ''हम सत्य निष्ठा से यह प्रतिज्ञा करते है कि यह उपनिवेश मुक्त और स्वतंत्र राज्य हैंद्रद्रद्रद्र. उनके और ब्रिटेन के बीच सभी प्रकार के राजनीतिक सम्बंध पूर्ण रूप से समाप्त हैं और होने भी चाहिये। मुक्त और स्वतंत्र राज्यों के नाते उन्हें कर लगाने, शान्ति स्थापित करने तथा अन्य ऐसी बातें करने का पूर्ण अधिकार है जिन्हें स्वतंत्र राज्य अपने अधिकार के नाते करते हैं।'' इस घोषणा ने मानव स्वतंत्रता के नये युग का सूत्रपात किया। यद्यपि इस घोषणा के बाद भी इंग्लैण्ड और उपनिवेशों के बीच करीब 6 वर्ष तक युद्ध चला और अनेक उतार चढ़ाव आते रहे। अन्ततः ब्रिटिश सेनापति कार्नवालिस को 19 अक्टूबर, 1781 ई. को घुटने टेकने पड़े। इसके बावजूद कुछ समय तक सम्राट जार्ज इंग्लैण्ड की पराजय को अस्वीकार करता रहा, किन्तु सन् 1782 ई. में उपनिवेशों पर से अपना अधिकार छोड़ दिया। अटलांटिक सागर के तटवर्ती सभी प्रदेशों को मुक्त कर दिया गया। इंग्लैण्ड में टोरी दल के स्थान पर व्हिग दल ने शासन सम्भाला। इस दल के नेता बहुत पहले से ही सम्राट और संसद की उन कार्यवाहियों का विरोध कर रहे थे जिनके कारण अमेरिकी उपनिवेशवादियों को सशस्त्र विद्रोह करना पड़ा था। अमेरिका के साथ संघर्ष की सरकार की नीति की ब्रिटिश जनता द्वारा तीव्र आलोचना की गई, जिसके कारण प्रधानमंत्री लार्ड नार्थ को त्यागपत्र देना पड़ा और सम्राट जार्ज का कामन्स सभा पर नियंत्रण नहीं रहा। नये प्रधानमंत्री रोकिंघम ने शान्ति वार्त्ता प्रारम्भ की।

पैरिस संधि, 1783-

सन् 1782 ई. के प्रारम्भ में महाद्वीपीय कांग्रेस ने शांति वार्ता के लिये एक आयोग पैरिस भेजा। अमेरिका की ओर से बेंजामिन फैंकलिन, जान एडम्स और जान जे थे। इंग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व लार्ड रिचार्ड पोसबार्ल्ड ने किया। 30 नवम्बर, 1782 ई. को इंग्लैण्ड के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किये। सामान्य संधि पर 3 सितम्बर, 1783 को हस्ताक्षर किये गये। इस संधि की शर्तों द्वारा अमेरिका की उत्तरी सीमाएं लगभग वे ही निर्धारित की गई जो इस समय हैं। पश्चिमी सीमा मिसिसिपी नदी और दक्षिणी सीमा फलोरिडा का उत्तरी भाग था जो स्पेन को दिया गया था। पैरिस की संधि में कुछ अन्य प्रावधान भी थे। उदाहरण के लिये, इसने अमेरिकीयों को न्यूफाउण्डलैण्ड के मछलीगाहों में हिस्सा लेने का अधिकार दिया। मिसिसिपी का उद्गम स्थल कनाडा में था। इसलिये यह कहा गया कि इस पर इंग्लैण्ड और अमेरिका द्वारा समान रूप से नौका-चालन किया जाये।

इस प्रकार एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अमेरिका का उदय हुआ, जिसने शासन व्यवस्था के क्षेत्र में कतिपय मौलिक सिद्धान्त अपना कर आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था को एक नई दिशा एवं स्थायित्व प्रदान किया।

21.5 संविधान निर्माण प्रक्रिया:-

महाद्वीपीय कांग्रेस के प्रथम दो सम्मेलनों ने अमेरिकन उपनिवेशों में स्वतंत्रता के प्रति ललक जागृत कर दी थी। उपनिवेशवासियों ने अब एक स्वतंत्र राष्ट्र के सपने

संजाने प्रारम्भ कर दिये। इसी श्रंखला में 12 जून, 1776 ई. को महाद्वीपीय कांग्रेस के प्रत्येक उपनिवेश से एक-एक सदस्य लेकर एक समिति का गठन किया गया, जिसका प्रमुख कार्य एक ऐसे परिसंघ (Confederation) के संविधान पर विचार करना था, जिसके अंतर्गत एकजूट होकर सभी उपनिवेश स्वाधीनता संग्राम का संचालन कर सके और आन्तरिक व्यवस्था कायम रख सके। महाद्वीपीय कांग्रेस ने 17 नवम्बर, 1777 ई. को परिसंघ की स्थापना सम्बंधी धाराओं को स्वीकार कर लिया। सन् 1778 ई. तक डेलवेयर एवं मेरीलैण्ड को छोड़कर शेष सभी राज्यों ने इन धाराओं का अनुमोदन कर दिया। डेलवेयर ने सन् 1779 ई. में तथा मेरीलैण्ड ने मार्च, 1781 ई. में उन्हें स्वीकार कर लिया और उसी दिन से ये धारायें लागू हो गई। इसे ही अमेरिका का प्रथम संविधान" कहा जाता है। इसी में पहली बार उपनिवेशों के संघ के लिये "संयुक्त राज्य अमेरिका" नाम का उल्लेख हुआ।

इस संविधान के अंतर्गत एक ऐसी केन्द्रीय सरकार की स्थापना की गई, जिसके अधिकार निश्चित और सीमित थे। संघीय शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिये कांग्रेस की स्थापना की गई, जिसमें प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये। यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक राज्य कम से कम दो और अधिक से अधिक सात प्रतिनिधि भेजे, किन्तु प्रत्येक राज्य को केवल एक ही मत देने का अधिकार (One State, One Vote) हो। यह भी व्यवस्था की गई कि किसी प्रस्ताव की स्वीकृति के लिये 13 राज्यों में से 9 का बहुमत आवश्यक होगा। कांग्रेस का रूप एक सदनीय रखा गया।

महाद्वीपीय कांग्रेस की अपेक्षा इस परिसंघ की कांग्रेस के अधिकार निश्चित और स्पष्ट थे, जिनके आधार पर वह सभी राज्यों का सामान्य हित साधन कर सकती थी। इसे विदेशी मामलों की पूरी जिम्मेवारी सौंपी गई। यह कांग्रेस युद्ध की घोषणा कर सकती थी और बाद में शान्ति के लिये संधि कर सकती थी। यह कांग्रेस डाक-तार मुद्रा व नोट और माप-तौल के स्तर की व्यवस्था कर सकती थी। यह विदेशों से संधियां कर सकती थी और वहां पर राजदूत भेज सकती थी तथा उनके राजदूत अमेरिका में रख सकती थी।

कांग्रेस की उपरोक्त शक्तियां बहुत साधारण थी। उसे राज्यों पर कोई कर लगाने का अधिकार नहीं था। कांग्रेस केवल यह निश्चित कर सकती थी कि इसे कुल कितनी धनराशि की आवश्यकता है और प्रत्येक राज्य को कुल कितनी राशि देनी है, परन्तु यह राज्य की इच्छा पर निर्भर था कि कितना धन दे या न दे। कई राज्यों ने बहुत थोड़ा धन कांग्रेस को दिया। इससे उसकी निर्बलता स्पष्ट हो गई। इसकी दूसरी कमजोरी यह थी कि कांग्रेस राज्यों के पारस्परिक वाणिज्य (Inter-State Commerce) नियमित (Regulate) नहीं कर सकती थी। विदेशी व्यापार को भी संधियों के अतिरिक्त किसी और तरीके से इसे नियमित करने का अधिकार नही था। राज्यों की इच्छा थी कि वे कांग्रेस के निर्णयों को अपने क्षेत्र में लागू करे या न करे। इस सारी स्थिति का बहुत ही सुन्दर ढंग से विश्लेषण करते हुए प्रो. मनरो ने लिखा है- "यह व्यवस्था अशक्त थी क्योंकि इसमें उन चार बातों का अभाव था जो किसी भी राष्ट्रीय सरकार की शक्ति के लिये आवश्यक है। वे थीं- कर लगाने

की शक्ति, उधार लेने की शक्ति, व्यापार का संचालन करने की शक्ति तथा सामूहिक सुरक्षा के लिये संगठित सेना की व्यवस्था की शक्ति।

पहले संविधान तथा उसकी व्यवस्थाओं में कई संरचनात्मक दोष भी थे। इसमें एक सदनात्मक केन्द्रीय संसद (कांग्रेस) थी। इसमें प्रत्येक राज्य दो से लेकर सात प्रतिनिधि तक भेज सकता था। परन्तु प्रत्येक राज्य का वोट एक ही था। कार्यपालिका की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। केवलमात्र एक कांग्रेस ही थी। उसकी शक्तियां देखने में तो विस्तृत हैं, किन्तु वास्तव में वे सीमित एवं नियंत्रित थी क्योंकि उसे जो व्यापक कार्य दिये गये, उनकी क्रियांविती के लिये धन की स्वतंत्र व्यवस्था नहीं की गई थी। फिर जब तक युद्ध चलता रहा संघीय कांग्रेस एवं व्यवस्था का पालन होता रहा, परन्तु युद्ध समाप्त होने पर सभी क्षेत्र अपनी सीमाओं में जा घुसे।

संविधान की उपेक्षा होने लगी। विल्सन ने लिखा है "संघीय कांग्रेस कार्यपालिका शक्ति से वंचित होने से विवश और उपेक्षित थी। महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास होने के लिये नौ राज्यों का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक था और जब स्वतंत्रता संग्राम का भार समाप्त हो गया तो कांग्रेस में राज्यों की दिलचस्पी का प्रायः अन्त-सा हो गया, यहां तक कि कुछ राज्यों की ओर से कांग्रेस के प्रतिनिधि भी नहीं भेजे जाते थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि शासन की केवल एक शक्ति कांग्रेस राज्यों से धन की मांग कर सकती थी। वह उनसे सेना भेजने को कह सकती थी, किन्तु यदि वे न सुनें तो वह असहाय थी। संधि करने की शक्ति कांग्रेस की थी, परन्तु संधि के अनुसार आचरण करने का कार्य राज्यों का था।द्रद्र।" विल्सन ने अंत में कहा- "कांग्रेस ऐसी संस्था थी, जिसके अधिकार तो पर्याप्त विस्तृत थे, परन्तु उसकी शक्तियां शून्य थीं। "कांग्रेस में सम्मिलित संयुक्त राज्य" यह नाम मानो परामर्श देने वाले एक बोर्ड का हो।"

21.6 वर्तमान संविधान की रचना-

प्रथम संविधान में अन्तर्निहित दोष जब संघीय व्यवस्था के सफल संचालन में बाधक प्रतीत होने लगे तो उसमें परिवर्तन के स्वर गुंजारित होने लगे। इस दृष्टि से संविधान की धाराओं में सुधार के कतिपय प्रयास किये गये, किन्तु वे असफल रहे और राज्यों में गृहयुद्ध छिड़ जाने की आंशका पैदा हो गई। ऐसे में अनेक नेता सामने आये, जिन्होंने दृढ़तापूर्वक मांग की कि यदि ये राज्य दुबारा परतंत्रता अराजकता की विभीषिका से बचना चाहते हैं तो हमें एक मजबूत संघीय व्यवस्था के आधीन एकत्रित होना ही पड़ेगा। जार्ज वाशिंगटन के एक शक्तिशाली संघ के विचारों को व्यापक जन समर्थन मिला। फलस्वरूप सन् 1787 ई. में कांग्रेस ने संविधान की धाराओं को संशोधित करने तथा संघ को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से एक सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव पारित किया।

फिलाडेलफिया सम्मेलन-

कांग्रेस द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसार 25 मई, 1787 ई. में को फिलाडेलफिया के "इण्डिपेण्डेन्स हॉल" में एक सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता जार्ज वाशिंगटन ने की। रोड द्वीप (Rhode Island) को छोड़कर शेष 12 राज्यों के योग्यतम 55 प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। इनमें जैम्स मेडिसन, जार्ज मेसन, बेन्जामिन

फैंकलिन, एमण्ड रेण्डाल्फ, जेम्स बिल्सन, अलैक्जैण्डर हामल्टन, राबट भारस, विलियम सेम्युअल जानसन, जान डिकिन्सन इत्यादि प्रमुख हैं। इस सम्मेलन के संबंध में टामस जैफरसन ने कहा है - "यह देवताओं की सभा थी।"

एक फ्रांसिसी के शब्दों में, "यदि फिलाडेलफिया के सम्मेलन के सभी प्रतिनिधियों को देखा जा तो मैं कहूंगा कि ऐसी सभा पहले कभी नहीं हुई, योरोप में भी नहीं, क्योंकि ये प्रतिनिधि योग्यता, गुंण, निःस्वार्थता, निष्पक्षता एवं देशप्रेम के आधार पर सभी से अधिक मानवीय हैं।" इसी प्रकार प्रसिद्ध विद्वान चार्ल्स बीयर्ड ने लिखा है कि "उन कई ऐतिहासिक सम्मेलनों में, जिन्होंने मानव जाति के क्रियाकलापों में क्रांति की है, किसी में भी इतना राजनीतिक कौशल, व्यवहारिक अनुभव और ठोस तत्व नहीं था, जितना कि फिलाडेलफिया सम्मेलन में था।"

यही कारण था कि सम्मेलन के सम्मुख जितनी भी जटिल समस्याएं प्रस्तुत की गई, उनका प्रतिनिधियों ने अत्यंत विवेक-सम्मत एवं वस्तुपरक समाधान ढूंढ निकाला। पहला विवाद इस बात पर ही उठ खड़ा हुआ कि प्रचलित "संविधान की धाराओं" को ही संशोधित किया जाए, क्योंकि मूलतः यह सम्मेलन "संविधान की धाराओं" में सुधार करने के उद्देश्य से ही बुलाया गया था। प्रतिनिधिगण गहन विचार विमर्श के पश्चात् जार्ज वाशिंगटन के इस सुझाव से सहमत हो गये कि एक नया संविधान बनाना अधिक उपयुक्त होगा। अब प्रतिनिधियों को एक ऐसे संविधान का प्रारूप तैयार करना था, जिसमें एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना हो, किन्तु साथ ही राज्यों की स्वायतता में कम से कम हस्तक्षेप हो। ऐसा संतुलन रखना एक जटिल कार्य था।

इस सम्बंध में सर्वप्रथम वर्जीनिया राज्य की ओर से एक योजना रखी गई, "जिसे" वर्जिनिया योजना" (Virginia Plan) कहा जाता है। इस योजना में संघीय शासन को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रस्ताव था तथा उसमें ये सुझाव भी थे कि- (1) केंद्र में द्विसदनात्मक व्यवस्था हो, (2) निम्न सदन सब राज्यों का प्रतिनिधि सदन हो और वह जनसंख्या के आधार पर चुना जाये तथा उच्च सदन निम्न सदन द्वारा चुना जायेगा। इन सुझावों का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि निम्न सदन में जनसंख्या के आधार पर वर्जिनिया जैसे बड़े राज्य को 16 या 17 स्थान मिल जाते, जबकि डेलावेयर तथा रोड द्वीप जैसे छोटे राज्यों को केवल 1-1 स्थान मिलता। इसी प्रकार उच्च सदन में भी बड़े राज्यों को अधिक स्थान मिलते। अतः छोटे राज्यों द्वारा इस योजना का तीव्र विरोध किया गया।

छोटे राज्यों द्वारा उपर्युक्त योजना के विपरित एक अन्य योजना रखी गई, जिसे 'न्यूजर्सी योजना' (New Jersey Plan) कहा जाता है.। इसे न्यूजर्सी राज्य के प्रतिनिधि विलियम पेटरसन ने रखा था। इस योजना के अनुसार केन्द्र में एक सदनात्मक व्यवस्था का सुझाव रखा गया, जिसमें सभी छोटे-बड़े राज्यों को एक मत (Vote) का अधिकार हो। इसमें केन्द्र सरकार को कम शक्तियां देने का भी सुझाव था। इस योजना का बड़े राज्यों ने घोर विरोध किया। ऐसा प्रतीत होता था कि यह सम्मेलन भंग हो जायेगा, किन्तु जार्ज वाशिंगटन के अथक प्रयासों से सम्मेलन भंग होने से बच गया। जार्ज वाशिंगटन का सम्मेलन पर विशेष प्रभाव था, क्योंकि उनके नेतृत्व

में ही अमेरिका ने युद्ध लड़ा था और विजय प्राप्त की थी। अन्त में कैनेक्टीकट राज्य के प्रतिनिधि मण्डल द्वारा समझौते के लिये एक योजना रखी गई जिसे लम्बी बहस के बाद स्वीकार कर लिया गया। इसे एक महान समझौता (Great Compromise) कहा जाता है। इस समझौते के प्रेणता डॉ0 जानसन थे। यह समझौता सब योजनाओं का सार था। इस समझौते के अनुसार केन्द्र में द्विसदनात्मक व्यवस्था की गई। निम्न सदन का नाम प्रतिनिधि सदन (House of Representative) रखा गया जो राज्यों का प्रतिनिधित्व करेगा और जिसमें जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि चुने जायेंगे। उच्च सदन का नाम सीनेट रखा गया जिसमें प्रत्येक छोटे व बड़े राज्य को समान प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई। इनके अलावा भी जो-जो मुद्दे विवाद के थे, जैसे संघीय सरकार की शक्तियां क्या हो, राज्यों के निजी संविधान और संघीय संविधान में क्या संबंध हो, आदि। इन्हें भी सुलझा दिया गया। 26 जुलाई, 1787 ई. तक संविधान के प्रमुख सिद्धान्त निर्धारित कर दिये गये और भावी संविधान के प्रलेख को 26 प्रस्तावों के रूप में स्वीकार कर लिया गया। 8 सितम्बर, 1787 ई. को इस सम्मेलन में अपनाये गये सभी प्रस्तावों को संविधान का रूप देने के लिये राज्यपाल मौपिस की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। 15 सितम्बर, 1787 ई. तक संविधान की स्वीकृति दे दी गई और 17 सितम्बर, 1787 ई. को 55 में से 39 प्रतिनिधियों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये और इसके साथ ही सम्मेलन स्थगित हो गया।

21.7 संविधान का अनुमोदन

नये संविधान के प्रलेख में एक प्रावधान रखा गया था कि तभी लागू होगा जब 13 में से कम से कम 9 राज्य इसे स्वीकार कर लेंगे। यद्यपि राज्यों के अधिकांश प्रतिनिधि उस पर हस्ताक्षर कर चुके थे, परन्तु जब उसे राज्यों की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किया गया तो अनेक राज्य इसमें आना कानी करने लगे और तरह-तरह के खतरों की सम्भावनाएँ प्रकट करने लगे। संघीय प्रणाली के समर्थकों और विरोधियों के बीच एक जोरदार बहस छिड़ गई। हैमिल्टन तथा जेम्स मेडिस जहां संघीय प्रणाली की वकालात कर रहे थे, वहाँ पैट्रिक हेनरी, रिचर्ड हेनरी ली, सेम्यूअलसन एडम्स, जार्ज मेसन तथा एल0 ब्रिजगेरी इत्यादि ने संघ प्रणाली का घोर विरोध करना शुरू कर दिया। उनके द्वारा यह भी आपत्ति उठायी गई कि इस संविधान में कोई अधिकार-पत्र (Bill of Rights) नहीं है। इस पर जब संघीय प्रणाली के समर्थकों ने यह घोषणा की कि संविधान लागू होने पर पहला काम संविधान में संशोधन करके अधिकारों की व्यवस्था की जायेगी, तब कुछ राज्य संविधान के अनुमोदन के लिये तैयार हुए। 2 जुलाई, 1788 ई. तक 13 में से 9 राज्यों ने नये संविधान का अनुमोदन कर दिया। अतः उसे लागू करने की तैयारियां आरम्भ कर दी गई। न्यूयार्क को संयुक्त राज्य अमेरिका की अस्थायी राजधानी बनाया गया। 2 अप्रैल, 1789 ई. को प्रतिनिधि सभा का गठन किया गया। 5 अप्रैल, 1789 ई. को सीनेट का भी गठन हो गया। 4 मार्च, 1789 ई. को न्यूयार्क के फैडरल हॉल में राष्ट्रपति के चुनाव के लिये निर्वाचक मण्डल की एक बैठक हुई जिसमें सर्वसम्मति से जार्ज वाशिंगटन राष्ट्रपति तथा बहुमत से जार्ज एडम्स उपराष्ट्रपति चुने गये। 30 अप्रैल, 1789 ई. को राष्ट्रपति वाशिंगटन ने अपना पद सम्भाला। इसके बाद सरकार के

अन्य विभागों के गठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। 29 मई, 1790 ई. तक सभी 13 राज्यों ने संविधान का अनुमोदन कर दिया। तब से अब तक इसी संविधान के अंतर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका का शासन संचालित हो रहा है। इस संविधान में अब तक कुल 27 संशोधन किये गये हैं। इनमें से पहले दस संशोधन संविधान लागू होने के तुरंत बाद हुए, जिनके अधिकार-पत्र को संविधान का अंग बनाया गया।

अभ्यास के प्रश्न

1. अमेरिका के संविधान के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।

2. अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्रता की घोषणा पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

3. फिलाडेलफिया सम्मेलन का वर्णन कीजिये।

21.9 सन्दर्भ ग्रन्थः

1. जार्ज बानफ्रोस्ट - हिस्ट्री ऑफ द यूनाइटेड स्टेटस

2. बी. एस. माथुर- अमेरिका का इतिहास

3. बनारसी प्रसाद सक्सेना- अमेरिका का इतिहास